BAHI (N)-302

भारत का इतिहास 1858 ईस्वी से 1950 ईस्वी तक

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
तीनपानी बाई पास रोड़ ट्रान्सपोर्ट नगर के पास
हल्द्वानी&263139
फोन नं. 05946&261122] 261123
टॉल फ्री नं. 18001804025
फैक्स न. 05946&264232] **ई-मेल** info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन बोर्ड समिति

डॉ. गिरिजा प्रसाद पाण्डे, प्रोफेसर इतिहास एवं निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी **अध्यक्ष**

प्रोफेसर रविन्द्र कुमार, इतिहास विभाग, समाज विज्ञान विद्याशाखा,इग्नू, नई दिल्ली **सदस्य**

डॉ.लाल बहादुर वर्मा, प्रोफेसर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद **सदस्य**

डॉ.रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा,इतिहास विभाग,जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली **सदस्य**

डॉ. मदन मोहन जोशी, प्रोफेसर एवं समन्वयक इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी **सदस्य**

पाठ्यक्रम संयोजन एंव संपादन

डॉ. मदन मोहन जोशी, प्रोफेसर एवं समन्वयक इतिहास,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

इकाई एक- डॉ. संपत्ति नेगी, सहायक प्राध्यापक उ.मु.वि.वि. एवं इतिहास विभाग की BAHI-201 से साभार
इकाई दो- विकास जोशी, सहायक प्राध्यापक उ.मु.वि.वि. एवं इतिहास विभाग की BAHI-202 से साभार
इकाई तीन- इतिहास विभाग की BAHI-202 से साभार
इकाई चार- इतिहास विभाग की BAHI-202 से साभार
इकाई पाँच -इतिहास विभाग की BAHI-202 से साभार
इकाई छह - डॉ. संपत्ति नेगी, सहायक प्राध्यापक उ.मु.वि.वि. एवं इतिहास विभाग की BAHI-202 से साभार
इकाई सात -इतिहास विभाग की BAHI-202 से साभार
इकाई आठ-इतिहास विभाग की BAHI-202 से साभार
इकाई नौ - इतिहास विभाग की BAHI-202 से साभार
इकाई दस - इतिहास विभाग की BAHI-202 से साभार
इकाई ग्यारह-इतिहास विभाग की BAHI-202 से साभार
इकाई बारह- इतिहास विभाग की BAHI-202 से साभार
इकाई तेरह - इतिहास विभाग की BAHI-202 से साभार
इकाई चौदह-इतिहास विभाग की BAHI-202 से साभार

प्रकाशन वर्ष: मई
कापी राइट:/ उत्तराखण्ड मुक्त विश्विद्यालय
संस्करण: सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशक: कुल सचिव उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल
उत्तराखण्ड।

इकाई एक

पुनर्जागरण , धर्म एवं समाज सुधार

1.1. प्रस्तावना

1.2. उद्देश्य

1.3 पुनर्जागरण

1.4 धर्म एवं समाज सुधार आन्दोलन

1.4.1. ब्रह्म समाज और राजा राममोहन रॉय

1.4.2 विधवा- पुनर्विवाह आन्दोलन एवं ईश्वरचंद्र विद्यासागर

1.4.3. यंग बंगाल आन्दोलन और हेनरी विवियन डेरोजियो

1.4.4. प्रार्थना समाज और महादेव गोविन्द रानाडे

1.4.5. आर्य समाज और स्वामी दयानंद सरस्वती

1.4.6. रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानंद

1.4.7. थियोसाफिकल सोसाइटी

1.4.8. अलीगढ़ आन्दोलन और सर सैयद अहमद खान

1.4.9. देवबंद आन्दोलन

1.4.10. अहमदिया आन्दोलन

1.4.11. अरव्विपुरम आन्दोलन

1.4.12. ज्योतिबा फूले एवं सत्यशोधक समाज

1.5. सामाजिक सुधार के परिणाम

1.6. सारांश

1.7. बहुविकल्पीय प्रश्न

1.8. बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9. सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.10. निबंधात्मक प्रश्न

1.1. **प्रस्तावना**

पुनर्जागरण, धर्म एवं समाज सुधार आधुनिक विश्व-इतिहास और भारतीय इतिहास दोनों में अत्यंत महत्वपूर्ण विषय रहे हैं। मध्यकालीन यूरोप में प्रारम्भ हुए पुनर्जागरण ने न केवल कला, साहित्य और विज्ञान में नई चेतना को जन्म दिया, बल्कि मनुष्य को तर्क, विवेक और स्वाधीनता का महत्व समझाया। यह वह दौर था जब मनुष्य ने स्वयं को केंद्र में रखा और ज्ञान के विविध आयामों को नए रूप में समझने का प्रयास किया। इसी के साथ धार्मिक सुधार आंदोलनों ने सामाजिक संरचनाओं को नए आयाम प्रदान किए और चर्च की सत्ता को चुनौती दी।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी उन्नीसवीं सदी में धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आंदोलनों ने आधुनिक राष्ट्र की नींव रखी। इन आंदोलनों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों, लैंगिक असमानताओं और जातिगत भेदभावों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए नए सामाजिक मूल्यों का निर्माण किया। राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, ज्योतिराव फुले और स्वामी विवेकानंद जैसे सुधारकों ने भारतीय समाज में आधुनिकता, शिक्षा और समानता जैसे सिद्धांतों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारत पर ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना ने समाज में व्यापक वैचारिक उथल- पुथल को जन्म दिया था। **19** वीं सदी के बौद्धिक जगत में भारत की आंतरिक सामाजिक- सांस्कृतिक कमजोरियों के प्रति एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास हो रहा था। इस परिदृश्य में नवशिक्षित भारतीयों के बीच आधुनिक पश्चिमी विचारों की पहुँच से एक नयी विचारधारा का निर्माण हुआ, जो कि तमाम तरीकों से अपने समाज की अन्तर्निहित बुराइयों को जड़ से मिटाना चाहती थी। यह कोई संगठित और सुनियोजित प्रयास नहीं, बल्कि अलग- अलग इलाकों में अलग- अलग समय में कुछ व्यक्तियों के प्रयासों से शुरू हुए वैचारिक परिवर्तन की उपज थे, जिन्हें हम सामाजिक- धार्मिक सुधार आंदोलन या फिर पुनर्जागरण के नाम से जानते हैं।

1.2. उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको **19**वीं सदी में देश के विभिन्न भागों में हुए सामाजिक- धार्मिक आंदोलनों की पृष्ठभूमि, उनकी प्रकृति, उनके प्रभाव और उनके वैचारिक आधार सहित कुछ महत्वपूर्ण आन्दोलनों से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- पुनर्जागरण के अर्थ और महत्त्व से अवगत हो सकेंगे |
- भारतीय परिपेक्ष्य में पुनर्जागरण के स्वरुप को जान पाएंगे |
- आधुनिक भारत के सन्दर्भ में सामाजिक - धार्मिक सुधार आन्दोलनों के स्वरुप और महत्त्व को जान पाएंगे |
- कुछ महत्वपूर्ण आन्दोलनों और उनसे जुड़े व्यक्तित्वों के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे
- सामाजिक - धार्मिक सुधार आन्दोलन के परिणामएवं प्रभाव को समझ पाएंगे |

1.3 **पुनर्जागरण**

पुनर्जागरण का शब्दिक अर्थ होता हैः पुनर्जीवित होना अथवापुनर्जागृत होना । इस रूप में पुनर्जागरण शब्द कामहत्व और प्रयोग मध्यकाल से आधुनिक काल के बीच संक्रमण के दौरान व्यक्त होने वाले बौद्धिक, कलात्मक एवंसांस्कृतिक इत्यादि क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। पुनर्जागरण यूरोप के इतिहास में महत्वपूर्ण और विशेषकर मानव जीवन से संबंधित समस्याओं के संबंध में लोगों के दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन लाने में सफल रहा । इसके साथ-साथ इसकी अभिव्यक्ति केवल कला, साहित्य, दर्शन, विज्ञान के क्षेत्र में ही नहीं हुई अपितु राजनीतिक, अर्थिक एवंसामाजिक आदि क्षेत्रों में भी हुई। सही अर्थो में पुनर्जागरण विश्व और मानव की खोज था। इसने आधुनिक सभ्यता का आधार निर्मित किया, जिसकी अभिव्यक्ति गणतंत्रवादी स्वतंत्रता के रूप में हुई।

पुनर्जागरण मनुष्य की बौद्धिक और कलात्मक ऊर्जाओं की एक ऐसी अभिव्यक्ति थी जिसके द्वारा यूरोप ने मध्यकाल से निकल कर आधुनिक काल में प्रवेश किया | इसने मानव जीवन के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक सभी पहलुओं में व्यापक परिवर्तन लाने का कार्य किया । पुनर्जागरणकालीन साहित्य मनुष्य और मनुष्य से सम्बंधित सभी अवयवों से जुडा था और इसकी रचना जनसामान्य की भाषाओं में हुई थी। इस दृष्टि से पुनर्जागरण कालीन साहित्य मध्ययुगीय साहित्य से भिन्न था जिसमें धर्म की बहुलता थी और जिसकी रचना लैटिन भाषा में हुई थी। इसके अलावा, अब कला का स्वरुप धार्मिक बंधनों से मुक्त होकर अधिक यथार्थवादी होने लगा । कला अब जीवन्त एवं आकर्षक हो गयी। लियोनादो द विंची (विचि), माइकल ऍजलों एवं राफेल आदि इस युग के प्रसिद्ध कलाकार थे। इस युग में मूर्तिकला स्थापत्य कला की अधीनता से मुक्त होकर एक स्वतंत्र कला के रुप में स्थापित हुई और साथ ही एक धर्मनिरपेक्ष उद्देश्य से भी प्रेरित होने लगी।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि पुनर्जागरण से तात्पर्य उन सभी बौद्धिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों से है जो मध्ययुग के अन्त में दृष्टिगोचर हो रहे थे। इन परिवर्तनों में सामन्तवाद की अवनति, प्राचीन साहित्य का अध्ययन, राष्ट्रीय राज्यों का उत्थान, आधुनिक विज्ञान का प्रारंभ, नये व्यापारिक मार्गो की खोज, प्रारंभिक पूँजीवाद की शुरुआत इत्यादि प्रमुख रूप से सम्मिलित है, जिन्हें पुनर्जागरण के प्रमुख कारण भी माना जा सकता है |

भारतीय परिदृश्य में पुनर्जागरण की अवधारणा पश्चिमी यूरोप में हुए पुनर्जागरण से भिन्न थी, किन्तु उसकी मूल प्रेरणा के तत्व जैसे - नई चेतना, तर्क, आधुनिकता, शिक्षा और सामाजिक सुधार की आकांक्षा समान थे । यूरोप में पुनर्जागरण प्राचीन ग्रीक–रोमन आदर्शों के पुनर्जीवन से जुड़ा था, जबकि भारत में यह आधुनिक विचारों के प्रभाव, औपनिवेशिक शासन, वैज्ञानिक संपर्क और सामाजिक सुधार आंदोलनों के परिणामस्वरूप विकसित हुआ। भारतीय पुनर्जागरण का उद्देश्य था—सामाजिक कुरीतियों से मुक्ति, मानवाधिकारों की स्थापना और आधुनिक राष्ट्र का निर्माण।भारतीय पुनर्जागरण की शुरुआत मुख्यतः उन्नीसवीं सदी में हुई, जब अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार, पश्चिमी विज्ञान के आगमन और प्रिंट संस्कृति के विकास ने बौद्धिक जगत को नई दिशा दी। भारत में सदियों से प्रचलित परंपराएँ, धार्मिक रूढ़ियाँ और जातिगत संरचनाएँ समाज के विकास में बाधा बन चुकी थीं। इन परिस्थितियों में आधुनिक विचारों का आगमन एक नए युग की शुरुआत का प्रतीक बना।

भारत में पुनर्जागरण की अवधारणा को समझने के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि भारत का पुनर्जागरण बाहरी संपर्क और आंतरिक आवश्यकताओं दोनों का परिणाम था। यूरोप में जहाँ पुनर्जागरण का स्रोत शास्त्रीय परंपराएँ थीं, वहीं भारत में इसका मुख्य स्रोत था—औपनिवेशिक शासन के माध्यम से आई आधुनिक शिक्षा और तर्कशील दृष्टि। इसने भारतीय समाज को आत्म-परीक्षण करने के लिए प्रेरित किया और अपने अतीत को नए ढंग से समझने का अवसर प्रदान किया।भारतीय पुनर्जागरण की उत्पत्ति का महत्त्वपूर्ण आधार था—अंग्रेजी शिक्षा का

प्रसार। मैकॉलेऔर एल्फिन्स्टन की नीतियों ने पश्चिमी विज्ञान, राजनीति और दर्शन से भारतीयों को परिचित कराया। इससे एक नवीन बौद्धिक वर्ग (educated middle class) उत्पन्न हुआ जिसने भारतीय समाज की समस्याओं को आधुनिक दृष्टि से देखना प्रारम्भ किया। इसी वर्ग ने बाद में सामाजिक सुधार, पत्रकारिता, साहित्यिक पुनर्जागरण और राष्ट्रवाद को दिशा दी।दूसरी ओर, मुद्रण तकनीक और प्रेसने भारतीय पुनर्जागरण को अत्यधिक गति दी। उन्नीसवीं सदी में बंगाल, महाराष्ट्र, मद्रास और उत्तर भारत में अखबारों एवं पत्रिकाओं की स्थापना ने जनचेतना को व्यापक बनाया। 'संवाद कौमुदी', 'तत्त्वबोधिनी पत्रिका', 'मराठा', 'केसरी' और 'अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट' जैसे प्रकाशनों ने सामाजिक कुरीतियों की आलोचना की और जनता को नए विचारों से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय पुनर्जागरण की जड़ें सामाजिक सुधार आंदोलनों में निहित थीं। राजा राममोहन राय द्वारा सती प्रथा का विरोध, ईश्वरचंद्र विद्यासागर द्वारा विधवा पुनर्विवाह का समर्थन, स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा वेद-आधारित सुधारवाद, और ज्योतिराव फुले द्वारा सामाजिक समानता के लिए संघर्ष ने समाज को जागरूक बनाया। इन सुधारकों ने तर्क पर आधारित धार्मिक एवं सामाजिक चिंतन को आगे बढ़ाया, जो पुनर्जागरण की मूल विशेषता थी।भारत में पुनर्जागरण का एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत था—भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं का पुनर्मूल्यांकन। उन्नीसवीं सदी में संस्कृत, फारसी, पाली और प्राकृत साहित्य का पुनर्पाठ हुआ। मैक्समूलर, विल्सन, राजेंद्रलाल मित्र, आर्य समाज और ब्रह्म समाज ने भारतीय शास्त्रों, उपनिषदों और वेदों के वैज्ञानिक एवं उदार तत्वों को पुनः पहचानने में योगदान दिया। इससे भारतीयों में सांस्कृतिक आत्मविश्वास बढ़ा और 'आधुनिकता' तथा 'परंपरा' के बीच नया संतुलन स्थापित हुआ।

भारतीय पुनर्जागरण में वैज्ञानिक चेतना का उदय भी अत्यंत महत्वपूर्ण था। पश्चिमी विज्ञान, चिकित्सा और तकनीक के आगमन ने भारतीय समाज को नई संभावनाओं से परिचित कराया। भारतीय वैज्ञानिक जागरूकता का विकास आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ हुआ, जिसके प्रमुख उदाहरण हैं मद्रास, कलकत्ता और बंबई विश्वविद्यालयों की स्थापना (1857)। इस वैज्ञानिक दृष्टि ने समाज में तर्कशीलता, प्रश्न पूछने की क्षमता और परिवर्तन की आवश्यकता को मजबूत किया।

भारतीय पुनर्जागरण की उत्पत्ति में औपनिवेशिक शासन का एक दोहरा स्वरूप देखा जा सकता है। एक ओर तो यह शासन शोषण और असमानता का प्रतीक था, परन्तु दूसरी ओर इसके माध्यम से आधुनिक शिक्षा, कानून और प्रशासनिक सुधारों ने नई सामाजिक संरचनाओं को जन्म दिया। भारतीय बुद्धिजीवियों ने इन आधुनिक तत्वों का उपयोग करके सामाजिक परिवर्तन, राष्ट्रीय चेतना और लोकतांत्रिक आदर्शों को विकसित किया।

इस प्रकार, भारतीय परिदृश्य में पुनर्जागरण एक बहुआयामी प्रक्रिया थी, जिसमें यूरोपीय आधुनिकता, भारतीय सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक सुधार आंदोलनों, पत्रकारिता, विज्ञान और शिक्षा सभी ने मिलकर योगदान दिया। यह पुनर्जागरण न तो पूर्णतः पश्चिमी था, न ही पूरी तरह स्वदेशी; बल्कि यह एक समन्वित प्रक्रिया थी जिसने भारत को आधुनिक राष्ट्र के रूप में रूपांतरित करने की ऐतिहासिक नींव रखी। भारतीय पुनर्जागरण का प्रभाव आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, सामाजिक न्याय और आधुनिक भारतीय लोकतंत्र में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

1.4 धर्म एवं समाज सुधार आन्दोलन

सामाजिक- धार्मिक समाज सुधार आन्दोलनों पर औपनिवेशिक राज्य का क्या प्रभाव था**,** यह एक रोचक प्रश्न है। निश्चित रूप से अंग्रेजी शासन प्रणाली के अंतर्गत भारत का राजनीतिक और प्रशासनिक रूप से एकीकरण कर

दिया गया था। परन्तु यह किसी भले के उद्देश्य से नहीं किया गया था वरन उसके पीछे भारत के आर्थिक दोहन का मंतव्य था। लेकिन समूचे देश पर इसके विरुद्ध हुयी प्रतिक्रिया लगभग एक समान थी। बिपन चन्द्र के शब्दों में सारे देश के दुःख- दर्द एक समान हो गए थे। इस तरह ही सारे देश में पश्चिमी शिक्षा के संपर्क में आये शिक्षित भारतीय मध्यवर्ग के भीतर भी इस नयी औपनिवेशिक चुनौती की प्रतिक्रिया भी लगभग एक समान हुयी। सबसे पहले बंगाल और फिर महाराष्ट्र होते हुए अपने समाज के भीतर की कमजोरियों के विरुद्ध संघर्ष करने की समझ इसी प्रतिक्रिया का बौद्धिक उत्पाद थी। यानि भारतीय लोगों के बौद्धिक विकास की जो परिस्थितियां औपनिवेशिक राज्य के अंतर्गत उत्पन्न हुयी थी, भारतीय बुद्धिजीवियों ने उसे अपने सामाजिक ढाँचे की पुनर्रचना की दृष्टि विकसित करने के लिए इस्तेमाल कर लिया। कुल मिलाकर, भारत का सुधार आन्दोलन अंग्रेजी राज की कृपा का परिणाम नहीं था।

इस दिशा में भारत के प्राचीन इतिहास की खोज महत्वपूर्ण थी, जिसने लोगों को अपने अतीत के प्रति जागरूक बनाया। प्राच्यवादियों का इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने प्राचीन भारतीय धर्मों का महिमामंडन करके लोगों को उनकी क्षमताओं पर यकीन करना सिखाया। ईसाई मिशनरियों के हिन्दू और इस्लाम धर्मों के खिलाफ आक्रामक प्रचार ने भी धार्मिक ढांचों में सैकड़ों सालों में व्याप्त हो गयी बुराइयों और कुरीतियों को ख़त्म करने के लिए प्रेरित किया। इन तमाम परिस्थितियों में प्रबुद्ध वर्ग के बीच से अलग- अलग तरह की प्रतिक्रियाएं हुयी। जिन्होंने सुधार के अलग- अलग तरीके सुझाए और उन पर अमल किया। इनमें पहला तरीका आंतरिक सुधारों का था। यानि समाज के भीतर जागरूकता का प्रसार करना और उसकी चेतना को विकसित करना। मसलन राजा राममोहन रॉय ने सती प्रथा को रोकने के लिए लोगों को समझाने- बुझाने, उन्हें प्राचीन धर्मशास्त्रों का हवाल देकर यकीन दिलाने का काम किया।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह के लिए कलकत्ता की सड़कों पर कई बार जान के जोखिम का सामना किया। कट्टरपंथी हिन्दुओं ने उन पर हमले किये। लेकिन इसी सबके बीच लोगों में विधवा पुनर्विवाह को लेकर एक नयी तरह की चेतना भी विकसित हुयी। भीतर से सुधार की यह पद्धति वास्तव में सुधार आन्दोलनों की सबसे बड़ी पद्धति थी। दूसरा तरीका था कानूनी रोक के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों को रोकना। जैसे राजा राममोहन रॉय के सती- प्रथा विरोधी अभियान के बाद लार्ड विलियम बैंटिक ने सती प्रथा पर रोक लगा दी थी। लेकिन इस पद्धति के मुख्य प्रतिनिधि थे- केशवचंद्र सेन, महादेव गोविन्द रानाडे और वीरेशलिंगम आदि। इन्होने क़ानून के सहारे सामजिक कुरीतियों से लोगों को विमुख करने के विचार की हिमायत की। लेकिन एक विदेशी राज्य में लोग ऐसे क़दमों को अपनी परंपरा में हस्तक्षेप मानते थे।

सन **1857** में धार्मिक- जातीय मामलों में दखल का दुष्परिणाम अंग्रेज झेल चुके थे। इसलिए इस तरह के क़दमों की एक सीमा थी और यह ज्यादा प्रभावी तरीका नहीं सिद्ध हो सकता था। तीसरा तरीका था मिसाल बनाने का।इस तरीके में कुछ सुधारक अपनी ओर से परंपरागत रूढ़ियों को चुनौती देते हुए एक प्रतीक बन जाते थे और उम्मीद करते थे कि अन्य लोग भी उनकी देखा- देखी उनका अनुसरण करेंगे। इस धारा के महत्वपूर्ण सुधारक थे- दक्षिणारंजन मुख़र्जी, राम गोपाल घोष और कृष्णा मोहन बनर्जी। ये तीनों ही हेनरी विवियन डेरोजियो के अनुयायी थे और यंग बंगाल आन्दोलन से सम्बन्ध रखते थे। चौथा तरीका सामाजिक सेवा और कार्यों के माध्यम से लोगों के हृदयमें स्थान बनाने का था। ईश्वरचंद्र विद्यासागर, आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन इस धारा का प्रतिनिधित्व करते थे। आर्य समाज ने स्कूल- कॉलेज के तंत्र के माध्यम से तो, रामकृष्ण मिशन अस्पतालों, दवाखानों औरअनाथालयों के मार्फ़त लोगों की सेवा करके अपने सन्देश का प्रचार- प्रसार करते थे। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने तो अपना सबकुछ विधवा पुनर्विवाह के नाम पर दांव पर लगा दिया। सभी सुधार आन्दोलनों ने मानवतावाद,

तर्कवाद, सर्वहितवाद और प्रगतिशीलता के महत्वपूर्ण मूल्यों पर बराबर जोर दिया। चाहे वे हिन्दू धर्म सुधार से सम्बंधित हो अथवा मुस्लिम धर्मसुधार से।

1.4.1. ब्रह्म समाज और राजा राममोहन रॉय

राजा राममोहन रॉय को "आधुनिक भारत का पिता" कहा जाता है। वास्तव में वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारतीय समाज को मध्ययुगीन सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति दिलाने का आह्वान किया। **22** मई, **1772** को बंगालके हुगली जिले में उनका जन्म हुआ था। वे कई भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्हें अरबी- फ़ारसी, संस्कृत, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, ग्रीक, लैटिन और हिब्रू जैसी भाषाओं पर अधिकार प्राप्त था। उनकी सामाजिक दृष्टि तमामधर्मों के अच्छे विचारों को गृहण करके निर्मित हुयी थी। उनकी सोच में प्रगतिशीलता के सभी तत्व विद्यमान थे। वे मानव समाज की मूलभूत समानता, स्त्रियों के नागरिक अधिकारों, और मानवमात्र की श्रेष्ठता केपैरोकार थे। यही नहीं उन्होंने भारत के लिए पूँजीवाद का समर्थन किया था। यानी उनकी सोच का पक्ष एक तरफ पाश्चात्य विचारों से जुड़ता था तो दूसरी ओर उसकी जडें भारतीय सभ्यता में भी गहरे तक जुडी थी।

उनकी प्रसिद्द कृतियाँ है- तुल्फ़ात-उल-मुवाहिदीन (एकेश्वरवादियों को उपहार), मंजार्तुल अदयान (विभिन्न धर्मों पर फारसी में परिचर्चा) औरप्रीसेप्ट्स ऑफ़ जीसस। इसके अलावा उन्होंने वेदों और पांच उपनिषदों केबांगला अनुवाद किये और एकेश्वरवाद पर कई अन्य किताबें का लेखन भी किया। **1814** में उन्होंने कलकत्ता में कुछ नौजवानों की मदद से आत्मीय सभा की स्थापना की। उन्होंने मूर्तिपूजा, जातिगत भेदभाव, धार्मिकआडम्बरों, बहुविवाह, कुलीनवाद और सतीप्रथा जैसी कुरीतियों का विरोध किया। अपने विचारों के समर्थन के लिए उन्होंने प्राचीन धार्मिक ग्रंथों का सहारा लिया। क्योंकि आम जनता इस तरह आसानी से समझ जाती थी।लेकिन उनके विचारों का मूल स्रोत था मानवतावाद और तर्कवाद। वे वेदान्त दर्शन में अगाथ आस्था रखते थे। यही नहीं, उन्हें भारत में पत्रकारिता का अग्रदूत भी माना जाता है और राजनीतिक मुद्दों पर भी उनके विचारऔर सक्रियता के कारण वे राजनीतिक जन आन्दोलनों के प्रवर्तक भी थे।

1829 में उन्होंने ब्रह्म सभा नामक धार्मिक संस्था की स्थापना की जो बाद में ब्रह्म समाज के नाम से जाना गया। इस नए पंथ में धार्मिक और जातीय कट्टरता के लिए कोई जगह नहीं थी। इसका उद्देश्य था- हिन्दू धर्म कोउसमें व्याप्त कुरीतियों से मुक्त बनाना, एकेश्वरवाद का प्रचार- प्रसार करना, सती प्रथा का विरोध करना और मानवमात्र की प्रतिष्ठा को स्थापित करना। इस संस्था के लोग वेद और उपनिषद का सहारा लेकर तर्क केआधार पर सामजिक कुरीतियों को गलत ठहराते थे। **1818** से उन्होंने सती प्रथा के विरुद्ध जनमत का निर्माण करने का अभियान छेड़ दिया। वे शमशान घाट जाते और लोगों को सती प्रथा का पालन न करने के लिएसमझाते थे। बाद में इनके प्रयासों और फिर लार्ड विलियम बैंटिक द्वारा **1829** में सती प्रथा पर कानूनी पाबंदी लगाने से इस दिशा में काफ़ी मदद मिली। बाद में देवेन्द्रनाथ टैगोर और केशवचंद्र सेन के नेतृत्व में ब्रह्मसमाज का काफी विस्तार हुआ।

1.4.2 विधवा- पुनर्विवाह आन्दोलन एवं ईश्वरचंद्र विद्यासागर

ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह आन्दोलन के लिए कोई संगठित प्रयास नहीं किये, जिस तरह ब्रह्म समाज आदि ने सती प्रथा आदि मुद्दों पर किये थे। लेकिन फिर भी उन्होंने समकालीन समाज सुधारआन्दोलन में महान योगदान किया। सती प्रथा के उन्मूलन के राजा राममोहन रॉय के प्रयासों ने यह धारणा स्थापित की कि पुरुष के बिना भी स्त्री को जीवन जीने के अधिकार प्राप्त हैं। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने उस दिशामें आगे बढ़ते हुए स्त्रियों के सम्मानजनक जीवन के लिए संघर्ष किया। बाल- विवाह, बहु- विवाह आदि कुप्रथाओं के मुखर विरोधी विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह के लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। यह उन्ही केप्रयासों का परिणाम था कि

सरकार ने **1856** में विधवा पुनर्विवाह कानून पारित किया। स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए उन्होंने स्कूलों के सरकारी निरीक्षक होने की हैसियत से बंगाल में अनेक बालिका विद्यालयखोले। बेथुन स्कूल के मंत्री होकर भी उन्होंने नारी शिक्षा के लिए अगाध प्रयत्न किये। ब्राह्मण जाति के संस्कृत पर एकाधिकार के विरोधस्वरूप उन्होंने संस्कृत कॉलेज में पढने के लिए गैर- ब्राह्मणों को भी पात्र बना दिया।वे स्वयं भी संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे।

1.4.3. यंग बंगाल आन्दोलन और हेनरी विवियन डेरोजियो

इस आन्दोलन के प्रवर्तक एक नौजवान हेनरी विवियन डेरोजियो थे जो अपने विचारों में कहीं ज्यादा आधुनिक और मुखर थे। **1809** में जन्मे डेरोजियोसत्रह साल की उम्र में एक धड़ीसाज के रूप में कलकत्ता आये थे। इसीउम्र में उन्होंने हिन्दू कॉलेज में पढ़ाना शुरू कर दिया और अपने इर्द- गिर्द अनुयायियों का एक दल संगठित कर लिया। वे फ्रांसीसी क्रांति से प्रेरणा ग्रहण करते थे और अपने क्रांतिकारी विचारों के लिए जाने जाते थे। ये प्रचंडदेशभक्त लोगों का दल ही यंग बंगाल कहलाया। डेरोजियो ने समाज सुधार के लिए कुछ अन्य संस्थाओं जैसे बंगहित सभा, एंग्लो- इंडियन हिन्दू एसोसिएशन, अकादमिक एसोसिएशन और सोसाइटी फॉर द एक्वीजीशनऑफ़ जनरल नॉलेज की स्थापना भी की। यंग बंगाल आन्दोलन के मुख्य मुद्दे थे- प्रेस की स्वतंत्रता, जमींदारों के अत्याचारों से रैयतों की रक्षा, उच्च सरकारी सेवाओं में भारतीयों के प्रतिनिधित्व की मांग, जूरी द्वारामुकदमों की सुनवाई। ये लोग नारी अधिकारों के घोर हिमायती थे। इन्होने सामाजिक कुरीतियों पर तीखे प्रहार किये। भले ही डेरोजियो और उनके अनुयायी कोई बड़ा और संगठित आन्दोलन नहीं चला सके और सिर्फ **22**वर्ष की उम्र में ही वे चल बसे, उन्होंने बंगाल में तमाम जनहित के मुद्दों पर आन्दोलन खड़ा करके लोगों को सामाजिक- राजनीतिक रूप से सक्रिय बनाया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने डेरोजियो और उनके अनुयाइयों को "बंगाल मेंआधुनिक सभ्यता के अग्रदूत कहा था".

1.4.4. प्रार्थना समाज और महादेव गोविन्द रानाडे

प्रार्थना समाज की स्थापना महादेव गोविन्द रानाडे और डॉक्टर आत्माराम पांडुरंग ने केशवचंद्र सेन की महाराष्ट्र यात्रा से प्रभावित होकर **1867** में की थी। रानाडे को "पश्चिमी भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण का अग्रदूत"कहा जाता है। बंगाल में समाज सुधार के विस्तार के बाद महाराष्ट्र में समाज सुधार की भावना भावना ने जोर पकड़ा। इस समाज का मुख्य उद्देश्य स्त्रियों से जुड़े हुए मुद्दों पर जनचेतना का निर्माण, जातिगत संकीर्णता काप्रतिषेध, स्त्री शिक्षा का आरम्भ और बाल विवाह- विधवा पुनर्विवाह आदि विषयों पर काम करना था। रानाडे ने ही बाद में सार्वजनिक समाज की स्थापना की थी। इनके अभियान में विष्णु शास्त्री और जी० डी० कर्वे नेअमूल्य सहयोग प्रदान किया। कर्वे की मदद से ही **1867** में रानाडे ने एक विधवा आश्रम संघ की स्थापना की। **1870** में रानाडे और उनके साथियों ने मिलकर पूना सार्वजनिक सभा की स्थापना की। यह संस्था बाद मेंभारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पूर्ववर्ती संस्थाओं में गिनी जाती है जिसने एक अखिल भारतीय संगठन की नींव स्थापित की।

1.4.5. आर्य समाज और स्वामी दयानंद सरस्वती

सोलह वर्ष की आयु में ही संन्यास ग्रहण कर लेने वाले दयानंद सरस्वती ने **1875** में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की थी। जिसका मुख्यालय बाद में लाहौर स्थानांतरित कर दिया गया था। आर्य समाज की स्थापनाके मूल उद्देश्य थे- वैदिक धर्म यानि वेदों पर आधारित धर्म को पुनः शुद्ध करना और उसे बाद के समय में आ गयी बुराइयों- कुरीतियों से मुक्त करना, समूचे भारत को धार्मिक एकता के सूत्र में पिरोना और उस पर पद रहेपाश्चात्य प्रभाव का निषेध करना। स्वामी दयानंद ने नारा दिया- "वेदों की ओर लौटो". वे मानते थे कि वेद भारतीय सभ्यता के आधार स्तम्भ हैं और उन्हें ही पुनर्स्थापित करके तत्कालीन बुराइयों से छुटकारा पाया जासकता है। वेदों की

अपरिवर्तनीयता, शाश्वतता और दैवीयता पर यकीन करने वाले आर्य समाज ने हिन्दू धर्म पर बढ़ रहे इस्लामिक और ईसाई धर्मप्रचारकों के प्रभाव का मुकाबला करने के लिए आक्रामक नीति अपनाई।उन्होंने "सत्यार्थ प्रकाश" नामक अपनी पुस्तक में इन धर्मों की बुराइयों पर प्रहार किया। छुआछूत और जातिभेद को सिरे से नकारने वाले आर्य समाजियों द्वारा धर्मान्तरित हुए लोगों की हिन्दू धर्म में घर वापसी के लिएशुद्धि आन्दोलन चलाया। इसके अलावा दूसरा महत्वपूर्ण कार्यक्रम गौरक्षा से सम्बंधित था। इन दोनों ही मुद्दों ने बाद में मुस्लिम धर्मप्रचारकों के साथ सीधे मुकाबले में सांप्रदायिक राह पकड़ ली थी। आर्य समाज आन्दोलनकी पहुँच भारतीय समाज में इतनी गहरी थी कि विन्सेंट चिरोल ने अपनी किताब "द इंडियन अनरेस्ट" में आर्य समाज को "भारतीय अशांति का जन्मदाता" कहा था।स्वामी दयानंद की मृत्यु के बाद दयानंद एंग्लो- वैदिकशिक्षा आन्दोलन ने समूचे उत्तर भारत में शिक्षा के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

1.4.6. रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकनद कलकत्ता के पास दक्षिणेश्वर काली मंदिर के पुजारी स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य थे। सभी धर्मों को सत्य मानने वाले और धर्म के रहस्यवादी आध्यात्मिक साधक परमहंस महान व्यक्तित्व थे।**1886** में परमहंस की मृत्यु के बाद चौबीस वर्षीय विवेकानंद ने समूचे भारत की यात्रा की और घोषित किया- "मैं जिस प्रभु में विश्वास करता हूँ वह सभी आत्माओं का समुच्चय है और सर्वोपरि है। मेरा प्रभु पतितों, पीड़ितोंऔर सभी प्रजातियों में निर्बलों का रक्षक और उद्धारक है।" **1893** में शिकागो में हुए विश्व धर्म सम्मलेन में उनके द्वारा दिए गए भाषण से उनकी ख्याति दूर- दूर तक पहुँच गयी। अमेरिकी अखबारों द्वारा उनके भाषण कीरिपोर्टिंग के बाद वे भारत में बहुत प्रसिद्द हो गए। **1897** में स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। इस मिशन ने देश भर में अनेक स्कूल, अस्पताल, अनाथालय और पुस्तकालय खोल कर लोगों की सेवाकरने का प्रयास किया। स्वामी विवेकानंद का मुख्य जोर सेवा पर था और इसे ही उन्होंने मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र तरीका कहा था। स्वामी विवेकानंद की सामाजिक- राजनीतिक दृष्टि बहुत व्यापक थी। उन्होंने साफ़ शब्दोंमें कहा था- "जब तक देश में लाखों लोग भूखे और अज्ञानी हैं, मैं ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को देशद्रोही समझूँगा जिन्होंने उनकी मेहनत की कमाई से शिक्षा गृहण की पर उनकी परवाह नहीं करते।"| उन्होंने छुआछूत,साम्प्रदायिकता और लगभग हर पहलू पर प्रहतिशील दृष्टि से विचार किया और कहा- "मैं ऐसे धर्म या ईश्वर को नहीं मानता जो विधवाओं के आँसू पोंछ सके, या किसी अनाथ को एक टुकड़ा रोटी भी न दे सके। वेद,कुरान और अन्य सभी धर्म ग्रंथों को अब कुछ समय के लिए विश्राम करने दें।"

1.4.7. थियोसाफिकल सोसाइटी

थियोसाफिकल सोसाइटी की स्थापना मैडम ब्लावात्सकी और कर्नल आल्काट ने न्यूयार्क में **1875** में की थी। बाद में भारत आकर इन्होने मद्रास के करीब अडियार में अपना मुख्यालय बनाया। ये लोग प्राच्य धर्मों सेअत्यंत प्रभावित थे और इस सोसाइटी की स्थापना भी इन धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए की गयी थी। थियोसोफिस्ट हिन्दू धर्म के आध्यात्मिक दर्शन और उसके कर्म सिद्धांत को मानते थे। इसीलिएपुनर्जन्म में भी उनकी गहरी आस्था थी। परन्तु जाति- पाति, साम्प्रदायिक या लैंगिक विभेदों से इतर थिओसोफिस्ट सार्वभौमिक बंधुत्व का प्रचार करते थे। इस आन्दोलन ने भले ही एक बड़े आन्दोलन का स्वरुप प्राप्त नकिया हो, भारतीय धर्मों की भूरि- भूरि प्रशंसा ने भारतीयों में आत्मविश्वास का संचार किया। साथ ही इस आदोलन को पहचान इसकी नेता एनी बेसेंट के कामों से मिली। जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उत्साह कासंचार किया और उसकी अध्यक्ष

तक बनीं। उन्होंने ही बाद में होमरूल लीग की स्थापना की थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने बनारस में एक केंद्रीय हिन्दू विद्यालय खोल था, जिसे बाद में मदन मोहन मालवीय के प्रयासों नेबनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का रूप दिया।

1.4.8. अलीगढ़ आन्दोलन और सर सैयद अहमद खान

मुस्लिम धर्मसुधार की आन्दोलन की शुरुआत हिन्दू धर्मसुधार आन्दोलन की तुलना में देर से हुयी। कलकत्ता में **1863** में मुहम्मडन लिटरेरी सोसाइटी के साथ ही इसकी औपचारिक शुरुआत मानी जा सकती है। परन्तुइस दिशा में सर सैयद अहमद खान का और उनके द्वारा चलाये गए अलीगढ़ आन्दोलन का योगदान सबसे प्रारम्भिक और महत्वपूर्ण था। आधुनिक वैज्ञानिक विचारों में यकीन रखने वाले सर सैयद अहमद नेमुसलामानों को पाश्चात्य शिक्षा की ओर प्रवृत्त किया। उन्होंने कुरान को एकमात्र प्रमाणिक पुस्तक माना और उसकी व्याख्या समकालीन आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टिकोण से की। वे धर्म की गतिशीलता में विश्वास करतेथे। जीवन भर वे इस्लाम को अधिक उदार, तर्कसंगत और आधुनिक धर्म बनाने के प्रयास किये। वे मानते थे कि विचार की स्वतंत्रता अनिवार्य है और किसी भी तरह के कट्टरतावाद और संकुचित दृष्टिकोण के वे खिलाफथे। कहा जा सकता है कि वे इस्लाम के उदारवादी नेता थे जिन्होंने हिन्दुओं को काफिर मानने से इनकार कर दिया और हिन्दू- मुस्लिम एकता की जरूरत पर बल दिया। उन्होंने मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा केप्रचार- प्रसार के लिए **1875** में अलीगढ में मुहम्मदन एंग्लो- ओरिएण्टल कॉलेज की स्थापना की जो बाद में अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय के नाम से प्रसिद्द हुआ। बाद के दिनों में इस कॉलेज के प्रति अपने लगाव केचलते सर सैयद अहमद खान ने समाज सुधार के अपने प्रयासों को लगभग खत्म कर दिया। रूढ़िवादी मुसलमानों के विरोध को रोकने के लिए उन्होंने ऐसा किया था। वे मानते थे कि मुसलमानों की तरक्की आधुनिकशिक्षा के माध्यम से ही संभव है। साथ ही, मुस्लिम मध्य वर्ग के पिछड़ेपन को देखते हुए और हिन्दू मध्य वर्ग के तीव्र उत्थान ने उनके विचारों में कुछ विसंगतियां पैदा कर दी। जिन्होंने बाद में बहुत नुकसान पहुँचाया। वेधीरे- धीरे हिन्दू और मुस्लिम एकता के खिलाफ बोलने लगे और कहा कि ऐसे किसी भी प्रयास से मुसलमानों का नुकसान होगा और हिन्दुओं का वर्चस्व और बढ़ता जाएगा। साथ ही वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भी घोरआलोचक हो गए जो कि एक बहुधार्मिक राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का प्रयास कर रही थी।

1.4.9. देवबंद आन्दोलन

मुहम्मद कासिम ननौतवी और रशीद अहमद गंगोही- दो इस्लामिक धर्मशास्त्रियों ने उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के देवबंद में **1867** में एक मदरसे की स्थापना की थी, जो बाद में विश्वप्रसिद्ध इस्लामिक केंद्र बना।इसका उद्देश्य कुरान और हदीस के आधार पर इस्लामिक शुद्धतावाद का प्रचार- प्रसार करना था। इस मदरसे ने विदेशी शासन को एक कलंक माना और उसके खिलाफ मुसलमानों से जिहाद छेड़ देने का आह्वान किया।इसी वजह से देवबंद आन्दोलन अलीगढ़ आन्दोलन के विपरीत विदेशी शासन के खिलाफ संघर्ष का एक बड़ा केंद्र बना था। इस आन्दोलन ने भारत को एक राष्ट्र माना और इसके मौलानाओं ने आखिर तक मुसलमानों सेकांग्रेस में शामिल होने और उसके साथ अंगरेजी राज के विरुद्ध संघर्ष करने का आह्वान किया। देवबंद आन्दोलन की वजह से मुस्लिम लीग को मुसलमानों को अपने साथ जोड़ने में बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ा।इसीलिए उसने बाद के वर्षों में पाकिस्तान की मांग मनवाने के लिए दंगों और अराजकता के तरीकों का सहारा लेना पड़ा था।

1.4.10. अहमदिया आन्दोलन

अहमदिया आन्दोलन के प्रवर्तक मिर्ज़ा गुलाम अहमद थे। इन्होने **1889** में खुद के मसीहा और महदी होने का दावा किया और बाद में वे खुद को कृष्ण और ईसामसीह का अवतार भी कहने लगे थे। दरअसल उनपरथिओसोफी, हिन्दू धर्म सुधार आन्दोलन और पश्चिमी सुधारवाद का प्रभाव था और वे मानवजाति के सर्वव्यापक धार्मिक सिद्धांतों में विश्वास करते थे। इस आन्दोलन ने मुसलमानों में आधुनिक विचारों के प्रचार-प्रसारके लिए स्कूल- कॉलेज खोले जाने पर बल दिया। उन्होंने एक ओर आर्य समाज और ईसाई धर्मप्रचारकों के विरुद्ध इस्लाम के रक्षक होने का दावा किया और दूसरी ओर दूसरे धर्मों के विरुद्ध संघर्ष का जोरदार विरोध भीकिया। आज के पाकिस्तान में अहमदियों को अपने उदारवादी विचारों के चलते तालिबान के जुल्म का सामना करना पड़ रहा है।

1.4.11. अरव्विपुरम आन्दोलन

सन **1888** में शुरू हुए इस आन्दोलन के प्रणेता केरल के समाज सुधारक श्री नारायण गुरु थे। ब्राह्मणवाद और पुरोहितों के द्वारा निम्न जातियों के शोषण के विरुद्ध छेड़ा गया यह आन्दोलन मंदिर सम्बंधित अनुष्ठानों परब्राह्मण जाति के पुरोहितों के वर्चस्व को तोड़ता था। इस आन्दोलन के तहत स्वयं श्री नारायण गुरु ने सारे ब्राह्मण निषेधों को ठुकराते हुए अरव्विपुरम मंदिर में शिवरात्रि के अवसर पर शिव की प्राण प्रतिष्ठा की। उनकेद्वारा शुरू किया गया यह आन्दोलन बाद के कई समाज सुधार आंदोलनों का प्रेरणा स्रोत बन गया। इसने मंदिर में प्रवेश के निषेध को लेकर निम्नजातियों में पनप रहे असंतोष को सामने ला दिया और बाद में मंदिर प्रवेशआन्दोलन केरल में एक महत्वपूर्ण सामाजिक- राजनीतिक गतिविधि बन गया।

1.4.12. ज्योतिबा फूले एवं सत्यशोधक समाज

ज्योतिबा फूले उन कुछ समाज सुधारकों में एक हैं जिन्होंने ब्राह्मणवाद और पुरोहिती- पाखण्ड पर सबसे जोरदार प्रहार किया। उन्होंने ब्राह्मण व्यवस्था और हिन्दू धर्म की समग्र आलोचना की। उनका मानना था कि इसव्यवस्था के शोषण के न सिर्फ सामाजिक आयाम हैं बल्कि उसके आर्थिक आधारों को भी ज्योतिबा ने पहली बार चिन्हित किया। उनकी इस सोच ने उन्हें घोर ब्राह्मण- विरोधी बना दिया। वे गरीब भारतीय किसानों केजबरदस्त हिमायती थे। उन्होंने **1873** में सत्यशोधक समाज की स्थापना इस उद्देश्य से की थी कि दलित वर्गों को शिक्षित करके उन्हें जाति की जकड़न से मुक्ति दिलाई जा सके। उनकी पुस्तक गुलामगीरी इस सन्दर्भ मेंलिखी गयी एक नायाब किताब है।

1.5. सामाजिक सुधार के परिणाम

सुधार आन्दोलनों ने भारत में एक नए युग का सूत्रपात किया था। यह नया युग दरअसल तर्कवाद की रौशनी में अपनी सामाजिक चुनौतियों से निपटने का प्रयास करता था। नए ज्ञान- विज्ञान, दृष्टिकोण और परिप्रेक्ष्य मेंसमस्याओं के विश्लेषण और विवेचन की इस पद्धति ने सोच- विचार के नए तौर- तरीकों को जन्म दिया था। समाज सुधार की भावना से निकले कार्यक्रम का धीरे- धीरे विस्तार होता गया और कहा जा सकता है कि इसकीचौहद्दी में ही राजनीतिक कार्यक्रमों की आधारशिला निर्मित हुयी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पहले के तमाम समाज सुधारक बाद में कांग्रेस के महत्वपूर्ण नेता भी बने। और काफी लम्बे समय तकउपनिवेशवाद- विरोधी राजनीतिक कार्यक्रम के लिए समाज सुधार कार्यक्रमों से दूर रहने वाली कांग्रेस के भीतर से ही गांधी के आगमन के बाद समाज सुधार के एक नए युग का सूत्रपात हुआ। इस तरह, समाज सुधारआन्दोलन

और बाद में विकसित हुए राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच गहरा अंतर्संबंध था। राजा राममोहन रॉय जैसे प्रारम्भिक सुधारवादी भी राजनीतिक मुद्दों पर न सिर्फ अपनी बेबाक राय सामने रखने लगे थे, बल्कि उन मुद्दोंपर उन्होंने जनमत का निर्माण करने का तरीका भी अपनाया था। यानि सुधार कार्यक्रमों का एक राजनीतिक पहलू भी था, जिसने ही बाद में राजनीतिक चेतना का निर्माण किया।

मोटे तौर पर उन्नीसवीं सदी की अंतिम चौथाई तक आते- आते सुधार आन्दोलनों से निकली धारा तीन स्पष्ट धाराओं में विभाजित हो गयी। पहली धारा समाज सुधार और उपनिवेशवाद विरोधी चेतना के समुच्चय कापरिणाम थी। जिसने राष्ट्रवादी चेतना के निर्माण में अपनी ऊर्जा को खपाया। दूसरी धारा धार्मिक कट्टरपंथ की और बढती हुयी सांप्रदायिक चेतना में समाहित हो गयी। जिसका प्रतिनिधित्व आर्य समाज और अलीगढआन्दोलन करते हैं। तीसरी धारा जाति सम्बन्धी मुद्दों पर उपरोक्त दोनों प्रवृत्तियों से पृथक विकसित हो रही थी। जिसमें ज्योतिबा फूले, श्री नारायण गुरु आदि आते थे। यद्यपि अन्य धाराओं में भी जाती सम्बन्धी मुद्देप्रधान थे परन्तु इस प्रवृत्ति की दृष्टि अन्य आन्दोलनों से भिन्न थी। कुल मिलकर कहें तो, समाज सुधार आन्दोलन के भारतीय इतिहास में दूरगामी परिणाम हुए और इससे विकसित हुयी चेतना ने परवर्ती हर विचारऔर राजनीतिक आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

1.6. सारांश

यूरोप में पुनर्जागरण का उदय **14**वीं–**16**वीं शताब्दी के दौरान हुआ, जिसका मूल आधार मानवतावाद, तार्किकता, वैज्ञानिक दृष्टि, कला और साहित्य का नवोदय था। इस बौद्धिक जागरण ने व्यक्ति की स्वतंत्रता, तर्क और अनुभव को ज्ञान के मुख्य साधन के रूप में स्थापित किया। कालांतर में इसके प्रभाव विश्व के अन्य क्षेत्रों, विशेषकर भारत, तक पहुँचे।भारत में पुनर्जागरण का स्वरूप सामाजिक और धार्मिक सुधार के रूप में उभरा। बंगाल क्षेत्र इसका प्रमुख केंद्र बना। राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना कर एकेश्वरवाद, तर्कवाद और सामाजिक सुधार की दिशा में ऐतिहासिक योगदान दिया। उन्होंने सती प्रथा, बाल विवाह और अन्य कुरीतियों के विरोध में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'वेदों की ओर लौटो' का आह्वान करते हुए जाति-भेद, मूर्ति पूजा तथा अंधविश्वासों को चुनौती दी। इनके प्रयासों ने हिंदू समाज में व्यापक वैचारिक परिवर्तन की नींव रखी।इसी के साथ हिंदू कॉलेज के हेनरी विवियन डेरोजियो की प्रेरणा से यंग बंगाल आन्दोलन ने तार्किक चिंतन, वैज्ञानिक दृष्टि और स्वतंत्र विचार की परंपरा आगे बढ़ाई। विवेकानंद और रामकृष्ण परंपरा ने धर्म को मानव सेवा, नैतिक जीवन और आध्यात्मिक सहिष्णुता से जोड़कर समाज में नई चेतना उत्पन्न की।भारत में मुस्लिम समाज के भीतर सर सैयद अहमद खान के अलीगढ़ आन्दोलन ने आधुनिक शिक्षा, विज्ञानवादी दृष्टिकोण और सामाजिक उन्नति को प्रोत्साहित किया। पंजाब में सिंह सभा आन्दोलन, महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज तथा लाहौर में देव समाज जैसी अनेक धाराओं ने धर्म को तर्क, नैतिकता और सामाजिक समानता के साथ जोड़ने का प्रयास किया।

इन विभिन्न सुधार आंदोलनों का संयुक्त प्रभाव यह रहा कि भारतीय समाज रूढ़ियों, कुरीतियों, जातीय भेदभाव और अंधविश्वासों से मुक्त होकर एक आधुनिक, तर्कशील और जागरूक समाज की ओर अग्रसर हुआ। इस प्रक्रिया ने न केवल भारतीय पुनर्जागरण को शक्ति दी बल्कि आगे चलकर राष्ट्रीय चेतना और स्वतंत्रता संग्राम के वैचारिक आधार को भी मजबूत किया।

इस प्रकार, सामाजिक- धार्मिक सुधार आन्दोलन औपनिवेशिक राज्य द्वारा उत्पन्न चुनौतियों पर भारतीय बौद्धिक वर्ग की प्रतिक्रिया थी। जिसने विभिन्न तरीकों से समाज के तत्कालीन रूढ़िवादी और पिछड़े सामाजिक ढाँचे को बदलने का प्रयास किया। जाति व्यवस्था, छुआछूत,महिलाओं की अत्यंत दयनीय और गुलामों जैसी दशा, जाति

व्यवस्था के अंतर्गत हो रहा शोषण, तमाम धार्मिक आडम्बर, आधुनिक शिक्षा से दूरी और इस तरह के तमाम मुद्दे समाज सुधारकों द्वारा उठाये गए और उनके निस्तारण के प्रयास किये गए। इन समाज सुधार आन्दोलनों ने समाज में जिस चेतना का निर्माण किया उसने आधुनिक भारत के स्वरुप को काफी हद तक प्रभावित किया।

1.7. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. 'वेदों की ओर लौटो' का नारा किसने दिया?

A.स्वामीविवेकानंद

B.स्वामीदयानंदसरस्वती

C.महादेवगोविंदरानाडे

D.केशवचंद्रसेन

2. आर्य समाज की स्थापना किस वर्ष हुई थी?

A.1828

B.1875

C.1857

D.1890

3. सर सैयद अहमद खान किस आन्दोलन से जुड़े थे?

A.आर्यसमाज

B.सिंहसभाआन्दोलन

C.प्रार्थनासमाज

D.अलीगढ़आन्दोलन

4. ईश्वरचंद्र विद्यासागर किस सुधार से विशेष रूप से जुड़े थे?

A.विधवापुनर्विवाह

B.राष्ट्रवाद

C.स्वराजआंदोलन

D.दासप्रथा

5. सती प्रथा को समाप्त कराने में किसका प्रमुख योगदान था?

A.डेरोजियो

B.ईश्वरचंद्रविद्यासागर

C.राजाराममोहनराय

D.विवेकानंद

1.8. बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

उत्तर: 1- B, 2. B, 3- D, 4- A, 5. C

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चन्द्र, बिपन एवं अन्य, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष

2. चन्द्र, बिपन, आधुनिक भारत

3. बंद्योपाध्याय, शेखर, प्लासी से विभाजन तक

4. बंद्योपाध्याय, शेखर, आधुनिक भारत का इतिहास

5. यशपाल और ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास

1.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

Panikkar, K.N., 'Intellectual and Cultural History of Colonial India: Some Conceptual and Historiographical Questions' in S. Bhattacharya and Romila Thapar edited "Situating Indian History"

Panikkar, K.N., editor, Studies in History, Special Issue on 'Intellectual History of India', Volume 3, No. 1, January- June, 1987

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1.यूरोपीय पुनर्जागरण की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करते हुए उसके भारत पर पड़े प्रभावों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

2. सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलनों की वैचारिक पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए कुछ महत्वपूर्ण आन्दोलनों पर प्रकाश डालिए?

इकाई दो

1858 एवं 1861 के क़ानून, भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म: कारण एवं कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में बताए गए उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 1858 का भारतीय शासन अधिनियम (Government of India Act, 1858)

2.4 1861 का भारतीय परिषद् अधिनियम (Indian Councils Act, 1861)

2.5 भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म: कारण

- **2.5.1 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना**
  - **2.5.1.1 प्राचीनकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना**
  - **2.5.1.2 मध्यकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना**
- **2.5.2 भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रवाद के विकास के कारण**
  - **2.5.2.1 भारतीय नवजागरण में राजनीतिक चेतना**
  - **2.5.2.2 1857 के विद्रोह में राजनीतिक चेतना का विकास**
  - **2.5.2.3 भारतीय पत्रों में राजनीतिक चेतना का विकास**
  - **2.5.2.3 भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय**
  - **2.5.2.4 भारत में स्वदेशी और स्वशासन की मांग का पहला चरण**
  - **2.5.2.5 लॉर्ड लिटन का दमनकारी तथा लॉर्ड रिपन का उदार शासन**

2.6 कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में बताए गए उद्देश्य

- **2.6.1 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठन**
  - **2.6.1.1 ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन**
  - **2.6.1.2 बॉम्बे एसोसियेशन**
  - **2.6.1.3 मैड्रास नेटिव एसोसियेशन**
  - **2.6.1.4 ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन**
  - **2.6.1.5 हिन्दू मेला**
  - **2.6.1.6 पूना सार्वजनिक सभा**
  - **2.6.1.7 इण्डियन लीग**
  - **2.6.1.8 इण्डियन एसोसियेशन**
  - **2.6.1.9 महाजन सभा**
  - **2.6.1.10 नेशनल कान्फ्रेन्स**
- **2.7.2 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना तथा उसका प्रथम अधिवेशन**
  - **2.7.2.1 कांग्रेस की स्थापना की परिस्थितियां**
  - **2.7.2.2 भारत में एक राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दल की आवश्यकता**

2.7.2.3 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन

2.8 सारांश

2.9 पारिभाषिक शब्दावली

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

आदि काल से ही हमारे भारत में देश प्रेम की भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। चारो वेदों में, पुराणों तथा महाकाव्यों में राष्ट्रीयता की भावना सर्वत्र व्यक्त हुई है। मध्यकाल में राष्ट्रीयता की भावना के दर्शन हमको चन्द बरदाई और अमीर खुसरो की रचनाओं में तथा अकबर की प्रशासनिक, आर्थिक व धार्मिक नीति में मिलते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए भारतीय नवजागरण में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक चेतना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना का भी विकास हुआ था। राजा राममोहन राय को हम भारतीय राजनीतिक चेतना का अग्रदूत कह सकते हैं। दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी, दिनशा वाचा, रमेश चन्द्र दत्त आदि ने आर्थिक राष्ट्रवाद का विकास किया उन्होंने ब्रिटिश शासन की आर्थिक दोहन की नीति की आलोचना की तथा भारतीयों को आर्थिक स्वावलम्बन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अनथक प्रयास करने का आवाहन किया।

शहरी मध्यवर्गीय भारतीय बुद्धिजीवियों ने उदार पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धान्तों से प्रेरित होकर भारतीयों के राजनीतिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा के लिए अपने-अपने राजनीतिक संगठन बनाए। धीरे-धीरे भारत में राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक संगठन की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा और 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

28-31 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में डब्लू0 सी0 बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। कांग्रेस के पहले अधिवेशन में घोषित उद्देश्य थेः

- भारत के हितैषियों के मध्य सम्पर्क व सद्भाव बढ़ाना।

- धर्म, सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र की संकीर्ण भावना दूर कर राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयास करना।
- शिक्षित समुदाय से विचार-विमर्श कर सामाजिक विषयों पर चर्चा करना।
- भारतीयों के कल्याण हेतु भावी कार्यक्रम की दिशा निर्धारित करना।

इस अधिवेशन में पारित प्रस्तावों में सरकार से संगभेदी व जातिभेदी नीति का परित्याग करने की अपील किए जाने के अतिरिक्त भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के प्रथम चरण के रूप में भारतीयों को भारतीय प्रशासन, विधि-निर्माण तथा आर्थिक नीति-निर्धारण में हिस्सेदारी दिए जाने की मांग रखी गई।

सुरेन्द्र नाथ बनर्जी

ए.ओ.ह्यूम

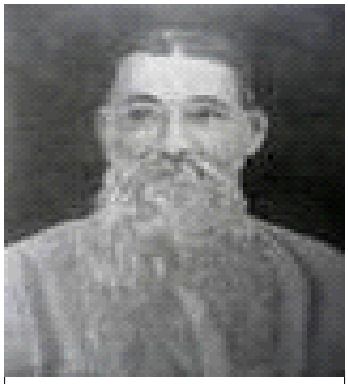

डब्लू.सी.बनर्जी

एम.जी.रानाडे

दादा भाई नौरोजी

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको आधुनिक भारत में राजनीतिक चेतना के उद्भव तथा उसके विकास के प्रथम चरण से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- प्राचीन काल तथा मध्य काल में भारत में राष्ट्रीयता की भावना का विकास।

2- उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में राजनीतिक चेतना का विकास।

3- भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय।

4- भारत में क्षेत्रीय राजनीतिक संगठनों की स्थापना।

5- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना।

6- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन रखी गई मांगे।

भारत में ब्रिटिश शासन के प्रशासनिक ढाँचे में 1858 और 1861 के क़ानून अत्यंत महत्वपूर्ण मील के पत्थर माने जाते हैं। 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश राज्य के प्रशासन और नीतियों में व्यापक परिवर्तन किये गये। 1858 का अधिनियम जहाँ ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन का अंत कर भारत को प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश क्राउन के अधीन लाता है, वहीं 1861 का अधिनियम भारतीयों को सीमित प्रशासनिक भागीदारी देने तथा प्रांतीय शासन को मजबूत बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। इन दोनों अधिनियमों ने आगे चलकर भारत में संवैधानिक सुधारों की नींव रखी।

2.3 1858 का भारतीय शासन अधिनियम (Government of India Act, 1858)

पृष्ठभूमि: 1857 के विद्रोह ने यह तो साबित कर दिया की ब्रितानी हुकूमत भारतीय समाज में बैठे गहरे असंतोष को समाप्त नहीं कर सकती। इस क्रान्ति के पश्चात ब्रिटिश संसद और जनमत में यह धारणा मजबूत हो गई कि भारत जैसे विशाल क्षेत्र का संचालन एक वाणिज्यिक कम्पनी के हाथों में नहीं छोड़ा जा सकता। इसीलिए 1858 में एक महत्वपूर्ण अधिनियम पारित किया गया। अंग्रेजी हुकूमत द्वारा पारित इस एक्ट को "एक्ट फ़ॉर द बेटर गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया" के नाम से भी जाना जाता है। वस्तुतः इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात भारत पर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन को समाप्त कर सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था को ब्रिटिश ताज को हस्तांतरित कर दिया गया। 1858 के गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट ने ब्रिटिश राज की स्थापना की, जो 1947 में भारत की आज़ादी तक चला। यह एक्ट 1857 के भारतीय विद्रोह का जवाब था, जिसमें सरकार ने केंद्रीकृत स्वरुप की आवश्यकता पर बल दिया गया।

मुख्य प्रावधान:

(i) कम्पनी शासन का अंत: इस अधिनियम के माध्यम से ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन को भारत में पूर्णतः समाप्त कर दिया गया और भारत का शासन ब्रिटिश क्राउन के हाथों में सौंप दिया गया। अब भारत की ओर से निर्णय ब्रिटिश सरकार की सीधी देख-रेख में होने लगे। साथ ही कंपनी की सेना को भी इंग्लैंड के प्रशासन के अधीन कर दिया गया तथा यह स्पष्ट घोषणा की गई की अब से भारत का शासन ब्रिटिश सम्राज्ञी के नाम से किया जाएगा।

(ii) भारत सचिव (Secretary of State for India) की नियुक्ति: ब्रिटिश मंत्रिमंडल में 'भारत सचिव' नामक एक नए मंत्री पद की स्थापना की गई। इस पद की स्थापना के साथ ही निदेशक मंडल एवं नियंत्रण बोर्ड की दोहरी शासन व्यवस्था का अंत कर दिया गया। यह सचिव भारत से संबंधित सभी नीतिगत निर्णयों का सर्वोच्च अधिकारी बना। इसके सभी वेतन भत्ते भारतीय राजस्व से दिए जाने थे और इसका कार्यालय लन्दन में अवस्थित था। हालाँकि ब्रिटिश संसद द्वारा भारत सचिव पर नियंत्रण रखा जाता था। और इसका कर्तव्य था की यह भारत से प्राप्त राजस्व का वार्षिक लेखा-जोखा ब्रिटिश संसद के समक्ष प्रस्तुत करेगा। इसके साथ ही इसकी सहायता के लिए 15 सदस्यों की 'भारत परिषद्' (Council of India) गठित की गई, जो सलाहकार निकाय के रूप में कार्य करती थी।

(iii) भारत का सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी: अब भारत में ब्रिटिश सरकार के सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी को गवर्नर जनरल के स्थान पर वायसराय के नाम से संबोधित किया जाने लगा। दूसरे शब्दों में कहें तो गवर्नर जनरल को अब क्राउन का प्रतिनिधि बनाते हुए 'वायसराय' (Viceroy) की उपाधि दी गई। यह भारत में ब्रिटिश सम्राट का आधिकारिक प्रतिनिधि था, जिसकी नियुक्ति ब्रिटिश ताज द्वारा की जानी थी। अब वायसराय प्रांतीय गवर्नरों की नियुक्ति कर सकता था पर इसके लिए उसे ब्रिटिश ताज की अनुमति लेनी होती थी। इस एक्ट के अंतर्गत पहला वायसराय लॉर्ड कैनिंग को नियुक्त किया गया था।

(iv) सैनिक प्रशासन पर नियंत्रण: भारतीय सेना अब सीधे ब्रिटिश क्राउन के नियंत्रण में आ गई। सेना के पुनर्गठन हेतु आगे कई कदम उठाए गए जिससे 1857 जैसी परिस्थितियों को रोका जा सके। 1858 के अधिनियम ने भारतीय सेना को ब्रिटिश क्राउन के प्रत्यक्ष नियंत्रण में ला दिया, जिसमें भारत के कमांडर-इन-चीफ गवर्नर-जनरल के अधीनस्थ थे।

(v) भारतीय सिविल सेवाओं का पुनर्गठन: भारत सरकार अधिनियम 1858 ने भारतीय सिविल सेवाओं (ICS) की स्थापना की, जो प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से भारतीयों के लिए खुली थीं।

(vi) भारतीयों के प्रति उदारता की घोषणा: क्वीन विक्टोरिया के प्रसिद्ध 'प्रोक्लेमेशन' (1 नवम्बर 1858) में जाति-धर्म की समानता, धार्मिक स्वतंत्रता और न्यायपूर्ण शासन का वादा किया गया। इसमें भारतीय राजाओं के अधिकारों का सम्मान करने, धार्मिक मामलों में दखल न देने और डॉक्ट्रिन ऑफ़ लैप्स को खत्म करने का वादा किया गया था। इस प्रोक्लेमेशन का मकसद 1857 के विद्रोह के बाद भारतीय राज्यों की सुरक्षा पक्का करके और भारतीय नागरिकों को ब्रिटिश कानून के तहत बराबर अधिकार देकर ब्रिटिश राज को स्थिर करना था। यह घोषणा भारतीय समाज में ब्रिटिश शासन के प्रति विश्वास बहाल करने की कोशिश थी।

(vii) रियासतें: रियासतों के सम्बन्ध में यह निर्णय लिया गया कि शेष भारतीय राजकुमार और प्रमुख (संख्या में 560 से अधिक) तब तक अपनी स्वतंत्रता बनाए रखेंगे जब तक वे ब्रिटिश शासन को स्वीकार करते हैं।

अधिनियम का प्रभाव

- 1858 के भारत सरकार अधिनियम ने भारत के प्रशासन को केंद्रीकृत कर इसे सीधे ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण में ला दिया। इसने ब्रिटिश राज की शुरुआत की, जो प्रत्यक्ष औपनिवेशिक शासन के रूप में 1947 तक जारी रहा।
- प्रशासन अधिक केन्द्रीयकृत और नियंत्रित हो गया।

- कम्पनी के व्यापारी हितों के स्थान पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी हित प्राथमिक हो गए।
- भारतीयों में सीमित रूप से विश्वास पैदा करने की औपचारिक कोशिश की गई, पर वास्तविक सहभागिता नगण्य रही।
- यह अधिनियम भारत की औपनिवेशिक शासन-रचना का आधार बना, जिसका प्रभाव 1947 तक रहा।

2.4 1861 का भारतीय परिषद् अधिनियम (Indian Councils Act, 1861)

भारतीय परिषद् अधिनियम, 1861, भारत में ब्रिटिश प्रशासनिक संरचना के विकास का एक महत्वपूर्ण चरण माना जाता है। 1857 के विद्रोह के पश्चात् ब्रिटिश सरकार भारतीय शासन प्रणाली में स्थिरता, वैधता और 'सहयोगी प्रशासन' (Collaborative Administration) की नीति अपनाना चाहती थी। 1858 के भारत शासन अधिनियम द्वारा सत्ता का हस्तांतरण ईस्ट इंडिया कंपनी से ब्रिटिश क्राउन को कर दिया गया, परंतु शासन को अधिक उत्तरदायी और व्यवस्थित बनाने हेतु विधायी संरचना में सुधार आवश्यक था। इसी आवश्यकता के परिणामस्वरूप 1861 का परिषद् अधिनियम अस्तित्व में आया। यह अधिनियम पहली बार भारतीयों को सीमित रूप में ही सही, लेकिन विधायी प्रक्रिया में सम्मिलित करने का अवसर प्रदान करता था। साथ ही यह केंद्र और प्रांतीय शासन की विधायी शक्तियों के पुनर्गठन की दिशा में भी महत्वपूर्ण मील का पत्थर सिद्ध हुआ।

पृष्ठभूमि: भारतीय परिषद् अधिनियम, 1861 की पृष्ठभूमि को समझने के लिए कुछ मुख्य तत्वों का अध्ययन आवश्यक है:

(i) 1857 का विद्रोह और प्रशासनिक पुनर्गठन: 1857 के विद्रोह ने यह स्पष्ट कर दिया कि प्रशासन पूरी तरह केंद्रीकृत और कंपनी-प्रधान नहीं रह सकता। शासन में भारतीयों के सहयोग और सहभागिता की आवश्यकता महसूस की गई।

(ii) भारतीय समाज की बढ़ती राजनीतिक चेतना: विद्वानों, शिक्षित वर्गों और प्रेस के विकास ने राजनीतिक भागीदारी की मांग उठानी शुरू कर दी थी। हालांकि ब्रिटिश सरकार इसे सीमित और नियंत्रित रूप में देना चाहती थी।

(iii) विधायी शक्ति के विस्तार की आवश्यकता: भारत में विविध प्रांत, भिन्न सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ और कानूनों की जटिलता ने विधान मंडलों की संख्या और शक्तियों के विस्तार की आवश्यकता उत्पन्न कर दी थी।

प्रमुख प्रावधान:

- वाइसराय की कार्यकारी परिषद् में सदस्यों की संख्या 5 कर दी गई, जिसमें पांचवा सदस्य विधि विशेषज्ञ होना अनिवार्य था।
- क़ानून बनाने के लिए वाइसराय 6 से 12 अतिरिक्त सदस्यों को नामांकित कर सकता था। ये सदस्य दो वर्ष के निर्वाचित होते और इनमें से आधे गैर सरकारी सदस्य होने अनिवार्य थे। इनमें से कुछ सदस्य भारतीय भी हो सकते थे। यह भारतीयों को पहली बार उच्च प्रशासनिक स्तर पर स्वीकार करने की नीति थी।

- प्रत्येक प्रांत के गवर्नर को यह अधिकार दिया गया था कि वह अपनी परिषद में न्यूनतम 4 व् अधिकतम 8 सदस्यों को नियुक्त कर सकता है, और यह परिषद अपने प्रान्तों के लिए क़ानून का निर्माण कर सकती थी, लेकिन इन कानूनों पर वाइसराय की अनुमति अनिवार्य थी।
- बंबई और मद्रास में बंद किए गए विधायी मंडलों को पुनः स्थापित किया गया। बाद में बंगाल, उत्तर-पश्चिम प्रांत (NWP) और पंजाब में भी परिषदें गठित की गईं। यह प्रावधान भारत में प्रांतीय विधायन के विकास का आरंभिक आधार बना।
- आपातकालीन परिस्थितियों में वाइसराय अध्यादेश जारी कर सकता था जिसकी वैधता 6 महीने तक रहती थी। यह प्रावधान आधुनिक भारतीय संविधान में आपात अध्यादेश शक्ति की ऐतिहासिक जड़ें मानी जाती हैं।
- वाइसराय को विधायी प्रस्ताव को अस्वीकार करने या अपनी सहमति रोक लेने का पूर्ण अधिकार था। इससे स्पष्ट है कि यद्यपि परिषद् बनी, परंतु वास्तविक शक्ति वाइसराय के हाथों में ही रही।
- वाइसराय को यह अधिकार प्राप्त था कि वह किसी भी प्रांत की सीमाओं में वृद्धि अथवा हरास कर सकता है।
- 1861 का अधिनियम केन्द्र और प्रांतों के बीच शक्तियों के स्पष्ट वितरण का पहला औपचारिक प्रयास था, जिसने भविष्य के संवैधानिक सुधारों—1892, 1909, 1919—की दिशा प्रशस्त की।

अधिनियम का महत्व:

(i) विकेन्द्रीकरण की प्रथम औपचारिक पहल: इस अधिनियम द्वारा केंद्रीय सत्ता का एकाधिकार कम हुआ और प्रांतों को सीमित लेकिन स्वतंत्र विधायी अधिकार दिए गए। इसे भारत के प्रशासनिक विकास का "प्रथम विकेन्द्रीकरण चरण" माना जाता है।

(ii) भारतीय राजनीतिक चेतना को नया मार्ग: भारतीयों को पहली बार विधायी प्रक्रिया का हिस्सा बनने और अपनी बात रखने का मंच मिला। हालांकि शक्तियाँ सीमित थीं, लेकिन यह आगे चलकर 1892, 1909, 1919 और 1935 के अधिनियमों का आधार बना।

(iii) आधुनिक शासन प्रणाली की नींव पड़ी; जैसे अध्यादेश शक्ति, प्रांतीय विधायन, विस्तारित संसदनुमा परिषद् इत्यादि। इन तत्वों ने आधुनिक भारतीय विधायी ढांचे की नींव रखी।

(iv) ब्रिटिश सरकार की 'सहयोगी नीति' की शुरुआत: इस अधिनियम का उद्देश्य भारतीयों को शासन में शामिल कर उन्हें ब्रिटिश सत्ता के प्रति वफादार बनाना था। इसे "Policy of Association with Indians" कहा जाता है।

भारतीय परिषद् अधिनियम, 1861 भारतीय प्रशासनिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण परिवर्तन बिंदु है। यह एक ऐसा अधिनियम था जिसने भारतीयों को 'राजनीतिक प्रक्रिया के प्रवेश-द्वार' तक पहुंचाया, यद्यपि वे अभी भी शक्ति से दूर थे। इसने भारत में विधायिका के विकास की प्रक्रिया आरंभ की जो आगे चलकर 1892 के अधिनियम, 1909 के सुधार, 1919 के मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार तथा 1935 के भारत शासन अधिनियम के

माध्यम से विकसित होती गई।1861 का अधिनियम भारतीय राजनीति में 'सहभागिता की शुरुआत' का प्रतीक है और इसे आधुनिक भारतीय प्रशासन की नींव के रूप में देखा जाता है।

2.5 भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म: कारण

2.5.1 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

2.5.1.1 प्राचीनकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

ब्रिटिश शासकों का यह दावा था कि उन्होंने ही भारतीयों को राष्ट्रीयता और स्वदेश प्रेम का पाठ पढ़ाया है। इस दावे में कुछ न कुछ सत्यता अवश्य थी परन्तु यह कहना सर्वथा अनुचित होगा कि भारतीयों में ब्रिटिश शासन से पूर्व राष्ट्रीयता और स्वदेशी की भावना का नितान्त अभाव था। प्राचीन काल में भारतीयो में देश प्रेम की भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। वेदों में राष्ट्र की रक्षा और सुरक्षा, एकता और संगठन पर अनेकों बार प्रकाश डाला गया है। इनमें अपने नगरों, नदियों, वनों और पर्वतों के प्रति अपार प्रेम दर्शाया गया है और अपनी मातृभूमि, मातृ संस्कृति और मातृभाषा का समादर करने की प्रेरणा दी गई है। राष्ट्र की देवी को राष्ट्र का सर्वस्व कहा गया है। 'स्वराज्य' शब्द वैदिक साहित्य की ही देन है। ऋग्वेद (ऋग्वेद 8/45/21 तथा (ऋग्वेद 5/66/6) में कहा गया है कि-

स्वराज्य के योग-क्षेम के लिए सतत जागरूक रहना चाहिए। स्वराज्य के विस्तार एवं प्रजातान्त्रिक शासन-हेतु हम सभी देशवासी प्रयत्नशील रहें।

ऋग्वेद में अपने राज्य को स्वराज्य बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहने का उपदेश दिया गया है -

यतेमहि स्वराज्ये

(हम स्वराज्य के लिए सतत प्रयत्न करते रहें।)

ऋग्वेद की ही भाँति अथर्ववेद में भी देशप्रेम की भावना अनेक स्थानों पर मुखरित हुई है। अनेकता में एकता को बनाए हुए देशवासियों को राष्ट्रोत्थान में सतत संलग्न रहना चाहिए -

जिस प्रकार एक घर के लोग भिन्न-भिन्न भाषाओं का अध्ययन करके तथा अपनी-अपनी व्यक्तिगत धार्मिक आस्थाओं वाले होकर भी अपने घर की मिलजुल कर देखभाल करते हैं तथा उसे सुख-सुविधा सम्पन्न बनाकर स्वयं भी सुखी होते हैं, ठीक उसी प्रकार भारतवासियों को भी अपने भाव-विषयक एवं धर्म-विषयक भेदभाव की उपेक्षा करके अपने समग्र राष्ट्र का कल्याण आत्मीयतापूर्ण समवेत भावना से करना चाहिए।

ऋग्वेद के सूक्त 10/25 तथा अथर्ववेद के सूक्त 4/30 में समग्र भारत राष्ट्र की एक राष्ट्रदेवी के रूप में परिकल्पना की गई है। ऋषियों का दृष्टिकोण है कि यह राष्ट्रदेवी राष्ट्र के चारो ही वर्णों में ओतप्रोत रहती है; सौहार्द, सद्व्रत, शौर्य, ज्ञान तथा आरोग्य का विस्तार करती है;राष्ट्र की आर्थिक दशा में सन्तुलन करती है; विविध ज्ञान की वृद्धि कराती है; अनेक प्रसंगों में स्थिर प्रतिष्ठा पाती है। जो राष्ट्र इस राष्ट्रदेवी की उपेक्षा करते हैं, वे विनष्ट हो जाते हैं।

हमारे पुराण भारत महिमा से भरे हुए हैं। इनमें भारतवासियों को एकसूत्र में बंधने की प्रेरणा दी गई है। भारतभूमि को कर्मभूमि कहा गया है; जहाँ जन्म पाने के लिए देवताओं को भी तरसता हुआ बताया गया है। भारत के पर्वतों, वनों, समुद्रों, नदियों, सरोवरों, नगरों तथा तीर्थों का गर्व के साथ वर्णन किया गया है।

विष्णु पुराण में कहा गया है -

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरुत्वात्।।

(इस देश की महिमा का देवता भी गान करते हैं। उनकी दृष्टि में वे लोग धन्य हैं, कृतार्थ हैं और कृतकृत्य हैं जो इस पवित्र भारतभूमि में जन्म पाते हैं। देवत्व की समाप्ति पर यहाँ मानव-जाति में जन्म पाने के लिए देवगण भी लालसा करते हैं।)

हमारे महाकाव्यों - रामायण और महाभारत में, भी स्वदेश-प्रेम और स्वदेशी की भावना मुखरित हुई है। रामायण में कहा गया है -

जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

महाभारत के भीष्मपर्व में स्वधर्म का पालन करते हुए मृत्युगति को प्राप्त करने को परधर्म का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करने से श्रेष्ठ बताया गया है -

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।

कालिदास की कृतियों में भारत और भारतीयता के प्रति असीम अनुराग है और अपरिमित भक्ति है। उनकी रचनाओं में भारतीय इतिहास के गौरवशाली अध्याय का चित्रण मिलता है। उनका हिमालय वर्णन भारतीय साहित्य की अनुपम धरोहर है।

2.5.1.2 मध्यकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

मध्यकाल में हमारे देश में प्रान्तीयता तथा क्षेत्रवाद के भाव ने हमारी प्रगति को अवरुद्ध कर दिया। देशप्रेम अब अपने राज्य अथवा अपने क्षेत्र तक सिमट कर रह गया। भारत पर मुस्लिम आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद हिन्दुओं की दृष्टि में हिन्दू धर्म की रक्षार्थ उठाया जाने वाला हर प्रयास देशभक्ति माना जाने लगा। चन्दबरदाई की रचना पृथ्वीराज रासो में बार-बार यह दर्शाया गया है कि राजपूत जातीय अभिमान की रक्षा के लिए अपने प्राणों की परवाह नहीं करते करते थे। पृथ्वीराज रासो के ही काल की रचना आल्हाखण्ड में वीरों का बखान करते हुए कहा गया है कि जो वीर युद्ध में वीरगति को प्राप्त होते हैं उन्हें सीधे मोक्ष मिलता है। हमारे देश की वीरांगनाएँ सदैव ही वीर पति की कामना करती थीं।

मध्यकाल में राष्ट्रीयता की भावना के दर्शन हमको अमीर खुसरो की रचनाओं में मिलते हैं। अमीर खुसरो तुर्क थे परन्तु उनका जन्म हिन्दुस्तान में हुआ था। उन्हें अपनी जन्मभूमि ' हिन्द ' से अत्यन्त प्रेम था। उन्हें अपनी भारतीयता पर गर्व था। नूहे सिपहर में वह लिखते हैं -

हिन्द मेरी जन्मभूमि है। यह मेरा वतन है। अपने वतन से प्यार करना हर एक के लिए उसके ईमान का हिस्सा है। हिन्द जन्नत की तरह है। इसकी मिट्टी उपजाऊ है और इसकी आबोहवा दिलकश है।

महाराष्ट्र में वाराकरी पंथ के सन्तों ने महाराष्ट्र धर्म का विकास किया। उन्होंने धर्म, संस्कृति और भाषा को आधार बनाकर मराठा जाति को एकसूत्र में बांधने का सफल प्रयास किया। अकबर के अधीन भारत में राष्ट्रीय

एकता स्थापित करने के सफल प्रयास हुए । अकबर ने भारत को प्रशासनिक, राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से एकसूत्र में बांधा और दीन-ए-इलाही अथवा तौहीद-ए-इलाही के माध्यम से उसने भारतीयों को भावनात्मक रूप से बांधने का प्रयास किया। साहित्य, संगीत, चित्रकला, स्थापत्य कला, मुद्रा प्रणाली, खान-पान, वेशभूषा, शिष्टाचार, भाषा आदि सभी क्षेत्रों में समन्वय के प्रयास हुए। अमीर खुसरो की ही भाँति अकबर को भी अपनी भारतीयता पर गर्व था। अकबर के नवरत्न अबुल फ़ज़्ल के विचार भी स्वदेश प्रेम की भावना से ओतप्रोत थे।

2.5.2 भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रवाद के विकास के कारण

2.5.2.1 भारतीय नवजागरण में राजनीतिक चेतना

भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में ही सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक चेतना का विकास प्रारम्भ हो गया था। सरकार की रंगभेदी, जातिभेदी व आर्थिक शोषण नीति की निर्भीक आलोचना करने वाले भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय को हम भारतीय राजनीतिक चेतना का भी अग्रदूत कह सकते हैं। भारतीय नवजागरण ने धार्मिक,सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक जागृति की अलख जगाई। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि ने अंग्रेज़ों के जातीय श्रेष्ठता के दावे को एक सिरे से नकार दिया। अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों ने भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रसार-प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई।

2.5.2.2 1857 के विद्रोह में राजनीतिक चेतना का विकास

सन् 1857 में ब्रिटिश हुकूमत का तख्ता पलटने के लिए भारत में व्यापक स्तर पर विद्रोह हुआ। फिरंगी शासन से देश को मुक्त कराने के लिए बादशाह, राजे-महाराजे, नवाब, जागीरदार, सैनिक, किसान और मज़दूर एकजुट हुए। 1857 के विद्रोह का विस्तार समस्त भारत में नहीं हो सका और न ही इसमें उत्तर भारत के एक सीमित क्षेत्र को छोड़कर आम जनता की भागीदारी हुई किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस काल में देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना प्रबल हुई और अपने धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों पर आघात करने वाले के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति करने के लिए लाखों लोग एकजुट हुए। अंग्रेज़ों ने इस विद्रोह को कुचल दिया और इसे मात्र एक सैनिक विद्रोह का जामा पहनाने का प्रचार किया। प्रबुद्ध भारतीय प्रायः इस विद्रोह से विलग रहे किन्तु परवर्ती काल में उनमें से अनेक ने इस विद्रोह को भारतीय इतिहास का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम माना। 1857 के विद्रोह से भारतीय युवाओं ने औपनिवेशिक शासन के अन्याय का प्रतिकार करने की प्रेरणा प्राप्त की। 1857 के विद्रोह में सादिकुल अख़बार,देहली उर्दू अख़बार, दूरबीन तथा सुल्तानुल अख़बार ने विद्रोह की भावना का प्रचार करने का साहसिक अभियान छेड़ा। बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र के पौत्र बेदार बख़्त के संचालन में प्रकाशित उर्दू अखबार पयामे आज़ादी में अज़ीमुल्ला खां रचित बाग़ी सैनिकों का क़ौमी गीत प्रकाशित हुआ था। इस कौमी तराने में भारत की महिमा का गुणगान किया गया है और भारत में ब्रिटिश शासकों की आर्थिक दोहन की निन्दा की गई है और आज़ादी के झण्डे के तले सभी धर्मावलम्बी भारतवासियों को एकजुट होकर भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए आगे बढ़ने की अपील की गई है-

हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा,
पाक वतन है क़ौम का, जन्नत से भी प्यारा।
ये है हमारी मिल्कियत, हिन्दुस्तान हमारा,
इसकी रूहानी से, रौशन है जग सारा।
कितना क़दीम कितना नईम, सब दुनिया से न्यारा,

करती है ज़रखेज़ जिसे, गंग-जमन की धारा।
ऊपर बर्फ़ीला पर्वत, पहरेदार हमारा,
नीचे साहिल पर बजता, सागर का नक्कारा।
इसकी खानें उगल रहीं, सोना, हीरा, पारा,
इसकी शान-शौकत का, दुनिया में जयकारा।
आया फिरंगी दूर से, ऐसा मन्तर मारा,
लूटा दोनों हाथ से, प्यारा वतन हमारा।
आज शहीदों ने है तुमको, अहले-वतन ललकारा,
तोड़ो गुलामी की ज़न्जीरें, बरसाओ अंगारा।
हिन्दु-मुसल्मां, सिक्ख हमारा, भाई प्यारा-प्यारा,
यह है आज़ादी का झण्डा, इसे सलाम हमारा।।

2.5.2.3 भारतीय पत्रों में राजनीतिक चेतना का विकास

अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों ने भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रसार-प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। 1857 के विद्रोह से लेकर भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति तक राष्ट्रीय आन्दोलन के हर चरण में भारतीय पत्रकारिता ने राजनीतिक चेतना के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया था। आधुनिक भारतीय पत्रकारिता के जनक राजा राममोहन राय की सम्बाद कौमुदी तथा अक्षय कुमार दत्त की तत्व बोधिनी पत्रिका, लोकहितवादी के पत्र हितवादी में सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना की गई थी। द्वारिकानाथ टैगोर के पत्र बैंगाल हरकारा के 1843 के अंकों में भारत में भी जनता की समस्याओं का निराकरण करने के लिए 1830 की फ्रांस की जुलाई क्रान्ति का अनुकरण करने की बात कही गई थी। गिरीश चन्द्र घोष के पत्र हिन्दू पैट्रिएट (सम्पादक हरीश चन्द्र मुकर्जी) में 1861 में दीन बन्धु मित्र का नाटक नील दर्पण प्रकाशित किया। बाद में इस पत्र पर ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का नियन्त्रण हो गया। इस पत्र ने सरकार की ज़्यादतियों की कटु आलोचना की और भारतीयों को उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त किए जाने की मांग की। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का एक अन्य पत्र सोमप्रकाश भी एक राष्ट्रवादी पत्र था। इस पत्र ने किसानो को उनके अधिकार दिलाने के लिए अभियान छेड़ा था। मोती लाल घोष के पत्र अमृत बाज़ार पत्रिका को सरकार की नीतियों की कटु आलोचना करने के कारण उसके कोप का भाजन होना पड़ा था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने पत्र कवि वचन सुधा में तन-मन-धन से स्वदेशी अपनाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। कवि वचन सुधा के नवम्बर, 1872 के अंक में भारतेन्दु ने इस बात पर ज़ोर दिया कि भारतीय वाणिज्य का पुनरोद्धार करने के लिए भारतवासियों को व्यापक स्तर पर तकनीकी शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता थी। 23 मार्च, 1874 की कविवचन सुधा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अध्यक्षता में स्वदेशी वस्त्रों के प्रयोग के सम्बन्ध में बनारस वासियों द्वारा अंगीकार किया गया एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित हुआ था-

हमलोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान और नित्य सत्य-परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे और जो कपड़ा पहिले मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास है उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहिरेंगे।

1873 में एक बंगला त्रैमासिक मुकर्जीज़ मैग्ज़ीन में भोलानाथ चन्द्र ने भारत में बिटिश आर्थिक नीति पर कठोर प्रहार किए। एम0 जी0 रानाडे के मराठी पत्र ज्ञान प्रकाश तथा इन्दु प्रकाश दोनों ही पत्रों में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना का प्रचार-प्रसार किया जाता था।

लोकमान्य तिलक ने मराठी भाषा के पत्र केसरी तथा अंग्रेज़ी पत्र मराठा में औपनिवेशिक शासन के शोषक एवं दमनकारी स्वरूप का निर्भीक चित्रण किया। लोकमान्य ने मराठा में ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा समाज सुधार के नाम पर भारतीयों की सामाजिक परम्पराओं में हस्तक्षेप करने की नीति का विरोध किया। उन्होंने 1891 के 'एज ऑफ़ कन्सेन्ट बिल' का इसीलिए विरोध किया। हिन्दू, नेटिव ओपीनियन, संजीवनी, ज्ञान प्रकाश, अम्बाला गज़ट, हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण, नजमुल अखबार, भारत जीवन आदि पत्रों में सरकार की आर्थिक नीति की आलोचना के साथ भारतीयों को अपने आर्थिक उत्थान हेतु स्वयं प्रयास करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया था। भारतीय पत्रों में अब राजनीतिक दलों के गठन की आवश्यकता का अनुभव भी किया जाने लगा था। अपने पत्र बैंगाली के 27 मई, 1882 के अंक में नेशनल कान्फ्रेन्स के गठन की आवश्यकता पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा -

क्यों नहीं हमको एक राष्ट्रीय और नहीं तो कम से कम एक प्रान्तीय कांग्रेस का गठन कर लेना चाहिए, जिसमें कि देश के विभिन्न भागों से सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधि अपने विचार रख सकें?

2.5.2.3 भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय

दादा भाई नौरोजी भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के जनक थे। उन्होंने एक ओर जहां ब्रिटिश शासन की आर्थिक दोहन की नीति के कारण भारत की निरन्तर बढ़ती हुई दरिद्रता पर प्रकाश डाला वहीं उन्होंने भारतीयों को आर्थिक स्वावलम्बन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अनथक प्रयास करने का आवाहन किया। उनके ग्रंथ पॉवर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इण्डिया को भारतीय आर्थिक राष्ट्रवाद की आधार पुस्तक कहा जा सकता है। राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्य सभी नेताओं ने तथा भारतीय समाचार पत्रों ने भी सरकार के हर शोषक पहलू को उभारा तथा भारत के आर्थिक पुनरुद्धार हेतु सृजनात्मक सुझाव दिए। भारत में स्वदेशी की भावना जागृत करने में और आधुनिक उद्योग का विकास तथा कुटीर उद्योग का पुनरुत्थान करने में आर्थिक राष्ट्रवाद का अभूतपूर्व योगदान रहा। उर्दू के पहले प्रगतिशील शायर अल्ताफ़ हुसेन हाली ने भारत के आर्थिक पुनरुत्थान के लिए भारतीय उद्योग और वाणिज्य को आधुनिक तकनीक से विकसित किए जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। 1874 में प्रकाशित अपनी नज़्म हुब्बे वतन में उन्होंने भारतीयों को इस बात पर फटकार लगाई कि वे अब भी अपने मिथ्या जातीय गौरव की शान बघारने से बाज़ नहीं आ रहे हैं और इस बात को अनदेखा कर रहे हैं कि वे गुलामी और गरीबी में अपने दिन काट रहे हैं -

इज़्ज़तो-क़ौम चाहते हो अगर, जाके फैलाओ उनमें इल्मो-हुनर,
जात का फ़ख्र और नसल का गुरूर, उठ गए जहाँ से ये दस्तूर।

क़ौम की इज़्ज़त अब हुनर से है, इल्म से याकि सीमोज़र से है,
एक दिन में वो दौर आएगा, बे-हुनर भीख तक न पाएगा।।

दयानन्द सरस्वती ने भारत के आर्थिक पुनरुत्थान को महत्व दिया था और इसके लिए स्वदेशी का प्रचार करना उन्होंने अपना लक्ष्य बना लिया था। अपने ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने यूरोपियनों के स्वदेश प्रेम और उनके अध्यवसाय की प्रशंसा की थी -

यूरोपियन अपनी स्वजाति की उन्नति के लिए तन-मन-धन व्यय करते हैं, आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो! अपने देश के बने हुए जूते को कार्यालय और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं।

दीनबन्धु मित्र के नाटक नील दर्पण ने नील के बागानों के गोरे मालिकों के अत्याचारों का मार्मिक चित्रण कर देशवासियों को अन्याय का प्रतिकार करने की प्रेरणा दी। मनमोहन बोस के उपन्यास बंगाधिप पराजय में यह दर्शाया गया कि पराधीनता का परिणाम प्रजा की घोर दरिद्रता होता है। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों दुगेशनन्दिनी तथा आनन्दमठ में अन्यायी का निर्भीक होकर प्रतिकार करने का संदेश दिया गया था। 'वन्देमातरम्' गीत आनन्दमठ उपन्यास का ही अंग है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी में भारत दुर्दशा तथा अंधेर नगरी में कुशासन की विभीषिकाओं पर प्रकाश डाला।

2.5.2.4 भारत में स्वदेशी और स्वशासन की मांग का पहला चरण

1867 में लन्दन में डब्लू0 सी0 बनर्जी ने 'भारत की प्रतिनिधि तथा उत्तरदायी सरकार' विषय पर दिए गए अपने भाषण में भारत में एक प्रतिनिधि सभा तथा सीनेट की स्थापना का सुझाव दिया। 1873 में आनन्दमोहन बोस ने ब्राइटन में दिए गए भाषण में क्रमिक चरणों में भारत में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना का प्रस्ताव रखा। सन् 1874 में कृष्णदास पाल ने सन् 1874 में हिन्दू पैट्रिएट में प्रकाशित अपने एक लेख में भारत में होमरूल की स्थापना की मांग रखी। दयानन्द सरस्वती ने स्वदेशी और स्वशासन को आत्मनिर्भरता तथा आत्म-गौरव से जोड़ कर देखा। उन्होंने राष्ट्रीय एकता की भावना का प्रसार करने के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा देवनागरी लिपि को देश-व्यापी लिपि के रूप में स्थापित किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया।

2.5.2.5 लॉर्ड लिटन का दमनकारी तथा लॉर्ड रिपन का उदार शासन

1877 में महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत की साम्राज्ञी का पद ग्रहण करने की खुशी में दिल्ली दरबार का आयोजन किया गया। लॉर्ड लिटन के शासनकाल में दुर्भिक्ष की स्थिति में भी आंग्ल-अफ़गान युद्ध में अपव्यय तथा समारोहों का आयोजन करने की प्रवृत्ति भारतीयों को सहन नहीं हुई। अगले वर्ष लॉर्ड लिटन के दमनकारी -'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट', 'इण्डियन आर्म्स एक्ट' तथा 'लाइसेन्स एक्ट' ने स्थिति और भी विस्फोटक कर दी और भारतीयों का असन्तोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया।

गवर्नर जनरल लार्ड रिपन के शासन काल (1880-84) में अनेक सुधार किए गए तथा भारतीयों को पहले से अधिक अधिकार दिए गए। 1883 में भारतीय न्यायधीशों को गोरों का मुकदमा सुनने तथा उन्हें दण्ड देने के अधिकार विषयक इल्बर्ट बिल न्यायपालिका में रंगभेदी व्यवस्था को समाप्त करने के उद्देश्य से रखा गया था किन्तु इसका एंग्लो इण्डियन समुदाय तथा प्रेस ने प्रबल विरोध किया। भारतीयों ने इस बिल के समर्थन में अपना आन्दोलन किया। इस विषय में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पर एंग्लो इण्डियन समुदाय पर आक्षेप करने पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें सज़ा देकर कारावास भेजा गया। जेल से रिहा होने के बाद सुरेन्द्रनाथ बनर्जी देश के सबसे लोकप्रिय राजनीतिक नेता के रूप में वह प्रतिष्ठित हुए।

इल्बर्ट बिल अपने मूल रूप में पारित नहीं हो सका। एंग्लो-इण्डियन समुदाय की मांगों को देखते हुए सरकार ने इसमें किंचित परिवर्तन किए। इससे भारतीयों को संगठित विरोध तथा आन्दोलन की शक्ति का पता चल गया और उन्हें देश में संगठित राजनीतिक आन्दोलन करने की प्रेरणा मिली।

2.6 कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में बताए गए उद्देश्य

2.6.1 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठन

2.6.1.1 ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन

'लैण्ड होल्डर्स सोसायटी' तथा 'बैंगाल ब्रिटिश इण्डियन सोसायटी' ने संगठित होकर भारतीय हितों की रक्षार्थ संघर्ष करने का निश्चय किया। 1853 में चार्टर एक्ट द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत पर अधिकार के नवीनीकरण से पूर्व इन दोनों संगठनों ने एक साथ मिलकर 1851 में 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसियशन' की स्थापना की। इस एसोसियेशन का उद्देश्य चार्टर के नवीनीकरण से पूर्व देश की कानून व्यवस्था तथा नागरिक प्रशासन में विद्यमान दोषों को दूर करना तथा भारतवासियों के कल्याण को प्रोत्साहित करना था। इसके लिए ब्रिटिश भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश संसद में अपनी बात रखना भी संगठन के कार्यक्रम में शामिल था। इस संगठन का स्वरूप अखिल भारतीय था। 1853 में चार्टर के नवीनीकरण से पूर्व ही इस संगठन ने कार्यपालिका तथा विधायिका को पृथक करने तथा विधान परिषदों में भारतीय सदस्यों को शामिल किए जाने की मांग की थी।

2.6.1.2 बॉम्बे एसोसियेशन

अगस्त, 1852 में बम्बई के नागरिकों ने 'बॉम्बे एसोसियेशन' की स्थापना की। इस सभा की अध्यक्षता जगन्नाथ शंकरशेथ ने की।

इस संगठन के एक प्रस्ताव में कहा गया -

यह संगठन आवश्यकता पड़ने पर समय-समय पर भारतीय सरकार तथा इंग्लैण्ड की सरकार को विद्यमान खराबियों के उन्मूलन तथा भविष्य में नुक्सान पहुंचाने वाले निर्णयों पर रोक लगाए जाने के लिए आगाह करता रहेगा।

2.6.1.3 मैड्रास नेटिव एसोसियेशन

कलकत्ता के 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन' की मद्रास में स्थापित की गई शाखा बाद में 'मैड्रास नेटिव एसोसियेशन' के नाम से फ़रवरी, 1852 में स्थापित हुई। इस संगठन ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चार्टर के नवीनीकरण से पूर्व उसके प्रशासन में सुधार के सुझाव हेतु ब्रिटिश पार्लियामेन्ट को एक याचिका भेजी।

2.6.1.4 ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन

लन्दन में 1866 में दादा भाई नौरोजी ने ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन की स्थापना की थी। भारत के प्रमुख नगरों में इसकी शाखाएं स्थापित की गईं।

2.6.1.5 हिन्दू मेला

राजनारायण बोस के 'पैट्रिएट्स एसोसियेशन' तथा 'सोसायटी फ़ॉर दि प्रमोशन ऑफ नेशनल फ़ीलिंग अमंग दि एजुकेटेड नेटिव्ज़ ऑफ बैंगाल' से प्रेरणा लेकर 1867 में नबगोपाल मित्र ने 'हिन्दू मेला' की स्थापना की। इसका उद्देश्य देश की प्रगति हेतु भारतीयों में आत्मनिर्भरता की भावना, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय साहित्य, भारतीय कला,

संस्कृति, कुटीर उद्योग, स्वास्थ्य निर्माण आदि का विकास करना था। मेले द्वारा भारतीय उत्पादों की प्रदर्शनी का नियमित आयोजन सराहनीय प्रयास था।

2.6.1.6 पूना सार्वजनिक सभा

1870 में पूना में 'सार्वजनिक सभा' की स्थापना का उद्देश्य जनता का प्रतिनिधित्व कर उसकी आकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं को सरकार के समक्ष प्रस्तुत करना था। इस सभा के मार्गदर्शक व संस्थापक एम0 जी0 रानाडे थे। इसके द्वारा महारानी विक्टोरिया को एक याचिका प्रेषित की गई जिसमें भारतीयों को वही राजनीतिक अधिकार दिए जाने की बात कही गई जो कि ब्रिटिश नागरिकों को प्राप्त थे। 1875 में सभा द्वारा ब्रिटिश संसद में भारतीयों को प्रतिनिधित्व दिए जाने रखी गई।

2.6.1.7 इण्डियन लीग

बंगाल के प्रगतिषील राजनीतिक चिन्तकों ने 1875 में 'इण्डियन लीग' की स्थापना की। इसका उद्देश्य जनता में राजनीतिक चेतना तथा राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना था।

2.6.1.8 इण्डियन एसोसियेशन

1876 में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने आनन्दमोहन बोस, शिवनाथ शास्त्री आदि के साथ मिलकर 'इण्डियन एसोसियेशन' की स्थापना की। कृष्णमोहन बनर्जी इसके प्रथम अध्यक्ष थे। इसके मुख्य उद्देश्य थे -

- देश में जनमत का प्रतिनिधित्व करने वाली एक संस्था का निर्माण करना।
- सामान्य राजनीतिक हितों के आधार पर भारतीय जातियों को एकबद्ध करना।
- हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव को बढ़ावा देना।
- राजनीतिक आन्दोलनों में जनता की भागीदारी को बढ़ाना तथा उसमें राजनीतिक जागृति का विकास करना।
- युवाओं को लोकतान्त्रिक प्रणाली की महत्ता से अवगत कराना।

इसके द्वारा आयोजित जनसभाओं में प्रेस की स्वतन्त्रता, ज्यूरी प्रणाली को लागू करना, जातिभेद तथा रंगभेद की भावना का उन्मूलन, नमक कर में कमी, रेलों में थर्ड क्लास के यात्रियों को अधिक सुविधाएं दिया जाना, उच्च प्रशासनिक सेवाओं में भारतीयों की अधिक हिस्सेदारी आदि विषयों को उठाया जाता था। 1877 में इस संगठन ने आई0 सी0 एस0 परीक्षा में अभ्यार्थियों की अधिकतम आयु 21 वर्ष से घटा कर 19 वर्ष किए जाने के विरोध में देश-व्यापी आन्दोलन किया। इस संगठन ने लॉर्ड लिटन द्वारा लागू किए गए 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट', 'इण्डियन आर्म्स एक्ट' तथा 'लाइसेन्स एक्ट' जैसे जातिभेदी व रंगभेदी कानूनों का प्रबल विरोध किया। इस संगठन के प्रयासों से 'इण्डियन स्टेट्यूटरी सर्विस' की स्थापना हुई जिसके कारण मझले स्तर तक के प्रशासनिक पदों पर भारतीयों की नियुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो गया। 1879 में आयोजित एक जन-सभा में 'इण्डियन एसोसियेशन' ने अफ़गान युद्ध पर हो रहे खर्च से भारत की अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव की चर्चा की तथा ब्रिरटिश कपड़ा मिल मालिकों को लाभ पहुंचाने व भारतीय कपड़ा मिलों के विकास में बाधा पहुंचाने के उद्देश्य से विदेशी कपड़े

पर आयात कर हटाने का विरोध किया। 1879 से इस संगठन ने राष्ट्रीय स्तर पर स्वशासन की मांग करना भी प्रारम्भ कर दिया। इस संगठन ने 1879 के विदेशी कपड़ों पर लगाए जाने वाले आयात कर को हटाए जाने का विरोध किया।

2.6.1.9 महाजन सभा

मद्रास में जन-जागृति हेतु 1878 में 'हिन्दू' की स्थापना हुई। इसके समर्थकों ने 1884 में एक राजनीतिक संगठन 'महाजन सभा' का गठन किया। दिसम्बर, 1884 में इस संगठन ने मद्रास प्रेसीडेन्सी के बड़े शहरों के प्रतिनिधियों ने विधान परिषदों में सुधार, न्यायपालिका को राजस्व सम्बन्धी दायित्व से मुक्ति दिलाने तथा नागरिक एवं सैन्य प्रशासन में कमी किए जाने पर चर्चा की और इस विषय में सरकार को एक स्मरणपत्र दिया।

2.6.1.10 नेशनल कान्फ्रेन्स

अपने पत्र बैंगाली के 27 मई, 1882 के अंक में नेशनल कान्फ़्रेन्स के गठन की आवश्यकता पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा -

क्यों नहीं हमको एक राष्ट्रीय और नहीं तो कम से कम एक प्रान्तीय कांग्रेस का गठन कर लेना चाहिए, जिसमें कि देश के विभिन्न भागों से सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधि अपने विचार रख सकें?

1883 में 28 से 30 दिसम्बर तक कलकत्ता में नेशनल कॉन्फ़्रेन्स की प्रथम बैठक हुई। इसमें उठाए गए मुद्दों में मुख्य थे - प्रतिनिधि सभाएं, सामान्य तथा तकनीकी शिक्षा, न्यायपालिका का कार्यपालिका से अलगाव, फ़ौजदारी न्याय प्रशासन तथा प्रशासनिक सेवाओं में भारतीयों की नियुक्ति। दिसम्बर, 1885 में कलकत्ते में नेशनल कॉन्फ़्रेन्स की दूसरी बैठक हुई जिसमें विधान परिषदों में सुधार किए जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया।

2.6.2 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना तथा उसका प्रथम अधिवेशन

2.6.2.1 कांग्रेस की स्थापना की परिस्थितियां

लोकतन्त्र की जननी इंग्लैण्ड के उदार राजनीतिक वातावरण को भारत में भी स्थापित करने की कामना करने वाले अनेक उदार अंग्रेज़ विचारक तथा अधिकारी भारतीयों को राजनीतिक व संवैधानिक सुधार दिए जाने के पक्ष में थे। लॉर्ड हेस्टिंग्स, एलफ़िन्सटन, टॉमस मुनरो, लॉर्ड मैकॉले और मैटकाफ़ जैसे अधिकारियों ने राजनीतिक एवं संवैधानिक सुधारों के लिए भारतीयों को शासन में हिस्सेदारी दिए जाने की सिफ़ारिश की थी। इण्डियन सिविल सर्विस के सर ए0 ओ0 ह्यूम का मानना था कि भारत का शासन, शासक और प्रजा दोनों के हितों को ध्यान में रखकर चलाना चाहिए। उनका यह भी कहना था कि सरकार व जनता के मध्य सम्पर्क के किसी संवैधानिक साधन के अभाव के कारण सरकार को भारतीयों की समस्याओं की बहुत कम जानकारी मिल पाती है। लॉर्ड लिटन के बदनाम शासन में भारतीय असन्तोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। इस स्थिति में एक विप्लव की प्रबल सम्भावना बन रही थी।

2.6.2.2 भारत में एक राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दल की आवश्यकता

सर ए0 ओ0 ह्यूम की दृष्टि में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध किसी भी जन-विद्रोह के खतरे को रोकने के लिए सरकार की ओर से कुछ ठोस सुधार किए जाने आवश्यक थे और इन सुधारों में सबसे आवश्यक था राष्ट्रीय आन्दोलन का एक संगठन जिसके तीन लक्ष्य हों-

पहला, भारत के विभिन्न क्षेत्रों तथा जनसमूहों का सम्मिश्रण।

दूसरा, राष्ट्र का आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक उत्थान।

तीसरा, अन्यायपूर्ण व हानिकारक तत्वों को दूर कर भारत तथा इंग्लैण्ड के मध्य सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित करना।

ए0 ओ0 ह्यूम भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कर उसकी वैसी ही भूमिका चाहते थे जैसी कि इंग्लैण्ड में विरोधी दल की होती थी। ए0 ओ0 ह्यूम ब्रिटिश भारतीय शासन के लिए एक सेफ्टी वॉल्व के रूप में कांग्रेस की स्थापना करना चाहते थे। उन्हें आशा थी कि प्रबुद्ध भारतीयों की प्रतिनिधि संस्था कांग्रेस की मांगों और उसके सृजनात्मक सुझावों को मानकर सरकार भारतीय प्रजा की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को एक सीमा तक पूरा कर उनके किसी भी सम्भावित आक्रोश पर नियन्त्रण लगा सकेगी और भारत पर रूस के हमले की स्थिति में रूसी आक्रमणकारी सेना के विरुद्ध भारतीयों के सहयोग की अपेक्षा कर सकेगी। ग्रेट ब्रिटेन के उदार राजनीतिज्ञ, वहां की उदारवादी दल की सरकार और तत्कालीन भारतीय प्रशासकों ने भी ए0 ओ0 ह्यूम के प्रस्तावों का स्वागत किया। बम्बई में दिसम्बर, 1885 में सर ए0 ओ0 ह्यूम ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

2.6.2.3 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन

28-31 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज परिसर में डब्लू0 सी0 बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। ए0 ओ0 ह्यूम इसके महासचिव थे और इसमें भाग लेने वाले सदस्यों की कुल संख्या 72 थी जिनमें कि अधिकांश बॉम्बे तथा मैड्रास प्रेसीडेन्सी के शहरी मध्यवर्गीय हिन्दू थे। इसके विदेशी सदस्यों में वैडरबर्न और जस्टिस जॉन जॉर्डिन सम्मिलित थे। इस अधिवेशन में सदस्यों ने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की और ब्रिटिश भारतीय सरकार की ओर से भी इसे संरक्षण प्रदान किया गया।

- कांग्रेस के पहले अधिवेशन में घोषित उद्देश्य थेः
- भारत के हितैषियों के मध्य सम्पर्क व सद्भाव बढ़ाना।
- धर्म, सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र की संकीर्ण भावना दूर कर राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयास करना।
- शिक्षित समुदाय से विचार-विमर्श कर सामाजिक विषयों पर चर्चा करना।
- भारतीयों के कल्याण हेतु भावी कार्यक्रम की दिशा निर्धारित करना।
- इस अधिवेशन में कुल 9 प्रस्ताव पारित किए गए जिनमें कि मुख्य थे -
- भारतीय प्रशासन की कार्यप्रणाली की जांच करने के लिए रॉयल कमीशन की नियुक्ति की जाए।
- भारत सचिव की इण्डियन काउंसिल भंग की जाए।

- पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध और पंजाब में विधान परिषदों का गठन किया जाए।
- उच्चतम तथा स्थानीय विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों को पर्याप्त संख्या में प्रवेश दिया जाए तथा उन्हें बजट पर बहस करने का अधिकार दिया जाए।
- हाउस ऑफ़ कॉमन्स में एक स्टैण्डिंग काउंसिल का गठन किया जाए जो कि विधान परिषदों में बहुमत से उठाए गए विरोधों पर विचार करे।
- सैनिक व्यय में कमी की जाए तथा इसका बोझ भारत और इंग्लैण्ड मिलकर उठाएं।
- इंग्लैण्ड तथा भारत दोनों में ही एकसाथ इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का आयोजन किया जाए तथा अभ्यार्थियों की आयु की अधिकतम सीमा बढ़ाई जाए।

अभ्यास प्रश्न

1. वेदों में व्यक्त राष्ट्रीयता की भावना पर प्रकाश डालिए।
2. दादा भाई नौरोजी को भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का जनक क्यों कहा जाता है?
3. नेशनल कॉन्फ्रेन्स की प्रमुख मांगे क्या थीं?

2.7 सारांश

आदि काल से ही हमारे भारत में देशदेश प्रेम की भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। चारो वेदों में, पुराणों तथा महाकाव्यों में राष्ट्रीयता की भावना सर्वत्र व्यक्त हुई है। मध्यकाल में राष्ट्रीयता की भावना के दर्शन हमको चन्द बरदाई और अमीर खुसरो की रचनाओं में महाराष्ट्र के वाराकरी पंथ के सन्तों के उपदेशों में तथा अकबर की प्रशासनिक, आर्थिक व धार्मिक नीति में मिलते हैं।

भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय को हम भारतीय राजनीतिक चेतना का भी अग्रदूत कह सकते हैं। 1857 के विद्रोह में देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना प्रबल हुई। भारतीय नवजागरण में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक चेतना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना भी विकास हुआ। आर्थिक राष्ट्रवाद के अन्तर्गत दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी, दिनशा वाचा, रमेश चन्द्र दत्त, केशब चन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अल्ताफ़ हुसेन हाली आदि ने एक ओर जहां ब्रिटिश शासन की आर्थिक दोहन की नीति के कारण भारत की दुर्दशा पर प्रकाश डाला तो दूसरी ओर उन्होंने भारतीयों को आर्थिक स्वावलम्बन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रयास करने का आवाहन किया। शहरी मध्यवर्गीय भारतीय बुद्धिजीवियों ने उदार पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धान्तों से प्रेरित होकर भारतीयों के राजनीतिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा के लिए अपने-अपने राजनीतिक संगठन बनाए। धीरे-धीरे भारत में राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक संगठन की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा।

अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों तथा अनेक भारतीय भाषाओं रचित देशभक्तिपूर्ण साहित्यिक रचनाओं ने भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रसार-प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। सम्बाद कौमुदी, तत्व बोधिनी पत्रिका, हितवादी, बैंगाल हरकारा, पयामें आज़ादी, हिन्दू पैट्रिएट, सोमप्रकाश, कवि वचन सुधा, मुकर्जीज़ मैग्ज़ीन, ज्ञान प्रकाश, इन्दु प्रकाश, केसरी तथा बैंगाली में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना का प्रचार-प्रसार किया गया।

लॉर्ड लिटन की दमनकारी एवं शोषक नीतियों के कारण भारतीयों का असन्तोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया। गवर्नर जनरल लार्ड रिपन के शासन काल (1880-84) में भारतीयों को पहले से अधिक अधिकार दिए गए किन्तु इल्बर्ट बिल विवाद से भारतीयों को संगठित विरोध तथा आन्दोलन की शक्ति का पता चल गया और उन्हें देश में

संगठित राजनीतिक आन्दोलन करने की प्रेरणा मिली। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठनों में ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन, बॉम्बे एसोसियेशन, मैड्रास नेटिव एसोसियेशन, ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन, हिन्दू मेला, पूना सार्वजनिक सभा, इण्डियन लीग, इण्डियन एसोसियेशन, महाजन सभा तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की नेशनल कान्फ्रेन्स प्रमुख थे।

लोकतन्त्र की जननी इंग्लैण्ड के उदार राजनीतिक वातावरण को भारत में भी स्थापित करने की कामना करने वाले अनेक उदार अंग्रेज़ विचारक तथा अधिकारी भारतीयों को राजनीतिक व संवैधानिक सुधार दिए जाने के पक्ष में थे। इण्डियन सिविल सर्विस के अवकाश प्राप्त अधिकारी सर ए0 ओ0 ह्यूम का मानना था कि सरकार व जनता के मध्य सम्पर्क के किसी संवैधानिक साधन के अभाव के कारण सरकार को भारतीयों की समस्याओं की बहुत कम जानकारी मिल पाती है। उनकी दृष्टि में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध किसी भी जन-विद्रोह के खतरे को रोकने के लिए सरकार की ओर से कुछ ठोस सुधार किए जाने आवश्यक थे और इन सुधारों में सबसे आवश्यक था राष्ट्रीय आन्दोलन का एक संगठन। ए0 ओ0 ह्यूम भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कर उसकी वैसी ही भूमिका चाहते थे जैसी कि इंग्लैण्ड में विरोधी दल की होती थी। ग्रेट ब्रिटेन के उदार राजनीतिज्ञ, वहां की उदारवादी दल की सरकार और तत्कालीन भारतीय प्रशासकों ने भी ए0 ओ0 ह्यूम के प्रस्तावों का स्वागत किया। बम्बई में दिसम्बर, 1885 में सर ए0 ओ0 ह्यूम ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

28-31 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में डब्लू0 सी0 बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। कांग्रेस के पहले अधिवेशन में घोषित उद्देश्य थेः

- भारत के हितैषियों के मध्य सम्पर्क व सद्भाव बढ़ाना।
- धर्म, सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र की संकीर्ण भावना दूर कर राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयास करना।
- शिक्षित समुदाय से विचार-विमर्ष कर सामाजिक विषयों पर चर्चा करना।
- भारतीयों के कल्याण हेतु भावी कार्यक्रम की दिशा निर्धारित करना।

इस अधिवेशन में पारित प्रस्तावों में सरकार से संगभेदी व जातिभेदी नीति का परित्याग करने की अपील किए जाने के अतिरिक्त भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के प्रथम चरण के रूप में भारतीयों को भारतीय प्रशासन, विधि-निर्माण तथा आर्थिक नीति-निर्धारण में हिस्सेदारी दिए जाने की मांग रखी गई।

2.8 पारिभाषिक शब्दावली

आई0 सी0 एस0 : इण्डियन सिविल सर्विस (भारतीय प्रशासनिक सेवा)
वर्नाक्युलरः भारतीय भाषाएं।
पाकः पवित्र
मिल्कियतः सम्पत्ति
रूहानीः आत्मिक प्रकाश
कदीमः पुरातन
नईमः नव्योपहार
ज़रखेज़ः सिंचित
साहिलः किनारा
अहलेवतनः देशवासी

आज के मिती तकः आज के दिन तक

इज़्ज़तो-कौमः देशवासियों का सम्मान

इल्मो-हुनरः ज्ञान व दक्षता

ज़ात का फ़ख्र और नसल का गुरूरः अपनी जाति व अपने वंश का घमण्ड

सीमोज़रः सोना-चांदी

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 2.3.1.1 प्राचीनकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना
2. देखिए 2.3.2.3 भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय
3. देखिए 2.4.1.10 नेशनल कान्फ्रेन्स

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)-ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा, दो भागों मे, बम्बई, 1965

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984

चन्द्रा, बिपन - दि राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इकानॉमिक नेशनलिज़्म इन इण्डिया

नई दिल्ली, 1965

बनर्जी, एस0 एन0 - नेशन इन मेकिंग, कलकत्ता, 1915

नटेसन, जी0 ए0 (प्रकाशक) - इण्डियन नेशनल कांग्रेस, मद्रास, 1917

2.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

नौरोजी, दादाभाई - पॉवर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, लन्दन, 1902

दत्त, रमेश चन्द्र - दि इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1965

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फार फ्रीडम, बम्बई, 1969

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व भारत में स्थापित राजनीतिक संगठनों की भूमिका पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
2. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के उद्देश्यों और उसमें पारित प्रस्तावों की समीक्षा कीजिए।

इकाई तीन

प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस की मांगें तथा उदार राष्ट्रीयता का मूल्यांकन

3.1 प्रस्तावना

3.2. इकाई के प्राप्ति उद्देश्य

3..3 प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस की मांगें

3..3.1 प्रथम चरण में कांग्रेस का संगठन

3..3.2 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

3.3.3 1892 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट और कांग्रेस

3..3.4 1892 के बाद तथा बंगाल विभाजन के निर्णय से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

3.3.5 कांग्रेस के प्रथम चरण में उसके प्रति मुसलमानों का दृष्टिकोण

3.3.6 कांग्रेस के प्रति भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश जनता का रवैया

3.3.7 कांग्रेस के भीतर तथा बाहर विरोधी स्वरों का मुखर होना

3.4 उदार राष्ट्रीयता का मूल्यांकन

3.4.1 कांग्रेस के प्रथम चरण की सीमाएं

3.4.2 सरकार की अन्यायपूर्ण नीतियों में बदलाव लाने में कांग्रेस की असफलता

3.4.3 प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उपलब्धियां

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3. 8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

3.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

मदन मोहन मालवीय

पिछली इकाई में हम उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के प्रारम्भिक राजनीतिक संगठनों के उदय से लेकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना और उसके प्रथम अधिवेशन के उद्देश्य तथा उसमें पारित प्रस्तावों की चर्चा कर चुके हैं। कांग्रेस की स्थापना के बाद उसके प्रथम 20 वर्ष की अवधि को नरमपंथियों के राजनीतिक प्रभुत्व का काल माना जाता है। नरमपंथियों ने आर्थिक राष्ट्रवाद का पोषण किया और सरकार की शोषक एवं दमनकारी नीतियों की आलोचना करते हुए उनमें सुधार लाने हेतु सृजनात्मक सुझाव रखे। नरमपंथियों ने भारत और ब्रिटेन के हितों को परस्पर विरोधी होने के स्थान पर एक दूसरे का सहयोगी माना। उनको विश्वास था कि ब्रिटिश सरकार 1858 के महारानी के घोषणापत्र में दिए गए आश्वासनों का निष्ठापूर्वक क्रियान्वयन करेगी। उनका विचार था कि सरकार की नीतियों में जो भी दोष हैं उनके लिए स्थानीय सरकार तथा नौकरशाही ज़िम्मेदार है न कि गृह सरकार, ब्रिटिश पार्लियामेन्ट और न ही ब्रिटिश जनता। इसलिए उन तक अपनी बात पहुंचाने के लिए इस काल में सक्रिय राजनीतिक विरोध के स्थान पर कानून की सीमाओं का पालन करते हुए अपनी शिकायतें और मांगे रखी गईं। उनके द्वारा प्रायः अनुनय-विनय के माध्यम से अपने अधिकारों के लिए याचना करने की नीति को अपनाया गया। औपनिवेशिक सरकार कांग्रेस को मुट्ठी भर

बदरुद्दीन तैयबजी

शिक्षित शहरी मध्यवर्गीय हिन्दुओं का राजनीतिक दल मानकर उसकी मांगों पर ध्यान दिए बगैर अपनी शोषक, दमनकारी, जातिभेदी, रंगभेदी व 'फूट डालो और शासन करो' की नीतियों का पूर्ववत पालन करती रही। कांग्रेस ने भारत के सभी धार्मिक, सामाजिक व आर्थिक वर्गों का हितैषी होने का दावा किया किन्तु इसे शहरी मध्यवर्गीय हिन्दुओं का राजनीतिक दल मानकर मुसलमान आमतौर पर इससे अलग रहे। सरकार के प्रति अनावश्यक सहयोग व विनम्रता का रुख अपनाने के लिए कांग्रेस के नरमपंथी नेताओं को उग्रवादियों की कटु आलोचना का पात्र भी बनना पड़ा परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में राजनीतिक चेतना के प्रसार में कांग्रेस के इस प्रथम चरण महत्वपूर्ण प्रगति हुई।

3.2. इकाई के प्राप्ति उद्देश्य

इस इकाई में कांग्रेस की स्थापना के प्रथम चरण में उसके कार्यों का विवरण तथा उनकी समीक्षा भी की जाएगी तथा उसकी कमियों तथा उसकी उपलब्धियों का आकलन भी किया जाएगा। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

कांग्रेस की स्थापना के बाद उसके प्रथम बीस वर्षों में किए गए प्रमुख कार्य तथा उसकी नीतियां।

इस अवधि में सरकार के कार्य तथा उसकी नीतियां और कांग्रेस के प्रति उसका रवैया अधिकांश मुसलमानों का स्वयं को कांग्रेस की गतिविधियों से अलग रखना कांग्रेस के भीतर ही उग्रवादियों द्वारा नरमपंथी नीतियों की आलोचना कांग्रेस की स्थापना के प्रथम चरण में उसकी उपलब्धियां तथा उसकी असफलताएं।

3..3 प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस की मांगें

3..3.1 प्रथम चरण में कांग्रेस का संगठन

गोपालकृष्ण गोखले

कांग्रेस अपने प्रारम्भिक चरण में एक राजनीतिक दल की भूमिका निभाने में असफल हुई थी। वास्तव में इसका काम हर साल के सप्ताहान्त में किसी शहर में देश के राष्ट्रीय नेताओं को सम्मिलित कर तीन-चार दिन का एक आयोजन करने तक सीमित था। इस आयोजन के दौरान रस्मी तौर पर देश की जनता की शाश्वत एवं तत्कालीन समस्याओं को उठाया जाता था। यूं तो कांग्रेस अधिवेशनों के द्वार सभी के लिए खुले थे किन्तु इसके लिए प्रतिनिधि का नाम संगठन के द्वारा प्रस्तावित किया जाना अथवा एक सार्वजनिक सभा में उसका नामांकन किया जाना आवश्यक था। अधिवेशन में प्रतिनिधि बनने के लिए व्यक्ति को 10 से 20 रुपये तक का शुल्क देना होता था और इसके अतिरिक्त उसे अपने स्थान से अधिवेशन के स्थान तक आने जाने के व्यय का भी स्वयं निर्वाह करना होता था। देश की जनता के तत्कालीन आर्थिक संसाधनों को देखते हुए कांग्रेस का सदस्यता शुल्क तथा प्रतिनिधि शुल्क दे सकना आम आदमी के लिए अत्यन्त कठिन था। इसके अतिरिक्त कांग्रेस की कार्रवाही आमतौर पर अंग्रेज़ी भाषा में होती थी। इन कारणों से कांग्रेस अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त शहरी मध्यवर्ग तक सिमटी हुई थी। 1905 में भी नरमपंथी गोपाल कृष्ण गोखले केवल शिक्षित वर्ग के लिए ही राजनीतिक अधिकारों की मांग कर रहे थे क्योंकि उनकी दृष्टि में राजनीतिक विषयों की समझ रखने के लिए शिक्षा एक आवश्यक शर्त थी। कांग्रेस के अधिवेशनों की तड़क-भड़क देखते ही बनती थी। आमतौर पर अधिवेशनों के आयोजनों में ही इसके संसाधनों का अधिकांश भाग खर्च हो जाता था।

कांग्रेस के पहले अधिवेशन में सदस्यों की कुल संख्या मात्र 72 थी। इसके दूसरे सत्र में यह संख्या पहले सत्र से छह गुने से भी अधिक - कुल 434 हो गई। इसमें जनता के चुने प्रतिनिधियों ने भाग लिया। मद्रास में हुए कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन में प्रतिनिधियों की संख्या 607 हो गई। इलाहाबाद में कांग्रेस के चौथे अधिवेशन में इसके सदस्यों की संख्या 1248 और 1889 में बम्बई में हुए इसके पांचवे अधिवेशन में यह संख्या बढ़कर 1889 हो गई।

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष डब्लू0 सी0 बैनर्जी एक भारतीय ईसाई, दूसरे अधिवेशन के अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी एक पारसी, तीसरे अधिवेशन के अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयबजी एक मुसलमान और चौथे अधिवेशन के

अध्यक्ष जॉर्ज यूल एक अंग्रेज़ थे। इन अध्यक्षों के चयन ने कांग्रेस की धर्मनिर्पेक्षता के सिद्धान्त में आस्था व उसके जातिगत भेदभाव में पूर्ण अविश्वास को स्पष्ट कर दिया।

सन् 1885 से लेकर सन् 1906 तक ए0 ओ0 ह्यूम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ऑनरेरी जनरल सेक्रेटरी बने रहे। ह्यूम कांग्रेस के अधिवेशनों के सुचारु संचालन, देश के विभिन्न नेताओं से सम्पर्क, उसके वित्तीय मामलों की देखभाल तथा अधिवेशनों की रिपोर्ट तैयार करने के दायित्वों का निर्वाह करते थे। वास्तव में गोपाल कृष्ण गोखले से पूर्व ए0 ओ0 ह्यूम ही एक मात्र व्यक्ति थे जिसने अपना पूरा समय कांग्रेस के कार्यों के लिए समर्पित कर रखा था।

3..3.2 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

कांग्रेस के नरमपंथी नेता एडमन्ट बर्क, जॉन स्टुअर्ट मिल तथा जॉन मोर्ले के उपयोगितावादी सिद्धान्तों से प्रभावित थे। कांग्रेस के प्रारम्भिक बीस वर्षों में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी, फ़िरोज़ शाह मेहता, डब्लू0 सी0 बैनर्जी, बदरुद्दीन तैयबजी, रासबिहारी घोष, आनन्द मोहन बोस, लालमोहन बोस, रमेश चन्द्र दत्त, के0 टी0 तैलंग, वीर राघवचारी, आनन्द चारलू, दिनशा वाचा, गोपालकृष्ण गोखले, सुब्रह्मण्यम अय्यर, पण्डित मदन मोहन मालवीय, सी0 वाई0 चिन्तामणि आदि नेताओं ने सरकार की नीतियों की कटु आलोचना करते हुए भी याचिकाओं, शिष्ट मण्डलों, जनसभाओं, पैम्फ्लैटों, स्मरणपत्रों, इंग्लैण्ड में जनता के समक्ष तथा पार्लियामेन्ट में भारत का पक्ष रखने में तथा अखबारों के माध्यम से अपनी निर्भीक राय रखने की रणनीति अपनाई। विलियम वेडरबर्न को इंग्लैण्ड में कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी का अध्यक्ष बनाया गया और कांग्रेस की मांगों को इंग्लैण्ड वासियों के सम्मुख रखने के लिए इण्डिया पत्र का प्रकाशन किया गया।

कांग्रेस ने अपने प्रथम चरण में सरकार के प्रति पूर्ण अविश्वास और विरोध की नीति को नहीं अपनाया क्योंकि उसे विश्वास था कि महारानी के 1858 के घोषणापत्र में दिए गए आश्वासनों के कार्यान्वयन में सरकार आनाकानी नहीं करेगी। कांग्रेस के नेताओं ने उदार ब्रिटिश जनता की सहानुभति प्राप्त कर भारत में राजनीतिक, संवैधानिक, आर्थिक, शैक्षिक व प्रशासनिक सुधार प्राप्त करना सम्भव माना। नरमपंथियों का यह मानना था कि भारतीयों के साथ हो रहे अन्याय तथा ब्रिटिश चरित्र के सर्वथा विरुद्ध शासन के लिए मुख्यतः वाइसराय, उसकी कार्यकारिणी तथा स्थानीय नौकरशाही ज़िम्मेदार है और इसके परिष्कार हेतु ब्रिटिश पार्लियामेन्ट, गृह सरकार और ब्रिटिश जनता तक अपनी शिकायतें पहुंचाना आवश्यक है। दादा भाई नौरोजी ने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में तथा गोपालकृष्ण गोखले ने भारत की केन्द्रीय विधान परिषद में भारतीयों की समस्याओं को रखा तथा सरकार की कथनी और उसकी करनी में फ़र्क को उजागर किया। आमतौर पर इन नेताओं को विश्वास था कि कॉब्डेन, बेंथम, ब्राइट, मिल तथा ग्लैड्सटन के देश की जनता तथा सरकार उनके न्यायपूर्ण अधिकारों को दिलाने में उनका साथ देगी। उनका लक्ष्य जनता को राजनीतिक आन्दोलन करने की शिक्षा देना और भारतीयों की आकांक्षाओं को ब्रिटिश जनता और राजनीतिज्ञों तक पहुंचाना था।

कांग्रेस के प्रारम्भिक अधिवेशनों में संवैधानिक सुधारों की मांगों में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों के कार्यक्षेत्र तथा उसके सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि और उसके सदस्यों को जनता द्वारा निर्वाचित किया जाना सम्मिलित था। प्रशासनिक एवं आर्थिक सुधारों की मांगें रखी गईं।

कांग्रेस के प्रथम चरण में प्रेस तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की मांग की गई और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को महत्व दिया गया। इस काल में भारतीय शासन में भारतीयों की हिस्सेदारी बढ़ाने की मांग की गई। इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का आयोजन भारत में भी करने और इसके हेतु परीक्षा देने वाले अभ्यार्थियों की अधिकतम आयु सीमा बढ़ाने की मांगों को बार-बार रखा गया। कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के पृथक्कीकरण की आवश्यकता पर बहुत ज़ोर दिया गया तथा सरकार की रंगभेद की नीति को पूरी तरह समाप्त किए जाने की मांग बार-बार रखी गई। प्रशासनिक तथा सैनिक व्यय में कमी किए जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया।

कलकत्ते में आयोजित कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन का अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी को चुना गया। अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए दादा भाई नौरोजी ने ब्रिटिश शासन के कारण भारत की विपन्नता का उल्लेख किया था। दूसरे अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष राजेन्द्रलाल मित्र ने कहा था -

हमारी विदेशी नौकरशाही, जन्म, धर्म और प्रकृति में हमसे भिन्न है। वह हमारी आवश्यकताओं, भावनाओं और आकांक्षाओं को समझ नहीं सकती।

दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी आदि ने भारत के खाद्यान्न तथा अन्य उत्पादन, उसके आयात, निर्यात, प्रति व्यक्ति औसत आय, शासन पर होने वाले व्यय तथा जन-कल्याण पर किए जाने वाले व्यय सम्बन्धी प्रामाणिक आंकड़े एकत्र किए और सरकार से भूमि कर में कमी करने, अपनी अकाल नीति में सुधार करने और भारतीय उद्योग को प्रोत्साहन व संरक्षण देने की मांग की। 1888 में सरकार ने जब नमक कर में वृद्धि की तो कांग्रेस ने इस वृद्धि का विरोध किया क्योंकि इससे सबसे अधिक हानि निर्धन वर्ग को होने वाली थी। कांग्रेस ने पॉन्ड-रूपया सम्बन्ध में भारतीय हितों की उपेक्षा और नवोदित भारतीय मिलों के विकास में बाधा डालने की सरकारी नीति की भी आलोचना की थी।

3.3.3 1892 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट और कांग्रेस

कांग्रेस को यह आशा थी कि भारत में उत्तरदायी सरकार स्थापित किए जाने की दिशा में सरकार की ओर से प्रारम्भिक कदम उठाए जाएंगे और इसके लिए सबसे पहले विधान परिषदों में सदस्यों के निर्वाचन की प्रक्रिया शुरू की जाएगी। 1888 में भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड डफ़रिन ने भारत सचिव लॉर्ड क्रास को लिखे गए अपने पत्र में प्रान्तीय परिषदों के कार्यक्षेत्र में विस्तार और उसके सदस्यों की संख्या में वृद्धि करने का सुझाव दिया था तथा उनके सदस्यों के निर्वाचन की बात भी रखी थी। भारत में लॉर्ड डफ़रिन के उत्तराधिकारी लॉर्ड लैन्सडाउन ने भी उसके सुझावों का अनुमोदन किया था किन्तु भारत सचिव लॉर्ड क्रास तथा इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री लॉर्ड सेलिसबरी की दृष्टि में प्रान्तीय परिषदों में चुनाव की प्रक्रिया प्रारम्भ किए जाने का अभी उचित समय नहीं था क्योंकि इससे विभिन्न जातियों और वर्गों के हितों की रक्षा कर पाना कठिन हो जाता। 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में केन्द्रीय विधान परिषद और प्रान्तीय विधान परिषदों में चुनाव की व्यवस्था लागू नहीं की गई और इसके सदस्यों संख्या व उनके अधिकारों में भी मामूली सी वृद्धि ही की गई और साथ ही साथ इन सभी में सरकारी सदस्यों का बहुमत बना रहा। कांग्रेस को 1892 के इण्डियन काउन्सिल्स एक्ट से घोर निराशा हुई और उसका सरकार की सुधार करने की सदाशयता पर से विश्वास उठने लगा।

3..3.4 1892 के बाद तथा बंगाल विभाजन के निर्णय से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

ब्रिटिश शासनकाल में भारत में अकालों की आवृत्ति और भयावहता में निरन्तर वृद्धि होती जा रही थी। अकाल की समस्या से निपटने के लिए फ़ैमिन कोड का गठन किया जा चुका था किन्तु उससे भारत की जनता को कोई लाभ नहीं पहुंच रहा था। 1896-97 में पड़े भयंकर दुर्भिक्ष में ब्रिटिश भारतीय क्षेत्र में कुल 50 लाख और 1899-1900 में कुल 10 लाख लोग भुखमरी का शिकार हुए थे। भुखमरी फैलने के दौरान भी भारत से आमतौर पर प्रतिवर्ष दस लाख टन अनाज का निर्यात किया जाता रहा। नरमपंथियों ने सरकार की अकाल नीति की निर्भीक आलोचना की और सरकार से अकाल की स्थिति से निपटने के लिए ठोस और स्थायी कदम उठाने की मांग की।

कांग्रेस की एक प्रमुख मांग थी कि भारतीयों को प्रशासन, न्याय व्यवस्था, सेना, रेलवेज़, षिक्षा तथा अन्य क्षेत्रों में उच्च पदों पर नियुक्त किया जाए। इससे न केवल योग्य भारतीयों को उन्नति के अवसर प्राप्त होते अपितु सरकार के खर्च में भी कमी आती।

लॉर्ड कर्ज़न के शासनकाल की दमनकारी नीतियों का कांग्रेस ने खुलकर विरोध किया। महारानी विक्टोरिया के सिंहासनारूढ़ होने की हीरक जयन्ती पर भारत में भयानक दुर्भिक्ष के समय भी उत्सवों में प्रचुर मात्रा में सरकारी संसाधनों का दुरुपयोग हुआ। कर्ज़न की राजनीतिक दमन और प्रशासनिक अपव्यय की नीतियों पर भारतीयों द्वारा नियन्त्रण न रख पाने की असमर्थता पर 1901 के कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए डी0 एन0 वाचा ने कहा था -

'भारत को यह स्वतन्त्रता या अधिकार नहीं है कि वह अपना प्रशासक चुन सके। यदि उसे ऐसा करने का अधिकार होता तो वह पूरी तरह से स्वदेशी संस्था चुनता जो कि देश का पैसा देश के ऊपर ही खर्च करती।'

दरिद्रता में आकण्ठ डूबे भारत में प्रशासन पर किया जाने वाला व्यय विश्व में किसी भी देश के प्रशासनिक व्यय से अधिक था। प्रशासन तथा सेना की सभी शाखाओं में सभी ऊँचे पदों पर अंग्रेज़ों का एकाधिकार रहा। सरकारी व्यय में निरन्तर वृद्धि होती गई। भारतीय सेना पर भी अत्यधिक व्यय किया जा रहा था और उसका उपयोग विदेशी भूमि पर युद्ध करने के लिए भी किया जा रहा था। भारत में शासन करने के शुल्क के रूप में इंग्लैण्ड भेजे जाने वाले होमचार्ज में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। भारतीय ऋण 1901-02 में 312 करोड़ रुपये हो गया था।

कांग्रेस ने इस आर्थिक दोहन की निर्भीकतापूर्वक निन्दा की। 1902 के कांग्रेस अधिवेशन में भारी नमक कर के कारण पर्याप्त नमक खरीद पाने में असमर्थता के फलस्वरूप निर्धन वर्ग में नमक की कमी से होने वाली अनेक बीमारियों के फैलने पर चिन्ता व्यक्त की गई और कपास पर उत्पादन शुल्क हटाने की मांग की गई क्योंकि इससे भारतीय कपड़ा उद्योग के विकास में बाधा पहुंच रही थी। 1904 के कांग्रेस अधिवेशन में दुर्भिक्ष पीड़ित क्षेत्रों में भूमि-कर में रियायत किए जाने की बात भी रखी। सरकार से यह भी अपील की गई कि वह वैज्ञानिक कृषि पद्धति को प्रोत्साहित करने और तकनीकी शिक्षा का प्रसार करने के लिए धनराशि आवंटित करे। देश का आधुनिक ढंग से औद्योगिकीकरण करने में सरकार द्वारा पूरी निष्ठा से अपना सहयोग करने तथा भारतीय उद्योग के संरक्षण के लिए आयातित वस्तुओं पर तटकर (टैरिफ़) लगाने की मांगे कांग्रेस अधिवेशनों में रखी जाने वाली मांगों में

शामिल थीं। स्वदेशी उद्योग के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ औद्योगिक प्रदर्शनियां लगाई गईं। कई स्थानों पर स्वदेशी भंडार खोले गए।

3.3.5 कांग्रेस के प्रथम चरण में उसके प्रति मुसलमानों का दृष्टिकोण

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने धर्मनिर्पेक्ष स्वरूप को पहले ही दर्शा दिया था किन्तु कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में एक भी मुस्लिम सदस्य नहीं था। इसके तीसरे अधिवेशन के अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयबजी ने अपने मुसलमान भाइयों से कांग्रेस में आने की अपील की। अगले अधिवेशन में मुस्लिम सदस्यों की संख्या में वृद्धि हुई पर अधिकांश मुसलमान अब भी कांग्रेस में स्वयं को सुरक्षित अनुभव नहीं कर पाए। उनको अब भी यह लगता था कि कांग्रेस भारत में हिन्दू राज स्थापित करना चाहती है। सैयद अहमद खान ने कांग्रेस को बंगाली हिन्दुओं के प्रभुत्व वाला दल बताया और यह कहा कि यदि कांग्रेस की मांगे मान ली गईं तो भारत में बंगाली हिन्दुओं का शासन स्थापित हो जाएगा। उन्होंने मुसलमानों को सलाह दी कि वो कांग्रेस से दूर रहें। प्रारम्भ में कांग्रेस में मुस्लिम सदस्यों का प्रतिशत 13.5 तक बढ़ा किन्तु 1893 के साम्प्रदायिक दंगों के बाद यह गिरकर 7.1 प्रतिशत रह गया।

3.3.6 कांग्रेस के प्रति भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश जनता का रवैया

कांग्रेस अधिवेशनों में सरकार के प्रति बार-बार निष्ठा व्यक्त की गई परन्तु इसके बावजूद इंग्लैण्ड की जनता कांग्रेस को भारत में ब्रिटिश शक्ति के लिए एक खतरा मानती रही। लन्दन के पत्र दि टाइम्स के सम्पादकीय टिप्पणी में कहा गया कि कांग्रेस की मांगे मानकर सरकार भारत में भारतीयों स्वशासन दिए जाने का मार्ग प्रशस्त कर देगी।

गवर्नर जनरल लॉर्ड डफ़रिन प्रारम्भ में कांग्रेस की गतिविधियां सामाजिक मुद्दों तक ही सीमित रखे जाने के पक्ष में था परन्तु बाद में उसने उसके राजनीतिक स्वरूप को स्वीकार किया। सरकार ने कांग्रेस की स्थापना के चार वर्ष बाद ही उसको प्रोत्साहित करने अथवा उसके साथ सहयोग करने की नीति का परित्याग कर दिया। लॉर्ड डफ़रिन ने कांग्रेस को भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले दल के रूप में मान्यता नहीं दी। उसकी दृष्टि में मुठ्ठी भर शिक्षित शहरी मध्य वर्ग के दल को जिसको कि भारत के राजनीतिक पटल पर केवल सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की सहायता से देख जा सकता था, भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने का कोई अधिकार नहीं था। 1888 के बाद सरकारी अधिकारियों को कांग्रेस अधिवेशनों में भाग लेने की अनुमति नहीं दी गई। सरकार ने कांग्रेस के प्रस्तावों की सामान्यतः नितान्त उपेक्षा की। इससे सर ए0 ओ0 ह्यूम को बहुत अधिक निराशा हुई। उन्होंने कहा -

शिक्षित भारतीय समुदाय, प्रेस और कांग्रेस, तीनों की सलाहों को अनसुनी कर सरकार ने अपने निरंकुश होने का सबूत दे दिया है।

कांग्रेस ने सरकार के आर्थिक दोहन की नीति का पर्दाफ़ाश किया । कांग्रेस के द्वारा अपनी नीतियों को आर्थिक दोहन, रंगभेदी तथा जातिभेदी नीतियां ठहराया जाना सरकार को सहन नहीं हुआ । सरकार द्वारा कांग्रेस की प्रगति में बाधा पहुंचाई जाने लगी । 1888 में मैसूर के महाराजा को कांग्रेस को चन्दा देने के लिए वाइसराय डफ़रिन ने फटकार लगाई थी। 1900 में गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न ने भारत सचिव को लिखे एक पत्र में कांग्रेस को पतन की कगार पर खड़ा बताया था और भारत में अपने शासनकाल में उसके शान्तिपूर्ण अवसान की कामना की थी।

3.3.7 कांग्रेस के भीतर तथा बाहर विरोधी स्वरों का मुखर होना

कांग्रेस में लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय और बिपिन चन्द्र पाल ने सरकार की नीतियों को मूलतः शोषक, दमनकारी, रंगभेदी तथा जातिभेदी मानते हुए यह साफ़ किया कि सरकार के सदाशय में आस्था रखकर, संविधान की सीमाओं मे रहते हुए तथा सरकार से सहयोग करते हुए कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता। लोकमान्य तिलक ने भीख मांगने के स्थान पर लड़कर अपना अधिकार लेने की रणनीति अपनाने के लिए कांग्रेस पर दबाव डाला और कांग्रेस को शिक्षित शहरी मध्यवर्ग के राजनीतिक दल से उसे आम भारतीय जनता का दल बनने की सलाह दी। युवा कवि रबीन्द्रनाथ टैगोर ने भी कांग्रेस की याचक प्रवृत्ति की आलोचना की थी और सुधारों के लिए आत्मशक्ति पर आधारित कार्यक्रमों की महत्ता दर्शाई थी। कांग्रेस के भीतर ही उभरते हुए विरोधी स्वरों में उसकी कागज़ी कार्यवाही करने की नीति की आलोचना की गई।

3.4 उदार राष्ट्रीयता का मूल्यांकन

3.4.1 कांग्रेस के प्रथम चरण की सीमाएं

कांग्रेस के त्रि-दिवसीय अधिवेशनों में बड़ी-बड़ी मांगे रखने के बाद शेष समय चुपचाप बैठ जाने की उसके नेताओं की दुर्बलता की भी आलोचना की गई। कांग्रेस के 1897 के अमरावती अधिवेशन को अश्विनीकुमार दत्त ने तीन दिनों का तमाशा कहा था। गोपालकृष्ण गोखले और मदनमोहन मालवीय जैसे नेताओं ने त्यागपूर्ण सार्वजनिक जीवन की मिसाल कायम की परन्तु अधिकांश भारतीय नेता आराम की ज़िन्दगी बिताते हुए अपना अधिकतर समय अपने-अपने व्यवसाय में ही व्यस्त रहने में लगाते थे। दिनशा वाचा ने इस विषय में फ़िरोज़शाह मेहता, एम0 जी0 रानाडे तथा के0 टी0 तैलंग की आलोचना की थी। अनेक नेता कांग्रेस से केवल इसलिए जुड़ना चाहते थे क्योंकि इसकी सदस्यता ग्रहण कर उनकी न केवल सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होती थी अपितु इससे उन्हें बड़े-बड़े अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करने का सुअवसर भी प्राप्त होता था। प्रसिद्ध उर्दू शायर अकबर इलाहाबादी ने इन भारतीय नेताओं की जीवन शैली पर व्यंग्य कसते हुए कहा था-

क़ौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ।

रंज लीडर को बहुत हैं, मगर आराम के साथ।।

(देश तथा देशवासियों की चिन्ता करने वाले नेतागण सरकारी अधिकारियों के साथ रात्रि-भोज करते हैं। देशसेवा करने में इनको कष्ट तो बहुत होते हैं मगर इनके विलासितापूर्ण जीवन में कोई बाधा नहीं पड़ती।)

वास्तव में उस समय भारत राजनीतिक चेतना की प्रक्रिया के प्रथम चरण से गुज़र रहा था अतः इसमें आम जनता की भागीदारी नहीं थी बल्कि इसमें वकीलों, पत्रकारों, शिक्षकों आदि शहरी मध्य वर्ग का ही प्रतिनिधित्व था। अपने प्रारम्भिक चरण में कांग्रेस आम भारतीयों का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी और लॉर्ड डफ़रिन का यह कहना एक सीमा तक उचित था-

कांग्रेस रिप्रज़ेन्ट्ज़ दि माइक्रोस्पिक माइनॉरिटी इन इण्डिया।

कांग्रेस के अनेक सदस्यों ने सरकार के श्रमिकों की सुरक्षा हेतु उठाए गए कदमों का केवल इसलिए विरोध किया था क्योंकि उनके स्वयं के हित नवोदित भारतीय उद्योग से जुड़े हुए थे। कैम्ब्रिज स्कूल के इतिहासकार कांग्रेस को एक राष्ट्रवादी राजनीतिक दल नहीं अपितु इसे महत्वाकांक्षी, सत्ता लोलुप मध्यवर्गीयों का आन्दोलन मानते हैं।

3.4.2 सरकार की अन्यायपूर्ण नीतियों में बदलाव लाने में कांग्रेस की असफलता

सरकार की नीतियों को बदलने में अथवा उसकी शोषक प्रकृति बदलने में कांग्रेस को बहुत कम सफलता मिली। भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करने की दिशा में सरकार ने कछुए की गति से भी धीमा रुख अपनाया। सरकार ने 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में विधानपरिषदों में चुनाव की प्रक्रिया षुरू की जाने वाली भारतीयों की मांग को स्वीकार नहीं किया। इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का आयोजन इंग्लैण्ड के साथ-साथ भारत में नहीं किया गया। उच्च सेवाओं में भारतीयों की संख्या नगण्य ही रही। सरकार प्रशासनिक तथा सैनिक अपव्यय में पूर्ववत लिप्त रही। होमचार्ज बढ़ता ही रहा और भारत से धन का दोहन भी पूर्ववत जारी रहा। भारतीय उद्योग को संरक्षण दिला पाने में कांग्रेस नाकाम रही और ब्रिटिश भारतीय सरकार अभी भी ब्रिटेन के उद्योगपतियों के इशारों पर नाचती रही। कांग्रेस सरकार की रंगभेदी व जातिभेदी नीतियों में बदलाव लाने में भी असफल रही।

3.4.3 प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उपलब्धियां

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। इसके द्वारा पारित प्रस्तावों का जनता में व्यापक प्रसार-प्रचार किया गया। समाचार पत्रों ने इस संगठन का स्वागत किया। इंग्लैण्ड में भारतीयों की समस्याओं को उठाने में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व विलियम वैडरबर्न, चार्ल्स ब्रैडला तथा जॉन डिग्बी ने किया। धर्मनिर्पेक्ष, अहिंसक राजनीतिक आन्दोलन का सूत्रपात करने के साथ-साथ कांग्रेस के प्रथम चरण के नेताओं ने भारतीयों को एकसूत्र में बांधने का सराहनीय कार्य भी किया। आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में उनका अभूतपूर्व योगदान था। उन्होंने व्यक्ति स्वातन्त्र्य तथा सामाजिक समानता की महत्ता को जन-जन तक पहुंचाया, समाज सुधार हेतु 'नेशनल सोशल कॉन्फ्रेन्स' जैसी संस्थाओं को अपना पूर्ण सहयोग दिया। स्वदेशी की भावना का प्रसार-प्रचार करने में भी उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ औद्योगिक प्रदर्शनियों का आयोजन कर उन्होंने भारत की आर्थिक आत्मनिर्भरता की महत्ता को जन-साधारण तक पहुंचाया। कांग्रेस के लगभग सभी प्रारम्भिक नेता पत्रकारिता से सम्बद्ध रहे। निर्भीक तथा प्रतिबद्ध पत्रकारिता के उन्नत मापदण्ड स्थापित करने में भी उन्हें सफलता मिली थी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को हम भारतीय राजनीति का पहला जन-नायक कह सकते हैं। दादा भाई नौरोजी को हम आर्थिक राष्ट्रवाद के जनक के रूप में जानते हैं। कांग्रेस के उग्रवादी नेताओं और महात्मा गांधी जैसे जन-नायकों ने नरमपंथियों से बहुत कुछ सीखा था। महात्मा गांधी को दक्षिण अफ्रीका से भारतीय राजनीति में लाने का श्रेय गोपाल कृष्ण गोखले को जाता है। गांधीजी उन्हें अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के संस्थापक मदन मोहन मालवीय जैसे नरमपंथी भारत में शिक्षा प्रसार में अमूल्य योगदान के लिए आज भी स्तुत्य हैं। अपने प्रारम्भिक चरण में कांग्रेस ने भारतीयों को आवश्यक राजनीतिक प्रशिक्षण प्रदान किया था और भविष्य में होने वाले सक्रिय राजनीतिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए -

1.कांग्रेस के प्रारम्भिक अधिवेशनों में सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना।

2.प्रथम चरण में कांग्रेस से भारतीय मुसलमानों का अलगाव।

3.कांग्रेस के प्रथम चरण में सरकार का उसके प्रति रवैया।

3.5 सारांश

ए0 ओ0 ह्यूम द्वारा स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक धर्मनिर्पेक्ष राजनीतिक संस्था थी। शिक्षित शहरी मध्यवर्ग लोकतान्त्रिक प्रणाली की स्थापना की दिशा में कांग्रेस के प्रयास अधिक सफल नहीं हुए क्योंकि सरकार अपने सुधारवादी मुखौटे को उतारकर जल्द ही एक दमनकारी, स्वार्थी, शोषक और निरंकुश रूप में प्रकट हो गई। राष्ट्रीय एकीकरण के लिए कांग्रेस के प्रथम चरण में सराहनीय कार्य किया गया। कांग्रेस के प्रथम चरण में प्रेस तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की मांग की गई। कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के पृथक्कीकरण की आवश्यकता पर बहुत ज़ोर दिया गया तथा सरकार की नीतियों में रंगभेद व जातिभेद की नीति को पूरी तरह समाप्त किए जाने की मांग बार-बार रखी गई। आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में कांग्रेस का अभूतपूर्व योगदान था। स्वदेशी की भावना का प्रसार-प्रचार करने में भी राष्ट्रीय नेताओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

लॉर्ड डफ़रिन ने कांग्रेस को भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले दल के रूप में मान्यता नहीं दी। सैयद अहमद खान ने मुसलमानों को सलाह दी कि वो कांग्रेस से दूर रहें। सरकार ने सदैव यह प्रयास किया कि मुसलमान, भारतीय रियासतों के शासकगण, ज़मींदार, उद्योगपति आदि कांग्रेस से दूरी बनाए रखें।

कांग्रेस अपने प्रथम चरण में सरकार की अन्यायपूर्ण नीतियों में स्वस्थ बदलाव लाने में निष्फल रही। कांग्रेस के भीतर ही रहते लोकमान्य तिलक तथा उनके सहयोगियों ने यह स्पष्ट किया कि सरकार से सहयोग करते हुए और भीख मांगकर कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता। कांग्रेस अपने प्रथम चरण में मुख्यतः शहरी मध्य वर्ग तक ही सीमित रही और आम आदमी से इसका जुड़ाव नहीं हो सका किन्तु कांग्रेस ने अपने प्रथम चरण में हर अन्याय का साहसपूर्वक प्रतिकार किया, राष्ट्रीय आन्दोलन को एक स्वस्थ दिशा प्रदान कर स्क्रिय राजनीतिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार की, जागरूक व प्रतिबद्ध पत्रकारिता के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया और भारतीयों को आवश्यक राजनीतिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराया।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

व्यक्ति स्वातन्त्र्यः नागरिक अधिकारों की रक्षा अर्थात् कानून के दायरे में रहते हुए कुछ भी करने अथवा कहने की स्वतन्त्रता।

आकण्ठः गले तक

क़ौमः जाति, देशवासी।

हुक्कामः अधिकारी गण।

धर्मनिर्पेक्षः धर्म से परे अर्थात् धर्म के बन्धनों से हटकर।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.देखिए 2.3.4 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

2.देखिए 2..3.5 कांग्रेस के प्रथम चरण में उसके प्रति मुसलमानों का दृष्टिकोण

3.देखिए 2..3.6 कांग्रेस के प्रति भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश जनता का रवैया

3. 8. सन्दर्भ ग्रंथ सूची

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)-ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा, (भाग 1 व 2), बम्बई, 1965

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984

चन्द्रा, बिपन - दि राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इकानॉमिक नेषनलिज़्म इन इण्डियानई दिल्ली, 1965

बनर्जी, एस0 एन0 - नेशन इन मेकिंग, कलकत्ता, 1915

नटेसन, जी0 ए0 (प्रकाषक) - इण्डियन नेशनल कांग्रेस, मद्रास, 1917

3.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

नौरोजी, दादाभाई - पॉवर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, लन्दन, 1902

घोष, पी0 सी0 - दि डवलपमेन्ट ऑफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, कलकत्ता, 1960

सीतारमैया, पी0 - दि हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, बम्बई, 1946

नन्दा, बी0 आर0 - गोखले, दि इण्डियन मॉडरेट्स एण्ड दि ब्रिटिश राज, दिल्ली, 1977

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में नरमपंथियों के योगदान का आकलन कीजिए।

2.कांग्रेस के प्रथम चरण में उसकी उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई चार

गांधीजी का प्रारम्भिक राजनीतिक जीवन

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 गांधीजी का दक्षिण अफ्रीका का प्रवास

4.3.1 गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका आगमन के समय वहां के प्रवासी भारतीयों की दशा

4.3.2 अन्याय के प्रतिकार हेतु गांधीजी का अभियान

4.3.3 दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधीजी का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा उसके प्रमुख नेताओं से सम्बन्ध

4.3.4 गांधीजी की विचारधारा पर गीता तथा पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव

4.3.4.1 गांधीजी की विचारधारा पर गीता तथा अन्य भारतीय धर्मग्रंथों का प्रभाव

4.3.4.2 गांधीजी की विचारधारा पर पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव

4.3.5 इण्डियन ओपिनियन

4.3.6 दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के राजनीतिक आन्दोलन

4.3.7 हिन्द स्वराज

4.3.8 गांधीजी का दक्षिण अफ्रीका से भारत के लिए प्रस्थान

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

अपने दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधीजी ने सत्य, अहिंसा और नैतिकता पर आधारित अपने आदर्शवादी राजनीतिक विचारों और राजनीतिक प्रतिरोध हेतु सत्याग्रह की रणनीति का विकास किया था। गांधीजी के चिन्तन पर भगवद् गीता, रस्किन, थरो, एमर्सन तथा टॉल्सटॉय का विशेष प्रभाव पड़ा था। गांधीजी ने सत्य, अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह के अस्त्र के बल पर रंगभेद एवं जातिभेद की पोषक तथा 'रक्त एवं लौह' की नीति का पालन करने वाली दक्षिण अफ्रीका में गोरों की सरकार को अपने दमनकारी कानून रद्द करने के लिए अनेक बार विवश किया। 1909 में उन्होंने 'हिन्द स्वराज' शीर्षक पुस्तिका में अपने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व शैक्षिक विचारों का प्रतिपादन किया।

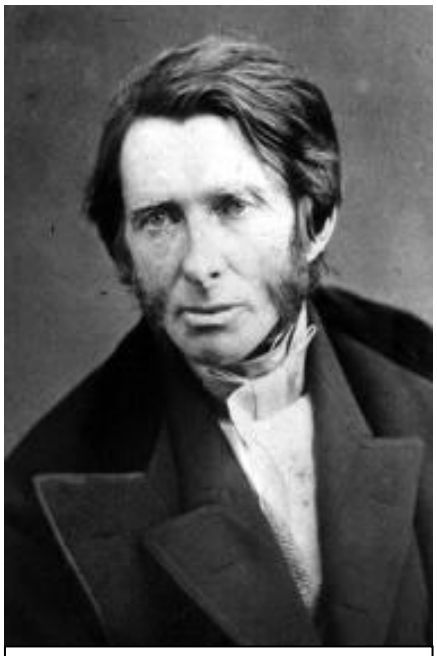

रस्किन बोंड

अपने आन्दोलनों से गांधीजी को अनुबंधित भारतीय मज़दूरों पर लगाए जाने वाले 13 दमनकारी टैक्सों को रद्द कराने में और उनकी भारतीय विधियों से की गई शादियों को मान्यता दिलाने में सफलता प्राप्त की। अपनी विचारधारा का प्रचार करने में और सरकार की दमनकारी नीतियों का खुलासा करने में उन्होंने पत्रकारिता का उपयोग करना दक्षिण अफ्रीका में ही प्रारम्भ किया था।

1914 में गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका छोड़कर भारत वापस लौटने का तथा वहां के राजनीतिक मंच पर प्रवेश करने का निश्चय किया। भारत लौटने से पहले ही गांधीजी वहां एक सफल राजनीतिज्ञ और अहिंसक राजनीतिक आन्दोलन के प्रणेता के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। भारतीय राजनीति का अब एक नया अध्याय प्रारम्भ होने वाला था।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के राजनीतिक विचारों के विकास तथा उनके राजनीतिक आन्दोलनों की जानकारी देना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1. गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका आगमन के समय वहां रह रहे भारतीयों के प्रति दक्षिण अफ्रीका की सरकार की नीति
2. गांधीजी के विचारों पर भारतीय व पाश्चात्य चिन्तन का प्रभाव
3. इण्डियन ओपिनियन पत्र की राजनीतिक चेतना के विकास में भूमिका
4. दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के राजनीतिक आन्दोलन
5. हिन्द स्वराज

4.3 गांधीजी का दक्षिण अफ़्रीका का प्रवास 1.3.1 गांधीजी के दक्षिण अफ़्रीका आगमन के समय वहां के प्रवासी भारतीयों की दशा

इंग्लैण्ड से बैरिस्टर की षिक्षा प्राप्त कर भारत में अपनी वकालत को स्थापित करने में असफल गांधीजी को 1893 में नाटाल के एक भारतीय मूल के व्यापारी दादा अब्दुल्ला ने अपने व्यापारिक अनुष्ठान 'दादा अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी' के मुकद्दमे की पैरवी करने हेतु डरबन बुलाया। गांधीजी डरबन पहुंचे और वहां पहुंचने के कुछ समय बाद ही उन्हें इस बात का व्यक्तिगत अनुभव हो गया कि एक भारतीय के लिए रंगभेदी नीति कितनी अपमानजनक हो सकती है। रेलगाड़ी में डरबन से प्रिटोरिया तक के लिए यात्रा करते समय गांधीजी के पास प्रथम श्रेणी का टिकट होने पर भी एक श्वेत सहयात्री द्वारा एक भारतीय कुली के साथ एक ही डिब्बे में बैठकर यात्रा करने पर आपत्ति करने पर पुलिसकर्मी ने आकर उन्हें सामान वाले डिब्बे में बैठकर यात्रा करने को कहा। गांधीजी द्वारा विरोध करने पर उसने पीटरमैरित्ज़बर्ग स्टेशन पर उन्हें जबरन धक्का देकर उतार दिया और उनका सामान भी प्लेटफ़ार्म पर फेंक दिया। गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है -

मैरित्ज़बर्ग में एक पुलिस कांन्सटेबिल ने मुझे धक्का देकर ट्रेन से बाहर निकाल दिया। ट्रेन चली गई। मैं जाकर विश्रामकक्ष में बैठ गया। मैं ठन्ड से कांप रहा था। मुझे नहीं पता था कि मेरा सामान कहां पर है और न मैं किसी से कुछ पूछने की हिम्मत कर सकता था कि कहीं फिर मेरी बेइज़्ज़ती न हो। नींद का सवाल ही नहीं था। मेरे मन में उथल-पुथल हो रही थी। काफ़ी रात गए मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि भारत वापस भाग जाना कायरता होगी। मैंने जो दायित्व अपने ऊपर लिया है उसे पूरा करना चाहिए।

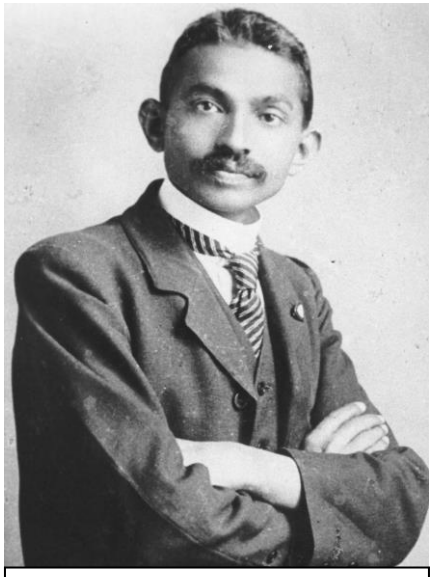

बैरिस्टर मोहनदास करम चन्द गांधी

गांधीजी को होटलों में भारतीय होने के कारण कई बार ठहरने के लिए कमरा नहीं दिया गया और एक बार डरबन कोर्ट में मैजिस्ट्रेट ने उन्हें पगड़ी उतारने का आदेश दिया किन्तु गांधीजी ने मैजिस्ट्रेट के आदेश का पालन करने के स्थान पर कोर्ट छोड़ना उचित समझा।

इन सब घटनाओं के बाद गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका की सरकार द्वारा भारतीयों, चीनियों, अश्वेतों तथा अन्य गैर-यूरोपीय जातियों के निवासियों के साथ अपनाई जाने वाली अन्यायपूर्ण नीतियों की विस्तृत जानकारी प्राप्त की।दक्षिण अफ्रीका में उस समय लगभग दो लाख भारतीय रह रहे थे। इनमें से अधिकांश बंधुआ मज़दूर थे जिनकी कि दशा सबसे दयनीय थी। कुछ स्वतन्त्र मज़दूर थे, कुछ व्यापारी थे और कुछ सरकारी कार्यालयों में कार्यरत क्लर्क व अन्य कर्मचारी थे। खेत बागानों के मालिक भारतीय श्रमिकों के साथ अमानवीय व्यवहार करते थे और उन्हें अर्ध-दासों की स्थिति में रखते थे। भारतीय नागरिक, व्यापारिक एवं सम्पत्ति विषयक अधिकारों से वंचित थे। अपने लिए मानवीय अधिकारों की तो वो कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

सभी भारतीयों को कुली कहकर पुकारा जाता था। गोरों के लिए सुरक्षित पक्के मार्ग पर वो नहीं चल सकते थे। गोरों के साथ वो फुटपाथ पर भी साथ-साथ नहीं चल सकते थे और न ही रात में बिना परमिट लिए कहीं आ-जा सकते थे।

भारतीयों को रेलगाड़ियों में प्रथम व द्वितीय श्रेणी में यात्रा करने का अधिकार नहीं था। अक्सर उन्हें डिब्बे में खड़े होकर या रेलगाड़ी के पांवदान पर खड़े होकर यात्रा करनी पड़ती थी। यूरोपियनों के लिए आरक्षित होटलों में भारतीयों को प्रवेश करने तक की अनुमति नहीं थी। ट्रांसवाल में भारतीयों को रहने के लिए तथा अपनी व्यापारिक गतिविधियां संचालित करने के लिए सबसे गंदा और स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त हानिकारक क्षेत्र उपलब्ध कराया गया था जहां पर न तो पानी की और न उसके निकास समुचित व्यवस्था थी और न ही हवा व रौशनी की पर्याप्त व्यवस्था थी।

पूर्व अनुबंधित मज़दूरों को अनुबंधन से मुक्ति प्राप्त करने के बाद 3 पॉण्ड वार्षिक मतगणना कर देना होता था।

4.3.2 अन्याय के प्रतिकार हेतु गांधीजी का अभियान

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों की दीन दशा को सुधारने का संकल्प लिया और जागरूक भारतीयों के साथ मिलकर 1894 में 'नाटाल इण्डियन कांग्रेस' की स्थापना में अपना सहयोग दिया। उन्हें इस संस्था का फ़र्स्ट ऑनरेरी सेक्रेटरी बनाया गया।

गांधीजी ने भारतीयों को मताधिकार दिलाए जाने के लिए ब्रिटिश कोलोनियल सेक्रेटरी जोसेफ़ चेम्बरलेन को स्मरण पत्र भेजा। गांधीजी द्वारा सरकार द्वारा तथा गोरों द्वारा अमानवीय रंगभेदी एवं जातिभेदी नीतियों के विरोध से नाराज़ होकर 1897 में डरबन में गांधीजी पर गोरों की भीड़ ने हमला कर दिया। पुलिस अधीक्षक की पत्नी की सहायता जान बचाकर निकलने में वो सफल हुए किन्तु उन्होंने गांधीजी द्वारा हमलावरों के खिलाफ़ कानूनी कार्रवाही करने से इंकार कर दिया।

अपनी अगली भारत यात्रा में गांधीजी ने क्वेटा में आयोजित कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया और इस अधिवेशन में उन्होंने दखिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों की स्थिति में सुधार लाए जाने के लिए एक प्रस्ताव रखा।

बोअर युद्ध के दौरान गांधीजी के नेतृत्व में 1899 में घायलों की सेवार्थ 1100 भारतीय स्वयंसेवकों के 'एम्बुलेन्स कोर्प्स' का गठन हुआ। जनरल रैडवर्स बुलर द्वारा भारतीय स्वयं सेवकों की निःस्वार्थ सेवा-भावना तथा उनके साहस व धैर्य की प्रशंसा की गई। गांधीजी सहित 37 लोगों को वार मैडिल मिले। 1904 में ब्यूबोनिक प्लेग फैलने पर कुलियों की बस्ती में गांधीजी और उनके सहयोगियों ने जाकर रोगियों का उपचार किया। 1906 में जूलू-विद्रोह के दौरान भी गांधीजी के 'एम्बुलेन्स कोर्प्स' ने अपनी निःस्वार्थ सेवा का परिचय दिया।

4.3.3 दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधीजी का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा उसके प्रमुख नेताओं से सम्बन्ध

गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति से सदैव जुड़े रहे। अपने भारत दौरों में उन्होंने शीर्षस्थ राष्ट्रीय नेताओं से मिलने का प्रयास किया। गोपाल कृष्ण गोखले से गांधीजी की पहली भेंट 12 अक्टूबर, 1896 को हुई थी। अपनी आत्मकथा में गांधीजी ने इसका उल्लेख किया है। 1901 में गांधीजी ने कलकत्ते में कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया था। वहां उन्होंने गोखले के समर्थन से दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों की दयनीय दशा सुधारने हेतु एक प्रस्ताव रखा था। गोपाल कृष्ण गोखले ने गांधीजी की राजनीतिक विचारधारा को अत्यधिक प्रभावित किया था और उनकी प्रेरणा से ही उन्होंने दक्षिण अफ्रीका को हमेशा के लिए छोड़कर भारत में रहकर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रवेश किया था। गांधीजी ने निर्मल गंगा के समान सबको अपनी धारा में समा लेने की क्षमता रखने वाले गोखले को अपना राजनीतिक गुरु माना है।

गांधीजी कांग्रेस के नरमपंथी नेता फ़िरोज़शाह मेहता को हिमालय के समान ऊंचे व्यक्तित्व वाला मानते थे। दादा भाई नौरोजी तथा रमेश चन्द्र दत्त के आर्थिक राष्ट्रवाद ने उनके आर्थिक विचारों को प्रभावित किया था। लोकमान्य तिलक गांधीजी को महासागर की भांति अथाह लगे थे। तिलक के उग्रवादी विचारों से उनका मतभेद था किन्तु वह उनकी उत्कट देशभक्ति के प्रषंसक थे। इण्डियन ओपिनियन के 1 अगस्त, 1908 के अंक में लोकमान्य तिलक के माण्डले के लिए 6 साल के निर्वासन पर गांधीजी ने लिखा था -

जेल जाना अपमान की नहीं अपितु सम्मान की बात है। हमको अंग्रेज़ों के हाथों कभी न्याय नहीं मिलने वाला। यह अपने मीठे वादों की छुरी से हमको हलाल करती है पर हमको इसके धोखे में नहीं आना चाहिए। महान देशभक्त तिलक का 6 साल का निर्वासन अत्यन्त भयानक है किन्तु हमको इसका शोक नहीं मनाना चाहिए क्योंकि अंग्रेज़ सरकार से हमको ऐसे ही कृत्य की अपेक्षा थी।

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में किए जा रहे अपने आन्दोलनों से भारतीयों को निरन्तर अवगत कराया तथा उनकी सफलता के लिए उनसे समर्थन की अपेक्षा भी की। 1909 में लिखित गांधीजी के ग्रंथ हिन्द स्वराज में समकालीन भारतीय राजनीतिक विचारधाराओं पर उनकी गहरी समझ के दर्शन होते हैं।

4.3.4 गांधीजी की विचारधारा पर गीता तथा पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव

4.3.4.1 गांधीजी की विचारधारा पर गीता तथा अन्य भारतीय धर्मग्रंथों का प्रभाव

संस्कृत भाषा में निष्णात न होने के कारण गांधीजी ने बी साल की आयु तक भगवद् गीता का अध्ययन नहीं किया था। 1888-89 के दौरान इंग्लैण्ड में उन्होंने एडविन एर्नोल्ड द्वारा भगवद् गीता के अंग्रेज़ी में किए गए अनुवाद का अध्ययन किया और तभी से गीता उनके जीवन के लिए आध्यात्मिक शब्दकोश बन गई। गीता के निष्काम कर्म तथा कर्मयोग का गांधीजी के विचारों तथा उनकी जीवन-शैली पर गहरा प्रभाव पड़ा था। निजी कष्टों के प्रति विरक्ति का भाव रखने की क्षमता का विकास भी गांधीजी ने भगवद् गीता से ही सीखा था।

गांधीजी ने अपने चिन्तन पर उपनिषदों के प्रभाव को स्वीकार किया है। जैन एवं बौद्ध धर्म के अहिंसा के सन्देश को उन्होंने अपने जीवन में उतारा था। राम-राज्य की परिकल्पना के विकास तथा अपने वसुधैव कुटुम्बकम के उदार दृष्टिकोण के लिए गांधीजी भारतीय दार्शनिक एवं धार्मिक ग्रंथों के ऋणी थे।

4.3.4.2 गांधीजी की विचारधारा पर पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव

गांधीजी के आर्थिक दृष्टिकोण पर सबसे अधिक प्रभाव जॉन रस्किन की पुस्तक अन टु दि लास्ट का पड़ा था। ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त उन्होंने इसी पुस्तक से ग्रहण किया था। मालिक और कर्मचारी के मध्य सम्बन्ध, आर्थिक समानता की अवधारणा, आधुनिक तकनीक के प्रयोग, तथा भातृत्व की भावना विषयक उनके विचार भी रस्किन की विचारधारा से प्रभावित थे। 25 अगस्त, 1946 के हरिजन में गांधीजी ने लिखा था-

'यदि मनुष्य को प्रगति करनी है और समानता व भातृत्व की भावना के लक्ष्य को प्राप्त करना है तो उसे अन टु दि लास्ट में दिए गए सिद्धान्तों का अनुपालन करना होगा।'

जॉन रस्किन ने सत्ता प्राप्ति के लिए धन के दुरुपयोग की भर्त्सना की थी और गांधीजी ने धनवानों से यह अपेक्षा की थी कि वे अपने धन का उपयोग मानव जाति के कल्याण हेतु करें न कि अधिक से अधिक लोगों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में।

लियो टॉल्सटॉय ने नैतिकता, सत्य और अहिंसा को मनुष्य के उत्थान के लिए नितान्त आवश्यक बताया था। गांधीजी की विचारधारा पर टॉल्सटॉय की पुस्तक दि किंगडम ऑफ़ गॉड इज़ विदिन यू का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। इस पुस्तक में टॉल्सटॉय ने अहिंसा की महत्ता को दर्शाया है और यह सन्देश दिया है कि अन्यायी की हिंसा का प्रतिकार अहिंसा से और पशु-बल का सामना नैतिक बल से करना चाहिए। टॉल्सटॉय की ही भांति गांधीजी का व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा में विश्वास नहीं था और वह संसाधनों का उपयोग मानव कल्याण के निमित्त किया जाना श्रेयस्कर समझते थे। गांधीजी ने सादगी भरा नैतिकतापूर्ण जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा भी टॉल्सटॉय से प्राप्त की थी। ब्रह्मचर्य की महत्ता का पाठ भी उन्होंने टॉल्सटॉय के विचारों में पढ़ा था। 1906 गांधीजी ने व्यक्तिगत जीवन में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का निश्चय किया।

टॉल्सटॉय का सन्देश था - ***बैक टु दि लैण्ड***

सादगी भरे, छल-कपट से दूर, आत्मनिर्भर ग्रामीण जीवन के प्रति उनके हृदय में अपार श्रद्धा थी। गांधीजी के ग्राम्य-विकास एवं ग्राम-स्वराज्य विषयक विचारों पर टॉल्सटॉय के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था। टॉल्सटॉय के जीवन दर्शन को अपनाने के लिए गांधीजी ने 1910 में टॉल्सटॉय फ़ार्म की स्थापना की थी।

हेनरी डेविड थरो को अमेरिका में दास प्रथा के उन्मूलन की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने का श्रेय दिया जाता है। उनकी पुस्तक सिविल डिस-ओबिडियेन्स के राजनीतिक दर्शन का गांधीजी की राजनीतिक विचारधारा व रणनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा था। थरो को उन्होंने अपने राजनीतिक मार्गदर्शकों में महत्वपूर्ण स्थान दिया था। 1906 में 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट' के विरुद्ध आन्दोलन करते समय उन्होंने थरो की सविनय अवज्ञा की रणनीति का

अनुगमन किया था। 1907 में उन्होंने अपने पत्र इण्डियन ओपिनियन में थरो के विचारों का प्रकाशन किया था। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भी गांधीजी ने सिविल डिस-ओबिडियेन्स के सन्देश का सदैव निष्ठापूर्वक अनुगमन किया था। अन्याय के विरुद्ध शान्तिपूर्ण प्रतिरोध की रणनीति का विकास करने में गांधीजी ने थरो के प्रभाव को स्वीकार किया था।

एमर्सन की भांति गांधीजी शिक्षा का उद्देश्य किताबी ज्ञान नहीं अपितु चरित्र निर्माण मानते थे। एमर्सन के विचार से शिक्षा का लक्ष्य किताबी ज्ञान अर्जित कराना नहीं अपितु अपने कर्तव्यों का बोध कराना है। गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में 'एमर्सन क्लब' से सम्बद्ध रहे। गांधीजी 'लन्दन एमर्सन क्लब' के भी सदस्य रहे। एमर्सन का कथन है -

अपने धर्म की अपने कर्मों में अभिव्यक्ति दो।

तथा

अपने जीवन में सत्य का प्रयोग करके ही तुम सत्य के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त कर सकते हो।

गांधीजी की आत्मकथा माय एक्सपेरीमेन्ट्स विद ट्रुथ पर एमर्सन के विचारों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

4.3.5 इण्डियन ओपिनियन

गांधीजी की दृष्टि में पत्रकारिता को समाजसेवा तथा मानव-कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए था। धनोपार्जन अथवा सत्ता-प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर की जाने वाली पत्रकारिता उनके विचार से निन्दनीय थी। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता में गांधीजी का अटूट विश्वास था। किसी भी सभ्य देश के लिए प्रेस की स्वतन्त्रता उनकी दृष्टि में एक ऐसी अमूल्य निधि थी जिसको खो जाने से उस देश को पहुंचने वाली हानि का हिसाब भी नहीं लगाया जा सकता था।

दक्षिण अफ्रीका के यूरोपीय समुदाय को वहां रह रहे भारतीयों की समस्याओं, आवश्यकताओं तथा उनके मुद्दों से परिचित कराने के उद्देश्य से अपने मुवक्किलों, प्रतिष्ठित भारतीयों तथा 'नाटाल इण्डियन कांग्रेस' के सहयोग से नाटाल में 6 जून, 1903 को मनसुख लाल नज़र के सम्पादन में गुजराती, तमिल, हिन्दी और अंग्रेज़ी में गांधीजी ने इण्डियन ओपिनियन का प्रकाशन प्रारम्भ किया। बाद में मात्र गुजराती और अंग्रेज़ी में इसका प्रकाशन किया जाने लगा। 1904 में डरबन के निकट स्थित फ़ीनिक्स फ़ार्म से इसका प्रकाशन किया जाने लगा।

प्रारम्भ में इण्डियन ओपिनियन ने ब्रिटिश कानून के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए कृषि फ़ार्मों में बंधुआ मज़दूरों की दुर्दशा, उनके द्वारा की गई आत्महत्याओं की वारदातों और उनके मालिकों के उन पर अमानवीय अत्याचारों का खुलासा किया जाता था। 1906 से यह पत्र सरकार की दमनकारी रंगभेदी, जातिभेदी नीतियों का खुलकर विरोध करने लगा और एशियन जातियों के लिए बनाए गए अन्यायपूर्ण रजिस्ट्रेशन कानून के विरुद्ध आन्दोलन का मुख्य स्वर बन गया। ब्रायन गैब्रील ने इसके फ़ोटोग्राफर तथा हेनरी पोलाक ने इसके सम्पादक के रूप में इस पत्र को दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों के राजनीतिक आन्दोलन का सबसे प्रामाणिक दस्तावेज़ बना दिया। 1906 से 1913 तक इसने भारतीयों के सत्याग्रह का जीवन्त चित्रण किया। अपने पत्र इण्डियन ओपिनियन के विषय में गांधीजी ने कहा था -

'इण्डियन ओपिनियन मेरे जीवन का अभिन्न अंग था। इसके पन्नों में अपनी आत्मा की पुकार और सत्याग्रह के सिद्धान्त डाल देता था। अपने सिद्धान्तों के क्रियान्वयन की विस्तृत सूचना भी मैं इसी पत्र के माध्यम से देता था। इण्डियन ओपिनियन के बिना सत्याग्रह असम्भव था। इस पत्र ने मुझे आत्म-संयम का प्रशिक्षण दिया था।'

इण्डियन ओपिनियन ने स्थानीय भारतीय आन्दोलनकारियों में साहस, त्याग और बलिदान की भावना का विकास किया और अन्ततः रंगभेदी व जातिभेदी रजिस्ट्रेशन कानून को रद्द करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

4.3.6 दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के राजनीतिक आन्दोलन

गांधीजी ने 1904 में नाटाल में फ़ीनिक्स फ़ार्म की स्थापना की। इसी फ़ार्म से इण्डियन ओपिनियन का अंग्रेज़ी और गुजराती में प्रकाशन किया गया।

नैटाल की सरकार ने एक ऐसा विधेयक प्रस्तावित किया जो कि प्रवासी भारतीयों से मताधिकार वापस ले सकता था। इस स्थिति में गांधीजी ने अन्याय का प्रतिकार करने का निश्चय किया।

1906 में 11 सितम्बर को ट्रांसवाल में 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट' के अन्तर्गत आठ वर्ष से अधिक आयु के सभी भारतीयों के लिए अपने अंगूठे के निशान वाले जातिभेदी पास रखने की अनिवार्यता के विरोध में गांधीजी द्वारा जोहेन्सबर्ग के एम्पायर थियेटर में आयोजित सभा में 3000 भारतीय सम्मिलित हुए। इस सभा में गांधीजी ने कहा -

हम जैसे लोगों के लिए बस एक ही रास्ता है, हम मर सकते हैं पर ऐसे कानून के सामने घुटने नहीं टेकेंगे। अगर और लोग पीछे हट भी गए तो मैं अकेला रह कर भी इस अन्याय के खिलाफ़ अपनी लड़ाई जारी रक्खूंगा।

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के नेतृत्व में प्रथम सत्याग्रह का प्रारम्भ किया गया। गांधीजी ने 'पैसिव रेज़िज़टेन्स ऐसोसियेशन' का गठन किया। इस संगठन ने भारतीयों से अपील की कि वो रजिस्ट्रेशन अर्थात् पंजीकरण कार्यालयों का बहिष्कार करें। ट्रांसवाल सरकार द्वारा इस आन्दोलन को तोड़ने के अथक प्रयासों के बाद भी भारतीय मूल के मुट्ठी भर नागरिक (30 नवम्बर, 1907 तक मात्र 519) ही अपना पंजीकरण कराने रजिस्ट्रेशन कार्यालय पहुंचे। गांधीजी को पंजीकरण विधेयक का विरोध करने के आरोप में 2 माह का कारावास भी दिया गया। गांधीजी 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट' को रद्द कराने में इंग्लैण्ड की सरकार की मदद लेने के उद्देश्य से लन्दन गए। इस जातिभेदी कानून का वापस ले लिया गया किन्तु 1907 में ट्रांसवाल में स्वशासन की स्थापना के बाद इसे फिर से लागू कर दिया गया।

विडम्बना यह थी कि दक्षिण अफ्रीका में एक ओर ब्रिटिश साम्राज्य के आधीन रहकर भी श्वेत समुदाय द्वारा स्वशासन के लिए संघर्ष किया जा रहा था तो दूसरी ओर भारतीयों, चीनियों, अश्वेतों तथा अन्य समुदायों के लिए किसी भी प्रकार के अधिकार की बात उठाना तक अपराध माना जा रहा था।

1908 में 16 अगस्त और फिर 23 अगस्त को हमीद मस्जिद के सामने 3000 सत्याग्रहियों द्वारा जातिभेदी एवं अपमानजनक रजिस्टे"शन सर्टिफ़िकेट्स जलाए गए। 2000 से अधिक आन्दोलनकारियों को जेल में डाला गया।

गांधीजी ने चीनी नेता ल्युंग क्विन के साथ मिलकर आन्दोलन जारी रखा। अन्त में ल्युंग क्विन तथा गांधीजी का जनरल स्मट्ज़ से समझौता हो गया। जनरल स्मट्ज़ ने अपना वादा तोड़ दिया और एक बार फिर गांधीजी तथा उनके सहयोगियों ने इस अन्यायपूर्ण कानून के विरुद्ध अपना संघर्ष प्रारम्भ कर दिया।

1910 में गांधीजी ने कैद किए गए आन्दोलनकारियों के परिवारों के भरण-पोषण हेतु टॉल्सटॉय फ़ार्म की स्थापना की। इस फ़ार्म में सामुदायिक जीवन तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए फ़ार्म में रहने वालों को प्रषिक्षण दिया गया।

1912 में गोपाल कृष्ण गोखले दक्षिण अफ्रीका पहुंचे जहां उन्होंने गांधीजी के आन्दोलन को भरपूर समर्थन दिया। गोखले के कहने पर गांधीजी के आन्दोलन में पीयर्सन तथा सी0 एफ़0 एन्ड्रूज़ शामिल हुए।

13 अक्टूबर, 1913 को पूर्व अनुबंधित भारतीयों पर 3 पॉन्ड वार्षिक टैक्स लगाए जाने के विरोध में डरबन/जोहनेसबर्ग रेल्वे लाइन पर 29 अक्टूबर 2000 से अधिक मज़दूरों, खानकर्मियों की हड़ताल हुई। जनरल स्मट्ज़ का हडताल कुचलने का प्रयास निष्फल हुआ। मिलों, होटलों, जलपान गृहों में कार्यरत भारतीय कर्मचारियों की हड़ताल के कारण इन सबके कामकाज में बाधा पहुंची तथा घरेलू भारतीय नौकरों के भी हड़ताल में षामिल होने की वजह से गोरों के घरों का कामकाज भी ठप्प पड़ गया। मजबूर होकर सरकार ने हड़तालियों के साथ समझौते की वार्ता प्रारम्भ कर दी और अन्ततः पूर्व अनुबंधित भारतीयों पर 3 पॉण्ड के वार्षिक टैक्स लगाए जाने के कानून को रद्द कर दिया गया।

1913 में ही दक्षिण अफ्रीका के सुप्रीम कोर्ट द्वारा गैर-ईसाई विधियों (हिन्दू, मुस्लिम, पारसी आदि) से किए गए विवाहों को अमान्य घोषित कर दिया गया। भारतीयों के लिए अपने विवाहों का पंजीकरण कराना भी आवश्यक हो गया। इस प्रकार गैर पंजीकृत व अमान्य विवाहों से उत्पन्न सन्तानें भी स्वतः अवैध हो जातीं। गांधीजी ने इस अन्यायपूर्ण फ़ैसले के विरुद्ध अपील की परन्तु सरकार ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। विवश होकर गांधीजी ने 6 नवम्बर, 1913 को इस जातिभेदी कानून के विरुद्ध सत्याग्रह यात्रा का नेतृत्व कर ट्रांसवाल की सीमा को पार किया। उनके साथ 127 स्त्रियां, 57 बच्चे और 237 पुरुष आन्दोलनकारी थे। गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया परन्तु आन्दोलन पूर्ववत निर्बाध जारी रहा। गोपाल कृष्ण गोखले ने गांधीजी के इस आन्दोलन के समर्थन में भारत भर में भ्रमण कर उनके आन्दोलन के लिए धन एकत्र किया। गांधीजी को भारतीय व्यापारियों, उद्योगपतियों तथा भारतीय शासकों से अपने आन्दोलन हेतु आर्थिक सहायता भी प्राप्त हुई। भारत के वाइसराय लॉर्ड हार्डिंज ने भारतीयों पर दक्षिण अफ्रीका की सरकार द्वारा किए जा रहे तथाकथित अत्याचारों की निष्पक्ष जांच कराए जाने की मांग की। लॉर्ड हार्डिंज के इस कदम की लन्दन और प्रेटोरिया में आलोचना भी की गई परन्तु इस जातिभेदी व रंगभेदी अन्यायपूर्ण फ़ैसले पर पुनर्विचार करने के लिए अब अनुकूल समय आ गया था। अन्ततः जनरल स्मट्ज़ को आन्दोलनकारियों से समझौते की बात करनी पड़ी। अपने अनुबंध से मुक्त हो चुके स्वतन्त्र मज़दूरों पर से 3 पॉण्ड वार्षिक का मतगणना कर हटा लिया गया। भारतीय विधियों (गैर ईसाई विवाह विधियां जैसे हिन्दू, मुस्लिम, पारसी विवाह विधियां आदि) से किए गए विवाहों को मान्यता दे दी गई। अब दक्षिण अफ्रीका आने के लिए केवल आदिवासी प्रमाणपत्र पर अंगूठे का निशान लिया जाना आवश्यक रह गया।

गांधीजी ने अपने 21 वर्षीय दक्षिण अफ्रीका प्रवास में सत्य, अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह के अस्त्र के बल पर रंगभेद एवं जातिभेद की पोषक तथा 'रक्त एवं लौह' की नीति का पालन करने वाली गोरों की सरकार को अपने दमनकारी कानून रद्द करने के लिए अनेक बार विवश किया। अपनी विचारधारा का प्रचार करने में और सरकार की दमनकारी नीतियों का खुलासा करने में उन्होंने पत्रकारिता का उपयोग करना दक्षिण अफ्रीका में ही प्रारम्भ किया था। राजनीतिक आन्दोलनों में बच्चों और स्त्रियों सहित आम आदमी की सहभागिता के महत्व को भी उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में ही जाना था। ग्राम्य-विकास की महत्ता को भी उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में ही जाना था। गांधीजी ने साम्प्रदायिक एकता व सामुदायिक एकता को राष्ट्रीय एकता व संगठित राजनीतिक आन्दोलन की आवश्यक शर्त मान लिया था। किसी क्षेत्र विशेष अथवा समुदाय विशेष के हितों लिए संघर्ष करने के स्थान पर उनका जीवन सभी क्षेत्रों के समस्त समुदायों के निवासियों के कल्याण हेतु समर्पित था। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए ही गांधीजी ने अपना मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित किया था। सर्व-धर्म सम्भाव, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की भावना का विकास भी उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में रहकर ही किया था।

4.3.7 हिन्द स्वराज

1909 में 13 नवम्बर से 22 नवम्बर के मध्य गांधीजी ने एस0एस0 किल्डोनान कैसल नामक जहाज में इंग्लैण्ड से केपटाउन जाते समय गुजराती भाषा में महान दार्शनिक प्लैटो की पुस्तक रिपब्लिक में अपनाई गई प्रश्नोत्तर शैली (प्रश्नकर्ता- डॉक्टर प्रान्जीवन मेहता तथा उत्तरदाता - गांधीजी) में इस लघु पुस्तिका को लिखा था। मूल गुजराती पुस्तिका पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगाए जाने के कारण गांधीजी ने स्वयं अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद कर सर्वप्रथम इसका क्रमबद्ध प्रकाशन अपने पत्र इण्डियन ओपिनियन में कराया था। यह पुस्तिका 20 अध्यायों तथा 2 परिशिष्टों में विभक्त है। इस पुस्तिका में कांग्रेस, कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता, बंगाल विभाजन, स्वराज की परिभाषा, इंग्लैण्ड की दशा, पाश्चात्य सभ्यता, भारत की दशा, सच्ची सभ्यता, भारत की स्वतन्त्रता का मार्ग, इटली और भारत, विस्फोटक सामग्री, सत्याग्रह, आत्मबल, शिक्षा, मशीनीकरण, मुक्ति और हिन्द स्वराज की चर्चा की गई है। अतिरिक्त जानकारी प्राप्त करने के लिए गांधीजी ने इस पुस्तिका में अपने पाठकों को प्लैटो, हैनरी डेविड थरो, एमर्सन, जॉन रस्किन, मेज़िनी, लियो टॉल्सटॉय, दादा भाई नौरोजी तथा आर0 सी0 दत्त के विचारों का अध्ययन करने की सलाह दी है।

ईश्वरहीन, नैतिक मूल्यों से सर्वथा वंचित पूंजीवादी एवं भौतकतावादी आधुनिक मानव सभ्यता में साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को गांधीजी समर्थ राष्ट्रों के लिए स्वाभाविक मानते हैं। परन्तु भारत की परतन्त्रता के लिए गांधीजी अंग्रेज़ों को नहीं बल्कि नैतिक मूल्यों का परित्याग कर पूंजीवाद की पोषक वैधानिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को अपनाने वाले स्वयं भारतीयों को ही दोषी ठहराते हैं। गांधीजी की दृष्टि में भारतीय अपना कल्याण उसी स्थिति में कर सकते हैं जब कि वे अपने लालच और भोगवादी प्रवृत्ति पर अंकुश लगाकर प्राचीन काल की आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को फिर से अपना लें। उनकी दृष्टि में व्यक्ति का महत्व राजनीतिक संस्थाओं की तुलना में अधिक है। गांधीजी सत्य, अहिंसा और नैतिकता पर आधारित राजनीतिक प्रतिरोध में बड़े से बड़े और समर्थ से समर्थ शासक की दमनकारी नीतियों व व्यवस्थाओं को पलटने की असीमित शक्ति में विश्वास करते हैं।

गांधीजी पाश्चात्य राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक, विधि-परक, सैनिक तथा शैक्षिक संस्थाओं को भारत के लिए अनुपयोगी मानते हैं। उनकी दृष्टि में 'स्वराज' कोई पाश्चात्य राजनीतिक अवधारणा नहीं है अपितु यह अवधारणा मूलतः भारतीय है जिसमें कि शक्ति के विकेन्द्रीकरण और व्यक्तियों तथा समुदाय के माध्यम से स्वशासन की व्यवस्था की जाती है। 'स्वराज' का राजनीतिक अर्थ नैतिक मूल्यों पर आधारित स्वशासन है और इसकी चरम परिणति स्वतन्त्रता में है। इसका आर्थिक अर्थ है - करोड़ों देशवासियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता। 'स्वराज' का सर्वोच्च आदर्श सभी वाह्य नियन्त्रणों से मुक्त हो कर आत्म-संयम रखते हुए स्वशासन प्राप्त कर मुक्ति अथवा मोक्ष पाना है।

4.3.8 गांधीजी का दक्षिण अफ्रीका से भारत के लिए प्रस्थान

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेदी व जातिभेदी गोरी सरकार को अपनी अन्यायपूर्ण नीतियों को बदलने के लिए बाध्य कर अपने राजनीतिक जीवन का प्रथम अध्याय सम्पन्न कर लिया था। गोपालकृष्ण गोखले उन्हें भारतीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने का पहले ही निमन्त्रण दे चुके थे। गांधीजी के लिए अब भारत लौटकर अपने सत्य व अहिंसा के प्रयोगों को व्यापक आधार देना आवश्यक हो गया था। 1914 में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका को सदा के लिए छोड़कर वापस भारत लौटने का निश्चय किया। 1915 के प्रारम्भ में गांधीजी स्वदेश लौटे और वहां पहुंचते ही उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नई जान फूंक दी।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए -

1. गांधीजी के दर्शन पर पाश्चात्य चिन्तकों का प्रभाव।
2. इण्डियन ओपिनियन
3. हिन्द स्वराज

4.5 सारांश

गांधीजी को 1893 में नाटाल के एक भारतीय मूल के व्यापारी दादा अब्दुल्ला ने अपने व्यापारिक अनुष्ठान के मुकद्दमे की पैरवी करने हेतु डरबन बुलाया। गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका की सरकार की रंगभेदी तथा जातिभेदी नीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति से सदैव जुड़े रहे। गोपाल कृष्ण गोखले को गांधीजी ने अपना राजनीतिक गुरु माना।

गीता के निष्काम कर्म तथा कर्मयोग का गांधीजी के विचारों तथा उनकी जीवन-शैली पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

गांधीजी के आर्थिक दृष्टिकोण पर सबसे अधिक प्रभाव जॉन रस्किन की पुस्तक अन टु दि लास्ट का पड़ा था। ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त उन्होंने इसी पुस्तक से ग्रहण किया था।

गांधीजी की विचारधारा पर टॉल्सटॉय की पुस्तक दि किंगडम ऑफ़ गॉड इज़ विदिन यू का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। गांधीजी के अहिंसा, नैतिक बल, ब्रह्मचर्य, ग्राम्य-विकास एवं ग्राम-स्वराज्य विषयक विचारों पर टॉल्सटॉय के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था।

हेनरी डेविड थरो की पुस्तक सिविल डिस-ओबिडियेन्स के राजनीतिक दर्शन का गांधीजी की राजनीतिक विचारधारा व रणनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

एमर्सन की भांति गांधीजी शिक्षा का उद्देश्य किताबी ज्ञान नहीं अपितु चरित्र निर्माण मानते थे।
गांधीजी का पत्र इण्डियन ओपिनियन दक्षिण अफ्रीका की सरकार की दमनकारी रंगभेदी, जातिभेदी नीतियों का खुलकर विरोध करता था।
1906 में 11 सितम्बर को ट्रांसवाल में 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट' के विरोध में गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में प्रथम सत्याग्रह का प्रारम्भ किया। 1908 में भी इस कानून के विरुद्ध आन्दोलन हुआ। 1913 में पूर्व अनुबंधित भारतीयों पर 3 पॉन्ड वार्षिक टैक्स लगाए जाने के विरोध में मज़दूरों, खानकर्मियों, मिलों, होटलों, जलपान गृहों में कार्यरत भारतीय कर्मचारियों तथा गोरों के घरेलू भारतीय नौकरों की हड़ताल हुई। अन्ततः पूर्व अनुबंधित भारतीयों पर 3 पॉण्ड के वार्षिक टैक्स लगाए जाने के कानून को रद्द कर दिया गया। 1913 में ही अनुबंधित भारतीय मज़दूरों के गैर-ईसाई विधियों से किए गए विवाहों को अमान्य घोषित किए जाने पर गांधीजी ने सत्याग्रह यात्रा का नेतृत्व किया।

गांधीजी ने अपने 21 वर्षीय दक्षिण अफ्रीका प्रवास में सत्य, अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह के अस्त्र के बल पर रंगभेद एवं जातिभेद की पोषक तथा 'रक्त एवं लौह' की नीति का पालन करने वाली गोरों की सरकार को अपने दमनकारी कानून रद्द करने के लिए अनेक बार विवश किया।

1909 में लिखित गांधीजी की पुस्तिका हिन्द स्वराज में भारतीय राजनीतिक चर्चा, स्वराज की परिभाषा, इंग्लैण्ड की दशा, पाश्चात्य सभ्यता, भारत की दशा, सच्ची सभ्यता, भारत की स्वतन्त्रता का मार्ग, विस्फोटक सामग्री, सत्याग्रह, आत्मबल, शिक्षा, मशीनीकरण, मुक्ति और हिन्द स्वराज की चर्चा की गई है। गांधीजी सत्य, अहिंसा और नैतिकता पर आधारित राजनीतिक प्रतिरोध से बड़े से बड़े और समर्थ से समर्थ शासक की दमनकारी नीतियों व व्यवस्थाओं को पलटने की असीमित शक्ति में विश्वास करते हैं।

गोपालकृष्ण गोखले गांधीजी को भारतीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने का पहले ही निमन्त्रण दे चुके थे। गांधीजी के लिए अब भारत लौटकर अपने सत्य व अहिंसा के प्रयोगों को व्यापक आधार देना आवश्यक हो गया था। 1914 में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका को सदा के लिए छोड़कर वापस भारत लौटने का निश्चय किया। अन्याय व दमन से पीड़ित भारतीय अपने उद्धार के लिए एक करिश्माई महानायक की प्रतीक्षा में थे और उन्हें वह 1915 में गांधीजी के रूप में प्राप्त हो गया था।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

बैक टु दि लैण्ड - फिर से अपनी ज़मीन, अपने गांवों से जुड़ो
सिविल डिसओबिडियेन्स - सविनय अवज्ञा
निलहे साहब - नील के बागानों के मालिक

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 4.3.4.2 गांधीजी की विचारधारा पर पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव
2. देखिए 4.3.5 इण्डियन ओपिनियन
3. देखिए 4.3.7 हिन्द स्वराज

4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (भाग 3), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फा़र फ्रीडम, बॉम्बे, 1969

चन्द्रा, बिपन - नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली, 1979

चन्द्रा, बिपन तथा अन्य - इण्डियाज़ स्ट्रगल फा़र फ्रीडम, नई दिल्ली, 1988

दत्त, आर0 पी0 - इण्डिया टुडे, कलकत्ता, 1970

सिंह, अयोध्या - भारत का मुक्ति संग्राम, दिल्ली, 1977

4.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गांधी, एम0 के0 - हिन्द स्वराज एण्ड अदर राइटिंग्ज़, कैम्ब्रिज, 1947
2. सील, अनिल - दि एमरजेन्स ऑफ़ इण्डियन नेशनलिज़्म, कैम्ब्रिज, 1968

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका प्रवास की राजनीतिक उपलब्धियों का आकलन कीजिए।

इकाई पाँच

असहयोग आन्दोलन के कारण, रॉलट एक्ट एवं उसका विरोध, जलियांवालाबाग हत्याकाण्ड, चौरी-चौरा काण्ड और आन्दोलन की समाप्ति

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 असहयोग आन्दोलन के कारण

5.3.1 स्वदेशी आन्दोलन से लेकर मान्टेग्यू की घोषणा तक का राजनीतिक घटना चक्र

5.3.2 रॉलट एक्ट एवं उसका विरोध

5.3.3 जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड

5.3.4 खिलाफ़त आन्दोलन

5.4 असहयोग आन्दोलन

5.4.1 असहयोग आन्दोलन के लक्ष्य

5.4.2 असहयोग आन्दोलन का निषेधात्मक एवं सृजनात्मक स्वरूप

5.4.2.1 असहयोग आन्दोलन का निषेधात्मक स्वरूप

5.4.2.2 असहयोग आन्दोलन का सृजनात्मक स्वरूप

5.4.2.3 सरकार द्वारा असहयोग आन्दोलन को कुचलने के प्रयास

5.5 चौरीचौरा काण्ड और आन्दोलन की समाप्ति

5.6 असहयोग आन्दोलन का आकलन

5.7 सारांश

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों द्वारा लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षार्थ युद्ध में भाग लेने के दावे और विश्व युद्ध में भारत के सक्रिय सहयोग के वातावरण में ब्रिटिश सरकार से भारतीयों को स्वशासन अथवा होमरूल दिए जाने की आशा थी और होमरूल आन्दोलन के बाद 1917 की मान्टेग्यू की घोषणा से इसकी आशा भी की जा रही थी किन्तु युद्ध में जीत हासिल करने के बाद इंग्लैण्ड की और ब्रिटिश भारत की सरकार अपने वादों से पलट गई और भारत में राजनीतिक दमन का एक नया दौर प्रारम्भ हो गया। रॉलट एक्ट तथा जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड के बाद भारत में राजनीतिक असन्तोष चरम सीमा पर पहुंच गया।

भारत के अधिकांश मुसलमान तुर्की के सुल्तान को अपना खलीफ़ा मानते थे। विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद उसको अपदस्थ किए जाने की योजना के विरुद्ध भारत में खिलाफ़त आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। गांधीजी ने मुसलमानों को मुख्य राष्ट्रीय धारा में जोड़ने के उद्देश्य से खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में अगस्त 1920 में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया।

असहयोग आन्दोलन की गणना विश्व इतिहास के सबसे बड़े जन-आन्दोलनों में की जाती है। इसका अहिंसक और शान्तिपूर्ण स्वरूप इसे और भी अधिक महत्व प्रदान करता है। इस आन्दोलन में स्वदेशी आन्दोलन की बहिष्कार की रणनीति अपनाते हुए उसके लक्ष्य स्वराज, आर्थिक व शैक्षिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने और राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का प्रयास किया गया था, साथ ही साथ इसमें अस्पृश्यता निवारण, मद्य-निषेध, ग्राम-स्वराज्य और नारी-उत्थान के लक्ष्यों को भी जोड़ दिया गया था।

डेड़ साल तक चले इस आन्दोलन ने सरकार की जड़ें तक हिला दी थीं और विश्व को अहिंसा का मार्ग अपनाते हुए अन्याय का प्रतिकार करना सिखाया था। चौरीचौरा में क्रुद्ध आन्दोलनकारियों द्वारा पुलिसकर्मियों की हत्या की नैतिक ज़िम्मेदारी लेते हुए गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया किन्तु इस आन्दोलन को असफल नहीं कहा जा सकता। इस आन्दोलन से गांधीजी पूरे विश्व में शान्ति और अहिंसा के मसीहा माने गए और अंग्रेज़ों को शान्तिपूर्ण अहिंसात्मक प्रतिरोध की शक्ति के सामने पूरी तरह से तो नहीं तो आंशिक रूप से अवश्य झुकना पड़ा।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि, उसके उद्देश्य, उसके सृजनात्मक एवं निषेधात्मक पक्ष, उसकी व्यापकता, सरकार के दमन चक्र, आन्दोलन के स्थगन तथा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व विश्व इतिहास में असहयोग आन्दोलन की महत्ता पर प्रकाश डालना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1. प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त भारतीयों में अंग्रेज़ों के विश्वासघात के कारण व्याप्त आक्रोश
2. रॉलट एक्ट तथा जलियांवालाबाग हत्याकाण्ड

3. अधिकांश मुसलमानों के खलीफ़ा तुर्की के सुल्तान को अपदस्थ किए जाने के विरोध में भारतीय मुसलमानों द्वारा खिलाफ़त आन्दोलन का प्रारम्भ।
4. खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में तथा रॉलट एक्ट व पंजाब में सरकार के दमन चक्र के विरोध में असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ।
5. असहयोग आन्दोलन लक्ष्य और उसका निषेधात्मक व सृजनात्मक पक्ष।
6. असहयोग आन्दोलन का स्थगन।
7. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व विश्व इतिहास में असहयोग आन्दोलन का महत्व।

5.3 असहयोग आन्दोलन के कारण

5.3.1 स्वदेशी आन्दोलन से लेकर मान्टेग्यू की घोषणा तक का राजनीतिक घटना चक्र

प्रथम अखिल भारतीय राजनीतिक आन्दोलन - स्वदेशी आन्दोलन में बंगाल विभाजन को रद्द कराने के अतिरिक्त स्वशासन, आर्थिक व शैक्षिक आत्मनिर्भरता तथा राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने के लक्ष्य रखे गए थे और इन्हें हासिल करने के लिए आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन में प्रयुक्त बॉयकाट की रणनीति को अपनाया गया था। परवर्ती राजनीतिक आन्दोलनों ने इसके लक्ष्य और इसकी रणनीति को अपनाया। स्वदेशी आन्दोलन को बंगाल विभाजन के अन्यायपूर्ण निर्णय को बदलवाने का बहुत कुछ श्रेय दिया जा सकता है।

कस्तूरबा गांधी

मित्र राज्यों ने प्रथम विश्वयुद्ध में लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षार्थ भाग लेने का दावा किया था। प्रथम विश्वयुद्ध में मित्र राज्यों के सहयोगी के रूप में अपना योगदान देने के कारण भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं में वृद्धि 1916 के होमरूल आन्दोलन के अन्तर्गत श्रीमती एनीबीसेन्ट तथा लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में होमरूल अर्थात् डोमिनियन स्टेटस की मांग के रूप में दिखाई दी।

गांधीजी 1915 में भारत लौटे थे। बिहार में चम्पारन जिले के नील की खेती करने वाले किसानों की दुर्दषा सुधारने के लिए चम्पारन जिले में 1917 में अपना चम्पारन आन्दोलन प्रारम्भ किया। चम्पारन आन्दोलन को व्यापक जन-समर्थन मिलता देख सरकार को झुकना पड़ा। नील के बागानों के मालिकों के किसानों पर किए जाने वाले अत्याचार रोकने के लिए 1917 का 'चम्पारन एग्रेरियन बिल' प्रस्तावित किया गया और दमनकारी तिनकथिया प्रणाली रद्द कर दी गई।

1917-18 में गुजरात के अधिकांश भाग में, विशेषकर अहमदाबाद से 32 किलोमीटर दूर स्थित खेड़ा में भयंकर अकाल पड़ा था। किसानों ने 3 साल की लगान की माफ़ी दिए जाने की प्रार्थना की किन्तु बाम्बे प्रेसीडेन्सी की सरकार द्वारा लगान की माफ़ी की प्रार्थना ठुकरा दी गई अपितु कर में और वृद्धि कर दी गई। गांधीजी इस समय 'गुजरात सभा' के अध्यक्ष थे। 1918 में गुजरात के किसानों के हितों की रक्षार्थ गांधीजी ने खेड़ा सत्याग्रह में प्रवेश

किया किन्तु इसमें उन्होंने मुख्य रूप से मार्गदर्शक की भूमिका निभाई थी। इसके वास्तविक नेता तो सरदार वल्लभ भाई पटेल, रविशंकर व्यास आदि थे।

इस व्यापक आन्दोलन की संगठित शक्ति के सामने सरकार को झुकना पड़ा। वर्तमान वर्ष और अगले साल की लगान माफ़ कर दी गई और कर में की गई बढ़ोत्तरी को स्थगित कर दिया गया। इस सत्याग्रह ने आने वाले समय के बारदोली सत्याग्रह की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

चम्पारन व खेड़ा आन्दोलनों से यह संकेत अवश्य मिल गया कि आने वाले समय में भारतीय राजनीतिक मंच पर गांधीजी की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण होने वाली है।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इंग्लैण्ड और तुर्की के सम्बन्धों में दरार पड़ चुकी थी। तुर्की के सुल्तान की राजसत्ता को कमज़ोर करने की कोशिश तथा मुसलमानों के पवित्र तीर्थस्थलों मक्का, मदीना, येरुशलम आदि की सुरक्षा पर मण्डराते खतरे ने भारतीय मुसलमानों की ब्रिटिश स्वामिभक्ति तथा स्वयं को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से पृथक रखने की नीति के औचित्य पर प्रश्नचिह्न लगा दिया था। इसका फ़ायदा उठाकर कांग्रेस और मुस्लिम लीग को एक राजनीतिक मंच पर लाने के प्रयास तेज़ हो गए। मुहम्मद अली जिन्ना और वज़ीर हसन जैसे मुसलमान भी कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को एक सूत्र में बांधना चाहते थे। यह समय भेदभाव भुलाकर स्वशासन के लक्ष्य को प्राप्त करने का था। 1916 में लखनऊमेंनरमपंथी, गरमदल, होमरूल समर्थक तथा मुस्लिम लीगी एकत्र हुए और उन्होंने सर्वसम्मति से एक निर्णय लिया जिसको लखनऊ समझौते के नाम से जाना जाता है। हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीक इस समझौते में मुसलमानों को प्रांतीय विधानपरिषदों तथा इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल में विशिष्ट प्रतिनिधित्व तथा भारतीयों को स्वशासन प्रदान किए जाने की मांग रखी गई।

प्रथम विश्वयुद्ध में मेसोपोटामिया में ब्रिटिश सेना की तुर्कों से पराजय के बाद भारतीय सहयोग की युद्ध में उपयोगिता को देखते हुए भारत को स्वशासन प्रदान किया जाना भारत सचिव मॉन्टेग्यू ने समय की आवश्यकता बताया। 20 अगस्त, 1917 को उसने ऐतिहासिक घोषणा की जिसमें होमरूल आन्दोलन की स्वशासन की मांग को सरकार को आंशिक रूप से स्वीकार किया गया। इस घोषणा में यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि भारतीयों को स्वशासन कब, कितना और किस प्रकार प्रदान किया जाएगा। आगे चल कर सुधारों के विषय में यही अस्पष्टता भारतीयों के व्यापक असन्तोष का कारण बनी।

5.3.2 रॉलट एक्ट एवं उसका विरोध

मॉन्टेग्यू की घोषणा के तुरन्त बाद विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों का पलड़ा भारी होते देख सरकार ने भारत में राजनीतिक प्रतिरोध को कुचलने के प्रयास प्रारम्भ कर दिए। 10 सितम्बर, 1917 को आतंकवाद के दमन के लिए जस्टिस रॉलट की अध्यक्षता में सेडिशन कमेटी गठित की गई। 1918 में सेडिशन कमेटी की सिफ़ारिशों को प्रकाशित किया गया। भारतीय प्रेस ने इस दमनकारी व्यवस्था को लागू न करने की मांग की परन्तु इन सिफ़ारिशों को 1919 में इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल में रखा गया। इसके गैर सरकारी भारतीय सदस्यों ने एकमत से इन सिफ़ारिशों के आधार पर एक्ट बनाए जाने का विरोध किया। विश्वयुद्ध के दौरान बनाए गए विशेष सुरक्षा कानूनों को उसकी समाप्ति के बाद भी लागू रखना उनकी दृष्टि में भारतीयों के नागरिक अधिकारों का हनन था। रॉलट एक्ट के अंतर्गत

सरकार विरोधी गतिविधियों के शक के आधार पर बिना मुकदमा चलाए किसी को भी गिरफ़्तार किया जा सकता था और उसे दो साल तक के लिए बन्दी बनाया जा सकता था। किसी के पास यदि सरकार विरोधी साहित्य मिले तो उसे गिरफ़्तार किया जा सकता था। पुलिस को शक की बिना पर तलाशी, गिरफ्तारी तथा ज़मानत मांगने के असीमित अधिकार मिल गए। इस दमनकारी कानून के पारित किए जाने के पीछे उन अंग्रेज़ अधिकारियों का हाथ था जो मॉन्टेग्यू की 1917 की घोषणा में भारतीयों को स्वशासन दिए जाने के आश्वासन से तथा 1919 के एक्ट में प्रान्तों में आंशिक रूप से उत्तरदायी शासन स्थापित किए जाने की व्यवस्था से नाराज़ थे।

इस एक्ट का घोर विरोध हुआ क्योंकि इससे पुलिस के हाथों जनता को परेशान करने की खुली छूट मिल रही थी। गांधी जी ने रौलट एक्ट के विरुद्ध फ़रवरी, 1919 में सत्याग्रह सभा का गठन कर देशव्यापी आन्दोलन का आवाहन किया। गांधीजी ने होमरूल लीग तथा मुस्लिम विश्व बंघुत्व की अवधारणा में विश्वास करने वाले (पैन इस्लामिक) दल को अपनी सत्याग्रह सभा के साथ शामिल किया। उन्होंने लखनऊ के फ़िरंगी महल के उलेमा अब्दुल बारी का सहयोग प्राप्त किया। 23 मार्च, 1919 को गांधीजी ने देश-व्यापी हड़ताल का आवाहन किया।

5.3.3 जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद स्वशासन न दिए जाने से निराश जनता सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करने को तत्पर थी। रॉलट एक्ट के पारित होने से जनता का आक्रोश अपने चरम बिन्दु तक पहुंच रहा था। पंजाब का लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर माइकिल ओडवेयर तथा अन्य अंग्रेज़ अधिकारी हिन्दू-मुस्लिम-सिख एकता तथा पंजाब में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध बढ़ते हुए जन-आक्रोश नाराज़ थे। पंजाब के अमृतसर, लाहौर, गुर्जनवाला, गुजरात तथा लायलपुर में रॉलट एक्ट विरोधी आन्दोलन हो रहे थे। 9 अप्रैल, 1919 को रॉलट एक्ट के विरोध में जुलूस का नेत्त्व कर रहे डॉ. सत्य पाल तथा सैफुद्दीन किचलू को गिरफ्तार कर निर्वासित कर दिया गया। 10 अप्रैल को अपना विरोध जताने के लिए डिप्टी कमिश्नर के घर जा रही भीड़ पर पुलिस ने गोली चला दी। 11 अप्रैल, 1919 को माइकिल ओडवेयर ने पंजाब में मार्शल लॉ लगा दिया था परन्तु इसके बाद भी रॉलट एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन जारी रहा। डॉ. सत्य पाल तथा सैफुद्दीन किचलू को रौलट एक्ट का विरोध करने के कारण गिरफ़्तार किए जाने के विरोध में हुई बैसाखी के दिन 13 अप्रैल, 1919 को अमृतसर के जलियांवाला बागमेंजनसभा में उपस्थित निहत्थे आन्दोलनकारियों पर बिना चेतावनी दिए जनरल डायर ने गोलीबारी की जिससे सैकड़ों लोग मारे गए और घायल हो गए। जनरल डायर के सिपाही तब तक भागती भीड़ पर गोलियां बरसाते रहे जब तक कि उनकी गोलियां खत्म नहीं हुईं। बाग की तंग गलियों में भारी फ़ौजी गाड़ी ले जाना कठिन था नहीं तो जनरल डायर भीड़ को इन भारी गाड़ियों से कुचलना भी चाहता था। जनरल डायर

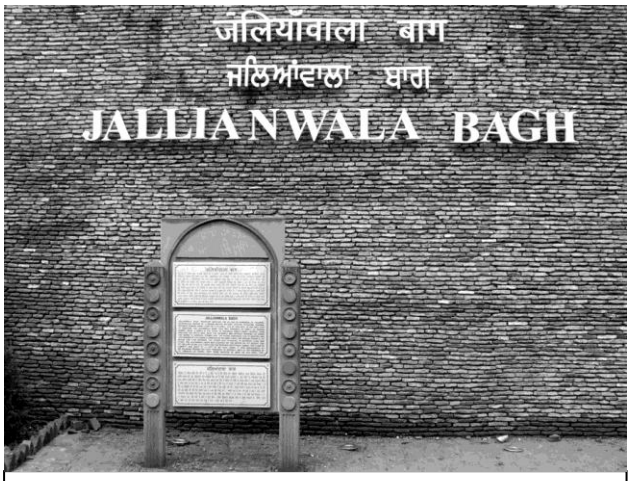

जलियांवाला बाघ

भारतीयों को इस हत्याकाण्ड से सबक देना चाहता था। इस हत्याकांड के बाद भी पुलिस की ज़्यादतियों का दौर चलता रहा। कूचा कूचियानवाला में एक अंग्रेज़ महिला का अपमान करने की सज़ा के तौर पर लोगों को पेट के बल रेंग कर चलने के लिए मजबूर किया गया। भारतीयों को यह पता चल गया कि अंग्रेज़ शासक भारतीयों की राजनीतिक मांगों तथा सरकार की नीतियों के विरोध को कुचलने के लिए अत्याचार की किस सीमा तक जा सकते हैं।

इस निर्मम अत्याचार की खबर अखबारों में नहीं छपने दी गई। सरकार की दमनकारी नीतियों की आलोचना करने एवं उसका विरोध करने पर पूर्ण नियन्त्रण लगाने के लिए ही तो रॉलट एक्ट बनाया गया था। मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी ने जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड को समाचार पत्रो में प्रकाशित न किए जाने के सरकारी आदेश पर कटाक्ष करते हुए कहा था -

हम आह भी भरते हैं तो, हो जाते हैं बदनाम।

वो क़त्ल भी करते हैं तो, चर्चा नहीं होता।।

30 मई, 1919 को जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड के विरोध में रबीन्द्रनाथ टैगोर ने नाइटहुड की उपाधि का परित्याग किया क्योंकि उनके कथनानुसार अब ऐसी उपाधियां और सम्मान धारण करते हुए अपने देशवासियों के सामने खड़े होने में उन्हें शर्म आ रही थी। जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड की जांच के लिए बैठी हंटर कमेटी ने इस काण्ड के हत्यारों को बेदाग छोड़ दिया था।

5.3.4 खिलाफ़त आन्दोलन

प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की की पराजय के बाद से ही यह निश्चित हो गया था कि उसके सुल्तान को अपदस्थ कर दिया जाएगा। तुर्की के सुल्तान को भारत सहित अनेक देशों के मुस्लिम सम्प्रदाय अपना खलीफा या धार्मिक गुरु मानते थे। खिलाफ़त का प्रश्न भारतीय मुसलमानों के लिए एक भावनात्मक मुद्दा था। भारतीय मुसलमान आमतौर पर अंग्रेज़ों के प्रति सहयोग की नीति अपना रहे थे। उन्हें विश्वास था कि उनकी भावनाओं का सम्मान करते हुए ब्रिटिश भारतीय सरकार तथा इंग्लैण्ड की गृह सरकार मित्र राष्ट्रों पर तुर्की के सुल्तान अर्थात् मुसलमानों के खलीफ़ा को अपदस्थ न किए जाने के लिए दबाव डालेंगी। परन्तु मई, 1920 में सेव्र की सन्धि से तुर्की के सुल्तान और मुसलमानों के खलीफ़ा को अपदस्थ कर दिया गया।

31 अक्टूबर, 1918 में तुर्की की पराजय के बाद खिलाफ़त के विषय में मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस की बैठक हुई। भारत में अली बन्धु, मुहम्मद अली एवं शौकत अली ने खिलाफ़त कमेटी का गठन कर पूरे भारत में आन्दोलन प्रारम्भ किया। खिलाफ़त आन्दोलनकारी जानते थे कि अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्हें हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त करना होगा। हिन्दू-मुस्लिम एकता को महत्व देने वाला यह खिलाफ़त आन्दोलन पूर्णरूपेण अहिंसक था।

फ़रवरी, 1920 को मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की अध्यक्षता में हुई खिलाफ़त कॉन्फ्रेन्स ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव रखा। 14 मई, 1920 को सेव्र की सन्धि द्वारा तुर्की के सुल्तान को अपदस्थ कर दिया गया।

1 से 3 जून, 1920 को 'सेन्ट्रल खिलाफ़त कमेटी' ने असहयोग की नीति अपनाने का निश्चय किया। इसमें उपाधियां, प्रशासनिक, पुलिस तथा सैनिक सेवाओं का परित्याग और करों का भुगतान न करना शामिल थे। ख़िलाफ़त आन्दोलन के नेता मौलाना मुहम्मद अली ने अपने अंग्रेज़ी पत्र कामरेड तथा उर्दू पत्र हमदर्द में खलीफ़ा की सत्ता को पुनर्स्थापित करने की मांग को रखा था। गांधीजी ने अपने पत्र यंग इण्डिया में अपने मुसलमान भाइयों की संकट की घड़ी में उनके साथ रहने और उनके अहिंसक आन्दोलन में पूर्ण सहयोग करने का वचन दिया। जुलाई, 1920 में सिंध में आयोजित खिलाफ़त कॉन्फ्रेन्स में गांधीजी ने भी भाग लिया।

5.4 असहयोग आन्दोलन

5.4.1 असहयोग आन्दोलन के लक्ष्य

20 अगस्त, 1920 को गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन को खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में, पंजाब में पुलिस की ज़्यादतियों के विरोध में तथा एक साल के भीतर स्वराज प्राप्ति के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया था। गांधी जी ने आर्थिक व शैक्षिक आत्मनिर्भरता की प्राप्ति, अस्पृश्यता निवारण, मद्य-निषेध, नारी-उत्थान, ग्राम स्वराज्य तथा साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना को भी असहयोग आन्दोलन के लक्ष्यों में सम्मिलित किया था।

असहयोग आंदोलन का एक चित्र

5.4.2 असहयोग आन्दोलन का निषेधात्मक एवं सृजनात्मक स्वरूप

5.4.2.1 असहयोग आन्दोलन का निषेधात्मक स्वरूप

गांधीजी ने स्वदेशी आन्दोलन में अपनाई गई बहिष्कार की रणनीति का असहयोग आन्दोलन में व्यापक प्रयोग किया। भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आर्थिक आधार को कमज़ोर करने के उद्देश्य से बॉयकाट अर्थात बहिष्कार में भारत में विदेशी उत्पादों के उपयोग पर तथा भारत से विदेशों में कच्चे माल के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया गया। विदेशी कपड़ों की होली जलाकर आन्दोलनकारियों ने अपना आक्रोश व्यक्त किया। विदेशी वस्तुओं की दुकानों के सामने आन्दोलनकारियों ने धरना देकर उनके व्यापार में बाधा पहुंचाने का प्रयास किया। देशभक्त महिलाओं से अपेक्षा की गई कि वो विदेशी वस्त्रों का तथा अपने आभूषणों परित्याग कर दें और स्व-निर्मित खादी के वस्त्रों को धारण करें। हिन्दी पत्र स्वराज्य के 18 जुलाई, 1921 के अंक में गया प्रसाद शुक्ल सनेही 'त्रिशूल' की एक क़ौमी ग़ज़ल प्रकाशित हुई थी जिसमें उन्होंने भारतीय महिलाओं को विदेशी वस्त्र और अपने आभूषणों का परित्याग कर स्वदेश-निर्मित खादी को अपनाने के लिए प्रेरित किया था -

निहायत बेहया हैं अब भी जो ज़ेवर पहिनते हैं।

जिन्हें है मुल्क का कुछ दर्द, वो खद्दर पहनते हैं।।

बॉयकाट के अंतर्गत सरकारी स्कूलों, अदालतों, कार्यालयों आदि का भी बहिष्कार किया गया। गांधीजी के आवाहन पर हज़ारों लोगों ने सरकारी नौकरियों, जमी हुई वकालत और सरकारी उपाधियों को त्याग दिया। 1920 में प्रिंस ऑफ़ वेल्स के भारत आगमन पर उसका बहिष्कार किया गया।

5.4.2.2 असहयोग आन्दोलन का सृजनात्मक स्वरूप

स्वदेशी के अंतर्गत भारत में बनी वस्तुओं के प्रयोग का प्रण लिया गया। स्वदेशी वस्तुओं की बिक्री के लिए स्वदेशी स्टोर खोले गए तथा स्वदेशी मेलों का आयोजन किया गया। असहयोग आन्दोलन ने कुटीर उद्योग के पुनरुत्थान को बढ़ावा दिया। चर्खे को गांधीजी ने आर्थिक आत्मनिर्भरता के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित किया। लंकाशायर और मानचेस्टर के कपड़ा मिलों के भारतीय कपड़ा बाज़ार पर एकाधिकार को तोड़ने के लिए चर्खा किसी ब्रह्मास्त्र से कम सिद्ध नहीं हुआ। 1920-21 में विदेशी वस्त्रों का आयात 102 करोड़ रुपये था जो कि 1921-22 में घटकर 57 करोड़ रुपये रह गया था। क्रांतिकारी शहीद पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल अपनी देशभक्तिपूर्ण उर्दू नज़्मों के लिए विख्यात हैं। यह बात कम लोग जानते हैं कि बिस्मिल ने स्वदेशी व्रत भी धारण किया था। उनकी कामना थी कि -

तन में बसन स्वदेशी, मन में लगन स्वदेशी,
फिर से भवन भवन में, विस्तार हो स्वदेशी।
सब हों स्वजन स्वदेशी, होवे चलन स्वदेशी,
मरते समय कफ़न भी दरकार हो स्वदेशी।।
उमड़े दिलों में फिर से, गंगा बहे स्वदेशी,
माता व भगनियों का, श्रृंगार हो स्वदेशी।

इस आन्दोलन में स्वदेशी न्याय-व्यवस्था का भी पोषण किया गया तथा ग्राम पंचायतों के विकास के प्रयास किए गए।

सरकारी शिक्षा संस्थानों में महंगी अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति से विद्यार्थियों को मानसिक रूप से गुलाम बनाया जाता था और अपनी संस्कृति तथा अपने संस्कारों के प्रति घृणा करना सिखाया जाता था। असहयोग आन्दोलन का एक लक्ष्य राष्ट्रीय शिक्षा का विकास था। ऐसी शिक्षा जिसमें विद्यार्थी को आरम्भ से ही स्वावलम्बी बनने का प्रशिक्षण दिया जाता हो तथा उसमें नैतिक उत्थान, देश भक्ति, मानवीयता, सत्य, अहिंसा और भ्रातृत्व के संस्कार दिए जाते हों। डॉक्टर ज़ाकिर हुसेन द्वारा जामिया मिलिया इस्लामिया, काशी विद्यापीठ तथा गुजरात विद्यापीठ की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई।

गांधीजी यह मानते थे कि भारत की आत्मा उसके गांवों में बसती है। ग्राम स्वराज के लक्ष्य के अन्तर्गत उन्होंने गांवों को आर्थिक, शैक्षिक तथा न्याय-वितरण की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया।

नारी-उत्थान के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने स्त्री शिक्षा के प्रसार, पर्दा प्रथा तथा दहेज प्रथा के उन्मूलन तथा स्त्रियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता पर बल दिया।

जीवन भर रंगभेद, जातिभेद व अन्य किसी भी प्रकार के अन्याय के विरुद्ध लड़ने वाले गांधीजी अस्पृश्यता को भारत का सबसे बड़ा सामाजिक एवं धार्मिक कलंक एवं अन्याय मानते थे। असहयोग आन्दोलन में तथाकथित अस्पृश्यों को आदर एवं सम्मान दिया गया तथा अस्पृश्यता निवारण कार्यक्रम को अत्यन्त महत्व दिया गया।

गांधीजी मद्य-निषेध को भारतीयों के चारित्रिक, सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए एक आवश्यक शर्त मानते थे। मद्य-निषेध हेतु व्यापक प्रचार को उन्होंने अपने राजनीतिक आन्दोलनों का अन्तरंग भाग बना दिया।

राष्ट्रीय एकीकरण असहयोग आन्दोलन का लक्ष्य था। इस आन्दोलन में हिन्दू-मुस्लिम एकता, साम्प्रदायिक सद्भाव तथा सर्व-धर्म सम्भाव को महत्व दिया गया।

असहयोग आन्दोलन ने किसान आन्दोलनों और मज़दूर आन्दोलनों को नया बल प्रदान किया।

5.4.2.3 सरकार द्वारा असहयोग आन्दोलन को कुचलने के प्रयास

सरकार ने असहयोग आन्दोलन को कुचलने के लिए शान्तिपूर्ण प्रदर्शनों, भाषणों, जुलूसों, जन-सभाओं, विदेशी वस्तुओं की दुकानों के सामने धरनों, सरकार विरोधी प्रकाशन सामग्री आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया। लाखों आन्दोलनकारियों पर लाठियां और गोली बरसाई गई और लाखों को जेल में डाल दिया गया। आन्दोलन को कमज़ोर करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को भड़काया गया तथा भारतीय शासकों, ज़मींदारों, उद्योपतियों, व्यापारियों, विद्यार्थियों व सरकारी कर्मचारियों को इस आन्दोलन से दूर रहने के लिए कहा गया किन्तु इस आन्दोलन की व्यापकता ने इस आन्दोलन को कुचलने की तमाम सरकारी कोशिशें नाकाम कर दीं।

5.5 चौरीचौरा काण्ड और आन्दोलन की समाप्ति

4 फ़रवरी, 1922 को संयुक्त प्रान्त के गोरखपुर जिले के एक गांव चौरीचौरा में आन्दोलनकारी जुलूस निकाल रहे थे। जुलूस को रोकने के लिए सिपाहियों ने भीड़ पर गोली चला दी। 26 आन्दोलनकारी मारे गए और अनेक घायल हो गए। गोलियां समाप्त होने पर सिपाही थाने में छुप गए। क्रोधित भीड़ ने थाने को आग लगाकर 22 सिपाहियों को मार डाला। इस हत्याकांड की नैतिक ज़िम्मेदारी लेते हुए गांधी जी ने 12 फ़रवरी, 1922 को असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया। गांधीजी ने घोषित किया -

मैं स्वराज्य सिर्फ़ अहिंसा और सत्य के द्वारा प्राप्त करना चाहता हूँ।

कांग्रेस समिति के 1922 के बारदोली प्रस्ताव द्वारा असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया गया और कांग्रेसियों को यह निर्देश दिया गया कि वह राष्ट्रीय पाठशाला, अस्पृश्यता निवारण तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के कार्यों में अपना समय लगाएं। इस निर्णय से आन्दोलनकारियों को भारी धक्का लगा। छुटपुट हिंसा की घटनाओं के कारण देश-व्यापी आन्दोलन के स्थगन का निर्णय उन्होंने कभी भी अपने दिल से स्वीकार नहीं किया। सुभाषचन्द्र बोस ने इस निर्णय की खुलकर आलोचना की।

इस निर्णय का विरोध होने पर भी गांधीजी ने इसे वापस नहीं लिया क्योंकि उनके लिए स्वराज से भी अधिक महत्व अहिंसा का था।

5.6 असहयोग आन्दोलन का आकलन

असहयोग आन्दोलन अपने किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं रहा।गांधीजी देश को एक साल के भीतर स्वराज दिलाने में असफल रहे।अक्टूबर, 1923 में मुस्तफ़ा कमाल पाशा के नेतृत्व में हुई क्रान्ति ने तुर्की में गणतन्त्र की स्थापना कर दी जिससे खलीफ़ा की सत्ता की पुनर्स्थापना के लिए भारत में आन्दोलन किए जाने का औचित्य ही समाप्त हो गया। इसके बाद से अधिकांश मुसलमान राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा से एक बार फिर दूर चले गए और हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों में एक बार फिर से दरार पड़ने लगी।

चौरीचौरा काण्ड तथा कई स्थानों पर आन्दोलनकारियों द्वारा लूटमार किए जाने का हवाला देकर अंग्रेज़ों ने असहयोग आन्दोलन को पूर्णरूपेण अहिंसक, अनुशासित व शान्तिपूर्ण नहीं माना। किन्तु लगभग डेढ़ साल तक चले इतने बड़े आन्दोलन में छुटपुट हिंसा तथा लूटमार की घटना होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।इस आदोलन ने समस्त राष्ट्र को अनुशासन तथा अहिंसा का पाठ पढ़ाया। इतिहास में इस आन्दोलन का अत्यन्त महत्व है। यह भारतीय इतिहास का पहला व्यापक राजनीतिक जन-आन्दोलन था और विश्व इतिहास का पहला अहिंसक राजनीतिक जन-आन्दोलन। इसमें धर्म, जाति, क्षेत्र और वर्ग का भेद किए बिना राष्ट्र को एकसूत्र में बांधा गया था। महिलाओं, किसानों, मज़दूरों तथा अन्य सभी वर्गों की सहभागिता ने इस आन्दोलन को व्यापकता प्रदान की थी। यह आन्दोलन आगे चल कर भारत ही नहीं अपितु समस्त विश्व के दलित, परतन्त्र समाजों तथा जातियों के अपने अधिकारों के संघर्ष के लिए प्रेरणा स्रोत बना।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का राजनीतिक लक्ष्य अब और आगे - पूर्ण स्वराज और फिर स्वतन्त्रता तक पहुंच गया। सरकार को असहयोग आन्दोलन की स्वराज की मांग को आगे चलकर आंशिक रूप से स्वीकार करना पड़ा।असहयोग आन्दोलन के सृजनात्मक पक्ष - आर्थिक, शैक्षिक आत्मनिर्भरता, मद्य-निषेध, नारी-उत्थान, अस्पृश्यता निवारण, ग्राम्य स्वराज तथा राष्ट्रीय एकता पर आन्दोलन के स्थगन बाद भी निरन्तर काम होता रहा।

असहयोग आन्दोलन ने राजनीतिक सुधार एवं सामाजिक परिष्कार के प्रति प्रतिबद्ध पत्रकारिता व साहित्य के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। हर भाषा के साहित्यकारों व पत्रकारों ने राष्ट्रवादी विचारधारा का पोषण किया। गोरखपुर से प्रकाशित पत्र स्वदेश ने 6 अप्रैल, 1919 को प्रकाशित अपने पहले ही अंक में भारतीयों को स्वतन्त्रता दिए जाने की आवश्यकता पर बल दिया था -

हम चाहते हैं कि संसार के अन्य स्थानीय देशों के मनुष्यों की भांति हिन्दुस्तानियों की भी गणना मनुष्यों में हो । इसलिए जो स्वत्व और जितनी स्वतन्त्रता एक स्वाधीन राष्ट्र के व्यक्ति को प्राप्त है, उतनी ही स्वतन्त्रता भारतवासियों को भी प्राप्त हो ।

इलाहाबाद से प्रकाशित पत्र भविष्य ने 27 मई, 1920 के अंक में अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में भारतीयों को स्वतन्त्रता-प्राप्ति हेतु संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया-

सभी भारतीयों को स्वतन्त्रता के लिए आगे कदम बढ़ाना चाहिए। -- अब वह समय दूर नहीं है जब कि भारतवासी इस योग्य हो जाएँगे कि वन्देमातरम् के जयघोष के साथ भारत के सिर पर स्वतन्त्रता का मुकुट धारण करेंगे।

इस आन्दोलन ने गांधीजी को विश्व-शान्ति, अहिंसा, प्रेम, जातीय समानता, वर्णगत समानता और दलितोद्धार का मसीहा बना दिया।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए -

1 - रॉलट एक्ट तथा उसका विरोध।

2 - गांधीजी द्वारा खिलाफ़त आन्दोलन का समर्थन।

3 - चौरीचौरा काण्ड ।

5.7 सारांश

असहयोग आन्दोलन में स्वदेशी आन्दोलन के स्वशासन, आर्थिक व शैक्षिक आत्मनिर्भरता तथा राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने के लक्ष्यों को अंगीकार किया गया था। विश्वयुद्ध में भारतीयों के सहयोग की आशा में भारत सचिव मॉन्टेग्यू की 20 अगस्त, 1917 की ऐतिहासिक घोषणा में होमरूल आन्दोलन की स्वशासन की मांग को सरकार को आंशिक रूप से स्वीकार किया गया किन्तु इस घोषणा के तुरन्त बाद विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों का पलड़ा भारी होते देख सरकार ने भारत में राजनीतिक प्रतिरोध को कुचलने के प्रयास प्रारम्भ कर दिए। आतंकवाद के दमन के लिए जस्टिस रॉलट की अध्यक्षता में सेडिषन कमेटी गठित की गई। रॉलट एक्ट राजनीतिक दमन की पराकाष्ठा का प्रमाण था। गांधी जी ने रौलट एक्ट के विरुद्ध फ़रवरी, 1919 में सत्याग्रह सभा का गठन कर देशव्यापी आन्दोलन का आवाहन किया। पंजाब के अमृतसर, लाहौर, गुर्जनवाला, गुजरात तथा लायलपुर में रॉलट एक्ट विरोधी आन्दोलन हो रहे थे। 9 अप्रैल, 1919 को रॉलट एक्ट के विरोध में जुलूस का नेत्त्व कर रहे डॉ. सत्य पाल तथा सैफुद्दीन किचलू को गिरफ्तार कर निर्वासित कर दिया गया। 11 अप्रैल, 1919 को माइकिल ओडवेयर ने पंजाब में मार्शल लॉ लगा दिया। डॉ. सत्य पाल तथा सैफुद्दीन किचलू को रौलट एक्ट का विरोध करने के कारण गिरफ़्तार किए जाने के विरोधमेंहुई 13 अप्रैल, 1919 को अमृतसर के जलियांवाला बागमेंजनसभा में उपस्थित निहत्थे आन्दोलनकारियों पर बिना चेतावनी दिए जनरल डायर ने गोलीबारी की जिससे सैकड़ों लोग मारे गए और घायल हो गए।

कांग्रेस और मुस्लिम लीग को एक राजनीतिक मंच पर लाने के प्रयास तेज़ हो गए थे। 1916 का लखनऊ समझौता हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतीक था। मई, 1920 में सेव्र की सन्धि से तुर्की के सुल्तान और मुसलमानों के खलीफ़ा को अपदस्थ कर दिया गया। तुर्की के सुल्तान को भारत सहित अनेक देशों के मुस्लिम सम्प्रदाय अपना खलीफा या धार्मिक गुरु मानते थे। भारत में अली बन्धु, मुहम्मद अली एवं शौकत अली ने खिलाफ़त कमेटी का गठन कर पूरे भारत में आन्दोलन प्रारम्भ किया। 20 अगस्त, 1920 को गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन को खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में, पंजाब में पुलिस की ज़्यादतियों के विरोध में तथा

एक साल के भीतर स्वराज प्राप्ति के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया था। गांधी जी ने आर्थिक व शैक्षिक आत्मनिर्भरता की प्राप्ति, अस्पृश्यता निवारण, मद्य-निषेध, नारी-उत्थान, ग्राम स्वराज्य तथा साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना को भी असहयोग आन्दोलन के लक्ष्यों में सम्मिलित किया था।

गांधीजी ने स्वदेशी आन्दोलन में अपनाई गई बहिष्कार की रणनीति का असहयोग आन्दोलन में व्यापक प्रयोग किया। बॉयकाट के अंतर्गत सरकारी स्कूलों, अदालतों, कार्यालयों आदि का भी बहिष्कार किया गया। स्वदेशी के अंतर्गत भारत में बनी वस्तुओं के प्रयोग का प्रण लिया गया। स्वदेशी वस्तुओं की बिक्री के लिए स्वदेशी स्टोर खोले गए तथा स्वदेशी मेलों का आयोजन किया गया। असहयोग आन्दोलन ने कुटीर उद्योग के पुनरुत्थान को बढ़ावा दिया। चर्खे को गांधीजी ने आर्थिक आत्मनिर्भरता के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित किया।

असहयोग आन्दोलन का एक लक्ष्य राष्ट्रीय शिक्षा का विकास था। गांधीजी ने ग्राम स्वराज के लक्ष्य के अन्तर्गत गांवों को आर्थिक, शैक्षिक तथा न्याय-वितरण की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया।नारी-उत्थान के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए गांधीजी ने स्त्री शिक्षा के प्रसार, पर्दा प्रथा तथा दहेज प्रथा के उन्मूलन तथा स्त्रियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता पर बल दिया।असहयोग आन्दोलन में तथाकथित अस्पृश्यों को आदर एवं सम्मान दिया गया तथा अस्पृश्यता निवारण कार्यक्रम को अत्यन्त महत्व दिया गया।मद्य-निषेध हेतु व्यापक प्रचार को गांधीजी ने उन्होंने अपने राजनीतिक आन्दोलनों का अन्तरंग भाग बना दिया।

राष्ट्रीय एकीकरण असहयोग आन्दोलन का एक प्रमुख लक्ष्य था। असहयोग आन्दोलन ने किसान आन्दोलनों और मज़दूर आन्दोलनों को नया बल प्रदान किया। सरकार ने असहयोग आन्दोलन को कुचलने के लिए शान्तिपूर्ण प्रदर्शनों, भाषणों, जुलूसों, जन-सभाओं, विदेशी वस्तुओं की दुकानों के सामने धरनों, सरकार विरोधी प्रकाशन सामग्री आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया। लाखों आन्दोलनकारियों पर लाठियां और गोली बरसाई गई और लाखों को जेल में डाल दिया गया।

4 फ़रवरी, 1922 को गोरखपुर जिले के एक गांव चौरीचौरा में पुलिस वालों की गोलीमारी से क्रोधित आन्दोलनकारियों ने थाने को आग लगाकर 22 सिपाहियों को मार डाला। इस हत्याकांड की नैतिक ज़िम्मेदारी लेते हुए गांधी जी ने 12 फ़रवरी, 1922 को असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया।असहयोग आन्दोलन अपने किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं रहा। गांधीजी देश को एक साल के भीतर स्वराज दिलाने में असफल रहे। 1923 में तुर्की में गणतन्त्र की स्थापना के बाद खलीफ़ा की सत्ता की पुनर्स्थापना के लिए भारत में आन्दोलन किए जाने का औचित्य ही समाप्त हो गया। अंग्रेज़ों ने असहयोग आन्दोलन को पूर्णरूपेण अहिंसक, अनुशासित व शान्तिपूर्ण नहीं माना।

इस आदोलन ने समस्त राष्ट्र को अनुशासन तथा अहिंसा का पाठ पढ़ाया। यह भारतीय इतिहास का पहला व्यापक राजनीतिक जन-आन्दोलन था और विश्व इतिहास का पहला अहिंसक राजनीतिक जन-आन्दोलन। इसमें धर्म, जाति, क्षेत्र और वर्ग का भेद किए बिना राष्ट्र को एकसूत्र में बांधा गया था। महिलाओं, किसानों, मज़दूरों तथा अन्य सभी वर्गों की सहभागिता ने इस आन्दोलन को व्यापकता प्रदान की थी। यह आन्दोलन आगे चल कर भारत

ही नहीं अपितु समस्त विश्व के दलित, परतन्त्र समाजों तथा जातियों के अपने अधिकारों के संघर्ष के लिए प्रेरणा स्रोत बना।

इस आन्दोलन ने गांधीजी को विश्व-शान्ति, अहिंसा, प्रेम, जातीय समानता, वर्णगत समानता और दलितोद्धार का मसीहा बना दिया।

5.7 पारिभाषिक शब्दावली

मित्र शक्तियां: (प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान) इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस, इटली, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि।

सेडिशनः राजद्रोह।

पैन-इस्लामिकः मुस्लिम विश्व बन्धुत्व की भावना के अन्तर्गत विश्व के मुसलमानों को एकसूत्र में बांधने के लिए आन्दोलन।

नाइटहुडः ग्रेट ब्रिटेन की सरकार द्वारा 'सर' की उपाधि।

डोमिनियन स्टेटसः स्वशासित स्थिति (उपनिवेषों के सन्दर्भ में स्वशासित उपनिवेश)

ब्रह्मास्त्रः अचूक हथियार

मद्य-निषेधः नशाबन्दी

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 - देखिए5.3.2 रॉलट एक्ट एवं उसका विरोध

2 - देखिए 5.3.4 खिलाफ़त आन्दोलन

3 - देखिए 5.5 चौरीचौरा काण्ड और आन्दोलन की समाप्ति।

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (भाग 3), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, बॉम्बे, 1969

चन्द्रा, बिपन - नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली, 1979

चन्द्रा, बिपन तथा अन्य - इण्डियाज़ स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, नई दिल्ली, 1988

दत्त, आर0 पी0 - इण्डिया टुडे, कलकत्ता, 1970

सिंह, अयोध्या - भारत का मुक्ति संग्राम, दिल्ली, 1977

5.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

देसाई, ए0 आर0 - भारतीय राष्ट्रवाद की अधुनातन प्रवृत्तियां, दिल्ली, 1977

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में असहयोग आन्दोलन के महत्व का आकलन कीजिए।

इकाई छह

साइमन कमीशन, सर्वदलीय सम्मेलन और नेहरू रिपोर्ट

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 साइमन कमीशन

6.3.1 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट द्वारा प्रान्तों में स्थापित द्वैध शासन व्यवस्था के दोष

6.3.2 स्वराज दल का गठन तथा उसके द्वारा सरकार की नीतियों का विरोध

6.3.3 मडीमैन कमेटी

6.4 साइमन कमीशन का गठन तथा भारतीयों द्वारा उसका विरोध

6.4.1 साइमन कमीशन का गठन

6.4.2 सर्व-श्वेत साइमन कमीशन के गठन की भारतीयों द्वारा आलोचना

6.4.3 साइमन कमीशन का बहिष्कार तथा विरोध कर रहे आन्दोलनकारियों पर पुलिस के अत्याचार

6.4.4 भारत में साइमन कमीशन की कठिनाइयां

6.5 सर्वदलीय सम्मेलन

6.6 नेहरू रिपोर्ट

6.6.1 नेहरू रिपोर्ट की मुख्य सिफ़ारिशें

6.6.2 नेहरू रिपोर्ट का विरोध

6.6.3 नेहरू रिपोर्ट का आंकलन

6.7 1929 तथा 1930 में भारत का राजनीतिक घटनाक्रम

6.7.1 कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वराज के लक्ष्य की घोषणा तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ

6.7.2 साइमन कमीशन की संस्तुतियां तथा उनका आंकलन

6.8 गांधी- इरविनसमझौता

6.8.1. पृष्टभूमि

6.8.2. गांधी- इरविन समझौते की शर्तें

6. 8.3. गांधी-इरविन समझौते का महत्त्व

6.9 गोलमेज सम्मलेन (1930 – 1932)

6. 9.1. प्रथम गोलमेज सम्मलेन (12 नवंबर, 1930- 19 जनवरी, 1931)

6. 9.2. द्वितीय गोलमेज सम्मलेन (7 सितंबर, 1931 से 1 दिसंबर, 1931)

6. 9.3. तृतीय गोलमेज सम्मलेन ((17 नवंबर से 24 दिसंबर, 1932)

6. 9.4.गोलमेज़ सम्मेलनों का मूल्यांकन

6.10 कम्यूनल अवार्ड (1932)

6. 10.1 कम्यूनल अवार्ड के मुख्य बिंदु

6. 10.2 कम्यूनल अवार्ड का प्रभाव

6.11 सारांश

6.12 पारिभाषिक शब्दावली

6.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.15 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.16 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

चौरीचौरा काण्ड के बाद 1922 के बारदोली प्रस्ताव द्वारा असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया गया था। राजनीतिक निष्क्रियता के कारण कांग्रेस का जनाधार कमज़ोर पड़ने लगा। कांग्रेस ने 1919 के एक्ट की व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले 1920 के चुनाव का बहिष्कार किया था और गांधीजी 1923 के चुनाव का भी बहिष्कार करना चाहते थे जब कि सी0 आर0 दास, मोतीलाल नेहरू, विठ्ठल भाई पटेल तथा हकीम अजमल खान चुनावों में भाग लेकर जन-प्रतिनिधियों के द्वारा विधान सभाओं तथा परिषद में सरकार की गलत नीतियों का खुलासा करने के पक्ष में थे। कांग्रेस के अन्तर्गत स्वराज दल ने चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया और उसमें उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। स्वराजियों ने जन-प्रतिनिधि सभाओं में सरकार की दमनकारी नीतियों का पर्दाफ़ाश तथा प्रान्तों में स्थापित द्वैध शासन की दुर्बलताओं को उजागर करने में सफलता प्राप्त की।

1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के एक प्रावधान के अनुसार अधिनियम के पारित होने के 10 साल बाद अर्थात् 1929 तक एक स्टेट्यूटरी कमीशन की नियुक्ति की जानी थी। इस कमीशन को 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की कार्य प्रणाली की जांच कर उसका आकलन करना था और भविष्य के लिए आवश्यक सुधारों की संस्तुति भी करनी थी। 1924 में स्थापित मडीमैन कमेटी ने प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था की अक्षमता पर प्रकाश डाला था। 8 नवम्बर, 1927 को सर जॉन साइमन के नेतृत्व में ब्रिटिश सांसदों का एक स्टेट्यूटरी कमीशन 1919 के एक्ट के प्रावधानों की समीक्षा और भविष्य में संवैधानिक सुधारों की योजना बनाने के लिए गठित कर दिया गया। सात सदस्यीय इस कमीशन में किसी भी भारतीय को सम्मिलित न किए जाने का सभी भारतीय राजनीतिक दलों द्वारा व्यापक विरोध हुआ।

साइमन कमीशन के विरोध तथा बहिष्कार ने 5 साल की राजनीतिक निष्क्रियता को दूर कर दिया। साइमन कमीशन के विरोध ने एक बार फिर सरकार और भारतीयों के मध्य राजनीतिक टकराव की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। सरकार ने अपनी राजनीतिक दमन की नीति का फिर से प्रदर्शन किया। भारतीय राजनीतिक दलों के सर्वदलीय

सम्मेलन ने नेहरू रिपोर्ट के माध्यम से भारत में संवैधानिक सुधार हेतु अपनी योजना प्रस्तुत की जिसको कि सरकार ने ठुकरा दिया। मुस्लिम लीग, खिलाफ़त कमेटी तथा आल इण्डिया सिक्ख लीग ने नेहरू रिपोर्ट की सिफ़ारिशों को क्रमशः मुसलमानों और सिक्खों के हितों की रक्षार्थ अपर्याप्त माना। सरकार द्वारा नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों की पूर्ण उपेक्षा किए जाने से नाराज़ कांग्रेस द्वारा 1929 में पूर्ण स्वराज के लक्ष्य की घोषणा की गई और सरकार को एक समयबद्ध सीमा में इसको पूरा करने के लिए कहा गया। सरकार द्वारा कांग्रेस की मांगों पर फिर कोई ध्यान न दिए जाने के फलस्वरूप 26 जनवरी, 1930 को कांग्रेस ने अपना स्वतन्त्रता दिवस मनाया और मार्च, 1930 में डान्डी मार्च प्रारम्भ कर गांधीजी ने पूर्ण स्वराज की प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर अपना सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस इकाई में 1922 से 1930 के मध्य में हुए भारतीय राजनीतिक घटनाचक्र एवं इस अवधि में हुए संवैधानिक विकास हेतु किए गए सरकार के तथा भारतीय राजनीतिक दलों के प्रयासों से आपको परिचित कराया जाएगा।

6.2 उद्देश्य

1922 में चौरीचौरा काण्ड के बाद असहयोग आन्दोलन आन्दोलन के स्थगन से भारत में राजनीतिक शिथिलता आ गई थी। कांग्रेस के भीतर ही स्वराज दल के गठन ने इस राजनीतिक गतिरोध को समाप्त किया और निरंकुश ब्रिटिश भारतीय सरकार के लिए परेशानियां खड़ी कीं। प्रान्तों में 1922 में लागू की गई द्वैध शासन की व्यवस्था ने भारतीयों को शासन में पर्याप्त हिस्सेदारी न देने की नीति का खुलासा कर दिया था। 1927 में सर जॉन साइमन के नेतृत्व में सर्व-श्वेत ब्रिटिश सांसदों से गठित स्टेट्यूटरी कमीशन का भारत में हुआ। इसके विरोध से बाद भारत में पुनः राजनीतिक सरगर्मी आ गई और सर्वदलीय सम्मेलन ने 1928 में नेहरू रिपोर्ट प्रस्तुत की। नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों पर सरकार ने ध्यान नहीं दिया। अब भारतीयों ने डोमिनियन स्टेटस के स्थान पर अब पूर्ण स्वराज्य की मांग की। जून, 1930 में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसमें एक बार फिर खोखले सुधार प्रस्तुत किए गए और फूट डाल कर शासन करने की नीति का पालन किया गया। 1930 में गांधीजी ने पूर्ण स्वराज का लक्ष्य लेकर सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

1. 1922 से 1927 तक का भारतीय राजनीतिक एवं संवैधानिक घटनाचक्र के विषय में।
2. साइमन कमीशन के गठन, उसके मन्तव्य तथा भारतीयों द्वारा उसके विरोध के विषय में।
3. सर्वदलीय सम्मेलन तथा नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों के विषय में।
4. सरकार तथा विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों की आलोचना के विषय में।
5. कांग्रेस के द्वारा पूर्ण स्वराज के लक्ष्य की घोषणा तथा उसको लागू करने हेतु सरकार को अल्टीमेटम दिए जाने के विषय में।
6. सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किए जाने के विषय में।
7. साइमन कमीशन की संस्तुतियों तथा उनकी कमियों के विषय में।

6.3 साइमन कमीशन

6.3.1 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट द्वारा प्रान्तों में स्थापित द्वैध शासन व्यवस्था के दोष

1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विषयों का वर्गीकरण किया गया था। प्रान्तों को स्थानीय स्वशासन, स्वास्थ्य, शिक्षा, पुलिस, सार्वजनिक निर्माण, कृषि, सिंचाई, उद्योग, ऊर्जा, भू-राजस्व, जंगलात, सहकारी समिति, जेल, आबकारी और प्रेस पर नियन्त्रण आदि विषय प्रदान किए गए। इस एक्ट में प्रान्तीय स्तर पर द्वैध शासन प्रणाली लागू की गई थी। कुछ महत्वपूर्ण विषयों को सुरक्षित रखा गया था जिन पर कि गवर्नर अथवा लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर का सीधा नियन्त्रण था, इनमें प्रमुख थे - वित्त, कानून एवं शान्ति व्यवस्था, संचार, पुलिस तथा अकाल सहायता। इन विषयों का प्रशासन गवर्नर तथा उसकी 4 सदस्यीय कार्यकारी परिषद द्वारा संचालित होना था। शेष विषयों को हस्तान्तरित विषयों की श्रेणी में रखा गया जिनको कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से गठित मन्त्रिमण्डल के अधीन रखा गया। इनमें शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, स्थानीय स्वशासन आदि सम्मिलित थे। इन हस्तान्तरित विषयों पर भी गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया था। इन सबके ऊपर केन्द्र सरकार थी जो आवश्यक समझ कर प्रान्तीय सरकारों पर इच्छानुसार अपना निर्णय थोप सकती थी।

1922 में प्रान्तों में द्वैध शासन लागू किया गया और कुछ ही समय में इसकी भ्रामक व्यवस्था की कमियां सबके सामने आ गईं। द्वैध शासन की संकल्पना और सरंचना दोनों ही दोषपूर्ण थीं। शासकीय कार्य का एक-दूसरे से स्वतन्त्र दो इकाइयों में विभाजन नितान्त अव्यावहारिक था। जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से आए हुए मन्त्री अपने क्षेत्र की जनता के प्रति जवाबदेह थे इसलिए उनके लिए जनता के हित सर्वोपरि थे जबकि गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और नौकरशाही की निष्ठा ब्रिटिश ताज तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति थी और उनके लिए साम्राज्यवादी हित ही सर्वोपरि थे इसलिए मन्त्रियों का गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, तथा इण्डियन सिविल सर्विस अथवा इण्डियन पुलिस के अधिकारियों से तालमेल बैठ पाना असम्भव था। मन्त्री अपने ही विभाग के उच्च अधिकारियों पर अपना नियन्त्रण स्थापित नहीं कर सकते थे। अपनी जनता और विधायिका के प्रति उत्तरदायी होने के साथ-साथ मन्त्री गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के अधीन भी थे और वही उनको नियुक्त अथवा अपदस्थ करने का अधिकार भी रखता था।

भारतीयों ने प्रान्तों में स्थापित द्वैध शासन की व्यवस्था को मान्टेग्यू की 1917 की घोषणा में भारतीयों को दिए गए आश्वासनों का खोखला क्रियान्वयन बताया था। भारतीयों द्वारा केन्द्र और प्रान्तों दोनों ही में उत्तरदायी शासन स्थापित किए जाने की मांग की जा रही थी।

6.3.2 स्वराज दल का गठन तथा उसके द्वारा सरकार की नीतियों का विरोध

1922 के बारदोली प्रस्ताव द्वारा असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया गया था और कांग्रेसियों को यह निर्देश दिया गया कि वे सृजनात्मक कार्यों में अपना समय लगाएं। देश-व्यापी असहयोग आन्दोलन को मात्र एक हिंसक घटना के कारण वापस लिए जाने के कारण कांग्रेस के भीतर ही इस निर्णय से अनेक नेताओं में आक्रोश था। भारतीय जनता भी गांधीजी द्वारा असहयोग आन्दोलन को स्थगित किए जाने के पक्ष में दी गई दलीलों से सन्तुष्ट नहीं थी। इन परिस्थितियों में 1922 से 1927 तक के काल में कांग्रेस का जनाधार कमज़ोर पड़ने लगा। गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस ने 1919 के एक्ट की व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले 1920 के चुनाव का बहिष्कार किया था। 1920 के काउंसिल के चुनावों के बहिष्कार से अवांछनीय तत्वों का काउंसिलों में प्रवेश हो गया था जिसके कारण देश के विकास में बाधा पड़ रही थी। गांधीजी 1923 में होने वाले चुनाव का भी बहिष्कार करना चाहते थे। जब कि सी0 आर0 दास, मोतीलाल नेहरू, विठ्ठल भाई पटेल तथा हकीम अजमल खान चुनावों में भाग लेकर जन-प्रतिनिधियों के द्वारा विधान सभाओं तथा परिषद में सरकार की गलत नीतियों का खुलासा करने के पक्षमेंथे। दिसम्बर, 1922 के कांग्रेस के गया अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए सी0 आर0 दास ने कांउसिलों में कांग्रेस के प्रवेश को आवश्यक बताया। श्री दास की यही दलील थी कि हम चुनाव में खड़े होकर, उसमें जीत कर कांउसिलों में प्रवेश पाकर सरकार के साथ असहयोग की नीति अपनाकर उसके कार्यों में बाधा पहुंचा सकते हैं और उसे सुधार देने के लिए विवश कर सकते हैं। गांधीवादियों के विरोध के बावजूद सी0 आर0 दास तथा मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस के अंतर्गत ही मार्च, 1923 में स्वराज दल का गठन किया जिसने कि चुनावोंमेंभाग लेने का निश्चय किया। 1923 के चुनाव में केंद्रीय विधान सभा ने स्वराजदल को कुल 101 में से 42 स्थान मिले। 1925 में विठ्ठल भाई पटेल केंद्रीय विधान परिषद के अध्यक्ष बने। एन0 सी0 केलकर के नेतृत्व में स्वराजियों को मध्य प्रान्त में पूर्ण बहुमत मिला। सी0 आर0 दास के नेतृत्व में बंगाल में भी इसका प्रदर्शन सराहनीय रहा। स्वराजियों ने जन-प्रतिनिधि सभाओं में सरकार की दमनकारी नीतियों का पर्दाफ़ाश किया। स्वराज पार्टी ने द्वैध शासन की दुर्बलताओं को उजागर करने में सफलता प्राप्त की। केन्द्रीय विधान परिषद में स्वराज दल के सदस्यों की पहल पर फ़रवरी, 1924 में उत्तरदायी सरकार की स्थापना पर विचार करने के लिए एक गोल मेज़ सभा के आयोजन हेतु एक प्रस्ताव पारित किया गया। स्वराजियों ने असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बीच के काल में राजनीतिक गतिविधियों को जारी रख जनता में जागृति और उत्साह बनाए रक्खा और सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया।

6.3.3 मडीमैन कमेटी

भारतीयों द्वारा बार-बार यह मांग की जा रही थी कि 1919 के गवर्नमेन्ट आफ़ इण्डिया एक्ट की कमियों को दूर करने के लिए एक आयोग की स्थापना की जाए और खासकर प्रान्तों में द्वैध शासन की भ्रामक व्यवस्था को बदला जाए। विधान परिषदों में स्वराज दल द्वारा दबाव डाले जाने पर सरकार ने 1924 में द्वैध शासन की कार्यप्रणाली की जांच-पड़ताल करने के लिए भारत सरकार के तत्कालीन होम मेम्बर सर एलेक्ज़ेण्डर मडीमैन की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की। उच्च सरकारी अधिकारियों के अतिरिक्त इस कमेटी में सर पी0 एस0 शिवस्वामी अय्यर, सर

तेज बहादुर सप्रू, मोहम्मद अली जिन्ना तथा डॉक्टर आर0 पी0 परांजपे सम्मिलित थे। मार्च, 1925 में अपनी रिपोर्ट में इस कमेटी ने प्रान्तों में लागू की गई द्वैध शासन प्रणाली को नितान्त असफल बताया था।

6.4 साइमन कमीशन का गठन तथा भारतीयों द्वारा उसका विरोध

6.4.1 साइमन कमीशन का गठन

1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के एक प्रावधान के अनुसार अधिनियम के पारित होने के 10 साल बाद अर्थात् 1929 तक एक स्टेट्यूटरी कमीशन की नियुक्ति की जानी थी। इस कमीशन को 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की कार्य प्रणाली की जांच कर उसका आकलन करना था और भविष्य के लिए आवश्यक सुधारों की संस्तुति भी करनी थी। ब्रिटेन की अनुदारवादी सरकार ने अपने देश में होने वाले चुनावों में अपनी हार की आशंका से और आगामी उदारवादी सरकार द्वारा भारतीयों को अधिक संवैधानिक सुधार दिए जाने की सम्भावना को रोकने के लिए इस अवधि से दो साल पहले ही 8 नवम्बर, 1927 को सर जॉन साइमन के नेतृत्व में ब्रिटिश सांसदों का एक कमीशन 1919 के एक्ट के प्रावधानों की समीक्षा और भविष्य में संवैधानिक सुधारों की योजना बनाने के लिए गठित कर दिया। इस कमीशन के सदस्य थे -

1. सर जॉन साइमन
2. क्लीमेन्ट एटली
3. हैरी लेवी-लॉसन
4. एडवर्ड कैडोगन
5. वैरनॉन हार्टशोर्न
6. जॉर्जलेन फ़ॉक्स
7. डोनाल्ड हावर्ड

'ऑल इण्डिया काउंसिल ऑफ़ इण्डिया' द्वारा साइमन कमीशन के कार्य में सहयोग देने के लिए 'ऑल इण्डिया कमेटी स्थापित की गई। इसके लिए सदस्यों का चुनाव वाइसराय लॉर्ड इर्विन ने किया। इस कमेटी के अध्यक्ष सर सी0 शंकरन नायर थे और इसके अन्य सदस्य थे - सर आर्थर फ्रूम, राजा नवाब अली खान, सरदार शिवदेव सिंह ओबेराय, नवाब ज़ुल्फ़िकार अली खान, सर हरी सिंह गौड़, सर अब्दुल्ला अल-मामून सुहरावर्दी, कीकाभाई प्रेमचन्द तथा राव बहादुर एम0 सी0 राजा।

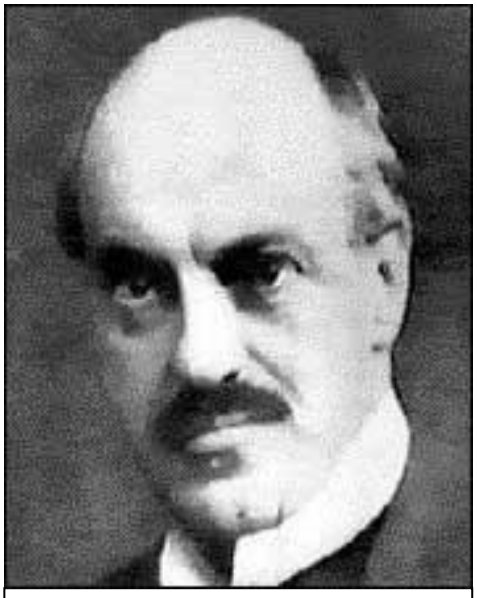

सर जॉन साइमन

6.4.2 सर्व-श्वेत साइमन कमीशन के गठन की भारतीयों द्वारा आलोचना

सर्व-श्वेत सात सदस्यों के इस कमीशन में कोई भी भारतीय सदस्य नहीं था। यदि इस कमीशन में ब्रिटिश सांसद ही रखे जाने थे तो भी इसमें प्रिवी काउंसिल के सदस्य लॉर्ड सिनहा जैसे विधि विशेषज्ञ को सम्मिलित किया जा सकता था। एम0 आर0

जयकर ने सर्व-श्वेत सदस्य गठित इस कमीशन को असंवैधानिक बताया। मोहम्मद अली जिन्ना ने इस कमीशन में भारतीय सदस्यों को शामिल किया जाना आवश्यक बताया। मदनमोहन मालवीय ने इस कमीशन के साथ सहयोग करना राष्ट्र का अपमान माना। केन्द्रीय विधान सभा के अध्यक्ष विठ्ठल भाई पटेल ने अपने इंग्लैण्ड दौरे में भारत सचिव को आगाह कर दिया था कि भारतीय इस सर्व-श्वेत कमीशन का बहिष्कार करेंगे। केन्द्रीय विधान सभा में साइमन कमीशन के पक्ष में 62 तथा उसके विरोध में 68 मत पड़े। स्टेट्यूटरी कमीशन में भारतीयों को शामिल करने की मांग पर भारत सचिव बर्कनहेड ने व्यंग्य कसा कि भारतीय किसी भी व्यावहारिक राजनीतिक ढांचे के अन्तर्गत सहमत होकर काम करने में अक्षम हैं। उन्होंने भारतीयों को एक सर्वसम्मत संविधान बनाने की चुनौती भी दे डाली क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास था कि मुसलमान किसी भी सर्वसम्मत संविधान के निर्माण की प्रक्रिया से खुद को दूर रखेंगे। शासन द्वारा अपनी मांग ठुकराए जाने तथा भारत सचिव की इस अपमानजनक टिप्पणी से सरकार के मन्तव्य प्रकट हो जाने पर भारतीयों ने इस कमीशन का बहिष्कार किया। नवम्बर, 1927 में कांग्रेस अध्यक्ष श्रीनिवास आयंगार ने साइमन कमीशन का विरोध तथा उसका बहिष्कार करने की घोषणा की। 16 नवम्बर, 1927 को मोहम्मद अली जिन्ना ने मुस्लिम लीग की ओर से साइमन कमीशन के साथ असहयोग करने की घोषणा की। 'आल-इण्डिया लिबरल फेडरेशन', 'फ़ेडरेशन ऑफ इण्डियन चैम्बर ऑफ़ कॉमर्स' 'मिल ओनर्स ऐसोसियेशन' तथा 'हिन्दू महासभा' ने भी इसका विरोध किया। बनारस से प्रकाशित राष्ट्रवादी पत्र आज के 19 नवम्बर, 1927 के अंक में सरकार की इस कपटपूर्ण नीति की कटु आलोचना करते हुए नस्लवाद पर आधारित इस कमीशन का विरोध करने के लिए भारतीयों को संगठित होने तथा नए सिरे एक और आन्दोलन करने का आवाहन किया गया था -

ब्रिटिश कमीशन की नियुक्ति करके भारत का जो अपमान किया गया है, उससे हमारा रक्त उबल पड़ा है और हृदय विदीर्ण हो उठा है। कमीशन में भारतीयों को निकालने के बारे में वाइसराय ने जो तर्क दिए हैं उनकी निष्कपटता और कर्तव्यपरायणता पर लगा धब्बा नहीं मिटता। ईश्वर ने हमें एक होने और दुगने उत्साह से देश की सेवा करने का एक अवसर प्रदान किया है।

लाला लाजपत राय ने इस कमीशन की सदाशयता पर प्रश्न चिह्न लगाया। उन्होंने फ़रवरी, 1928 में पंजाब लेजिसलेटिव एसेम्बली में साइमन कमीशन के विरुद्ध एक प्रस्ताव रखा।

6.4.3 साइमन कमीशन का बहिष्कार तथा विरोध कर रहे आन्दोलनकारियों पर पुलिस के अत्याचार

साइमन कमीशन का देश में हर स्थान पर काले झण्डे दिखाकर विरोध हुआ। 'साइमन कमीशन गो बैक' के नारों से पूरा देश गूंज उठा। साइमन कमीशन विरोधी आन्दोलन के दमन के लिए ब्रिटिश सरकार ने आन्दोलनकारियों पर लाठियां बरसाई और उन्हें जेल में डाल दिया। 30 अक्टूबर, 1928 को कांग्रेस के प्रमुख नेता लाला लाजपत राय, लाहौर में साइमन कमीशन के विरोध में जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे। आन्दोलनकारी पूर्णतया शान्त थे किन्तु पुलिस अधीक्षक स्कॉट ने जुलूस को रुकने का आदेश दिया। लालाजी और अन्य आन्दोलनकारी इस आदेश की अवज्ञा करते हुए आगे बढ़ते रहे। स्कॉट ने लाठी चार्ज का आदेश दिया। लालाजी के सर पर और शरीर के अन्य अंगों पर लाठियों के भीषण प्रहार किए गए। घायल होकर लालाजी वहीं गिर पड़े। भीड़ को नियन्त्रित करने के

लिए उन्होंने आन्दोलनकारियों को लौट चलने के लिए कहा। उसी शाम एक सभा का आयोजन किया गया। घायल लाला लाजपत राय उस सभा में सम्मिलित हुए। उन्होंने सभा में उपस्थित डी0 एस0 पी0 नील से कहा -

मेरे ऊपर किया गया एक-एक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के ताबूत में कील ठोकने का काम करेगा।

बाद में लाला जी की इन्हीं चोटों के कारण मृत्यु हो गई। पूरे देश में शोक और आक्रोश व्याप्त हो गया। लाहौर में 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' के सदस्य भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु आदि ने लाला लाजपत राय पर प्रहार करने वाले स्कॉट की हत्या करने की योजना बनाई किन्तु उनके इस अभियान में 17 दिसम्बर, 1928 को सार्जेन्ट सॉन्डर्स की हत्या हो गई। सॉन्डर्स की हत्या के बाद 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' ने पोस्टर्स के माध्यम से देश के महान नेता की निर्मम हत्या के लिए ज़िम्मेदार लोगों में से एक अधिकारी की हत्या को सर्वथा उचित ठहराया।

नवम्बर, 1928 को पंडित जवाहर लाल नेहरू तथा गोविन्द बल्लभ पंत लखनऊ में पुलिस की लाठियों से घायल हुए। केवल मद्रास और कलकत्ते में साइमन कमीशन के वहां पहुंचने पर दंगे हुए बाकी स्थानों पर जनता ने इस दमन चक्र का शान्तिपूर्वक सामना किया।

6.4.4 भारत में साइमन कमीशन की कठिनाइयां

3 फ़रवरी, 1928 को बम्बई में साइमन कमीशन भारत पहुंचा और वह भारत में 31 मार्च, 1928 तक रहा। इस अवधि में कमीशन ने सरकारी दस्तावेज़ों का परीक्षण किया। दूसरी बार यह 11 अक्टूबर, 1928 से 13 अप्रैल, 1929 तक भारत में रहा और इसने मद्रास, लाहौर, कराची, पेशावर, दिल्ली, लखनऊ, पटना, कलकत्ता, आदि नगरों का दौरा किया। सभी जगहों पर इसने शासन की कार्य-प्रणाली का अध्ययन किया और लोगों से विचार-विमर्श किया। साइमन और उसके सहयोगियों को अपने भारत पहुंचने पर इतने प्रबल विरोध की स्वप्न में भी आशा नहीं थी। भारत के सभी प्रमुख राजनीतिक दलों ने साइमन कमीशन का सामाजिक तथा राजनीतिक बहिष्कार किया। काले झण्डे से हर स्थान पर अपना स्वागत देखकर साइमन का विचार बना कि वह अपने कार्य को बीच में ही छोड़कर स्वदेश लौट जाए। अप्रैल, 1928 में उसके प्रथम भारत प्रवास के बाद इंग्लैण्ड लौटने पर भारत सचिव बर्केनहेड की उससे भेंट हुई। साइमन ने उससे भारतीय राजनीतिज्ञों, विशेषकर स्वराज पार्टी के सदस्यों के प्रति अपनी कटु भावनाओं को व्यक्त किया और बर्केनहेड ने भी इस बारे में अपनी सहमति जताई। अप्रैल, 1928 तथा अक्टूबर, 1928 को बर्केनहेड द्वारा भारत के गवर्नर जनरल इर्विन को लिखे पत्रों से यह साफ़ हो गया कि भारत सचिव (बर्केनहेड) तथा स्टेट्यूटरी कमीशन के अध्यक्ष (जॉन साइमन) दोनों ही भारतीयों की राजनीतिक आंकाक्षाओं को पूरा करने की कोई इच्छा नहीं रखते हैं। भारत के गवर्नर जनरल इर्विन के लिए भारत में स्थिति बहुत कठिन होने वाली थी। साइमन कमीशन की भारत विरोधी संस्तुतियां भारत में राजनीतिक असन्तोष का विस्फोट कर सकती थीं। इर्विन को यह ज्ञात हो गया कि सर्व-श्वेत सदस्य के स्टेट्यूटरी कमीशन का गठन और भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं की इतनी अधिक उपेक्षा एक बड़ी भूल थी। कांग्रेस के 1928 के कलकत्ता अधिवेशन के सरकार को अल्टीमेटम दिए जाने वाले प्रस्ताव से वह और भी अधिक चिन्तित हो गया था। 1929 में केन्द्रीय विधान सभामें'पब्लिक सेफ्टी बिल', 'ट्रेड डिस्प्यूट बिल' तथा कार्यकारी परिषद के बजट अनुदान के

नामन्जूर होने और मोतीलाल नेहरू द्वारा सदन में पुनः राष्ट्र की राजनीतिक मांगों को दोहराए जाने से स्थिति और भी संकटपूर्ण हो गई थी। इर्विन इसका समाधान भारतीयों तथा उनकी आकांक्षाओं के साथ गृह सरकार द्वारा पहले से बेहतर बर्ताव को मानता था और वह संशोधनात्मक कार्यवाही की संस्तुति कर रहा था परन्तु इंग्लैण्ड में रैमेज़े मैक्डोनाल्ड के नेतृत्व में लेबर पार्टी की सरकार बन जाने के बाद भी भारतीयों को सुधार दिए जाने की दिशा में कोई खास प्रगति नहीं हुई।

6.5 सर्वदलीय सम्मेलन

साइमन कमीशन के विरोध किए जाने पर भारत सचिव बर्कनहेड ने व्यंग्य कसा था कि भारतीय किसी भी व्यावहारिक राजनीतिक ढांचे के अन्तर्गत सहमत होकर काम करने में अक्षम हैं। उसने भारतीयों को एक सर्वसम्मत संविधान बनाने की चुनौती भी दे डाली थी। भारत सचिव बर्केनहेड की चुनौती को स्वीकार करते हुए भारतीय राजनीतिक दलों ने एक सर्वमान्य संवैधानिक योजना बनाने का निश्चय किया। 1927 में कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में यह तय किया गया कि अन्य राजनीतिक दलों की सहमति से स्वतन्त्र भारत के लिए संविधान का मसौदा तैयार किया जाएगा। अखिल भारतीय सम्मेलन में एक उप-समिति का गठन किया गया जिसके अध्यक्ष तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष मोतीलाल बनाए गए। सर तेज बहादुर सप्रू भी इस समिति के सदस्य बनाए गए। उदारवादी सर तेज बहादुर सप्रू तथा मुस्लिम नेता मोहम्मद अली जिन्ना ने कांग्रेस के साथ मिलकर 'स्वशासित राज्य' के संविधान के निर्माण की योजना बनाई। 1927 के अन्त में मद्रास की जस्टिस पार्टी तथा पंजाब यूनियनिस्ट्स के अतिरिक्त सभी प्रतिष्ठित राजनीतिक दलों ने साइमन कमीशन का बहिष्कार करने तथा संविधान निर्माण के लिए सभी राजनीतिक दलों की एक सभा के आयोजन की तैयारी की। मुस्लिम लीग के दिसम्बर, 1927 के अधिवेशन में मोहम्मद अली जिन्ना ने साइमन कमीशन के बहिष्कार करने का आह्वान किया। एम0 ए0 अंसारी की अध्यक्षता में दिसम्बर, 1927 के कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में सभी राजनीतिक दलों की सहमति से स्वतन्त्र भारत के संविधान का मसौदा बनाने का निश्चय किया गया। इस उद्देश्य से राजनीतिक दलों के फ़रवरी तथा मई, 1928 में अखिल भारतीय सम्मेलन में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक 10 सदस्यीय समिति का गठन किया गया। इस समिति को प्रस्तावित संविधान का मसौदा तैयार करना था। इसके सदस्यों में तेज बहादुर सप्रू, अली इमाम, शुएब कुरैशी, एन0 एम0 जोशी, एम0 आर0 जयकर, सुभाषचन्द्र बोस आदि सम्मिलित थे। बाद में एम0 आर0 जयकर इससे हट गए। अगस्त, 1928 में इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे इसके अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू के नाम पर नेहरू रिपोर्ट कहा जाता है। नेहरू रिपोर्ट को लखनऊ में 28-31 अगस्त, 1928 में आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन में स्वीकृत कर लिया गया।

6.6 नेहरू रिपोर्ट

6.6.1 नेहरू रिपोर्ट की मुख्य सिफ़ारिशें

1. भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत अधिराज्य पद (डोमिनियन स्टेटस) प्रदान किया जाए।
2. भारत में संघीय शासन स्थापित किया जाए और केन्द्र में द्वि-सदनीय विधान परिषद का गठन किया जाए। मन्त्रिमण्डल केन्द्रीय विधान परिषद के प्रति उत्तरदायी हो।
3. गवर्नर-जनरल की शक्तियां एक संवैधानिक राजतन्त्र के प्रमुख की भांति सीमित हों।
4. किसी भी समुदाय को पृथक निर्वाचक मण्डल प्रदान न किया जाए।

5. गैर-मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में मुसलमानों को तथा उत्तर-पश्चिमोत्तर प्रान्त में गैर-मुस्लिमों को सुरक्षित स्थान दिए जाएं। पंजाब तथा बंगाल में मुसलमानों को सुरक्षित स्थान न दिए जाएं।
6. भारत के नागरिकों के मूल अधिकारों को लेखबद्ध किया जाए।
7. वयस्क मताधिकार को भारत में लागू किया जाए।
8. महिलाओं को भी वयस्क मताधिकार दिया जाए।

6.6.2 नेहरू रिपोर्ट का विरोध

1. इस रिपोर्ट में सिक्खों के लिए अलग से कोई व्यवस्था नहीं की गई। समिति के एक मात्र सिक्ख सदस्य मंगल सिंह ने नेहरू रिपोर्ट का विरोध किया। कांग्रेस के सिक्ख सदस्यों ने भी इसका विरोध किया। 'सेन्ट्रल सिक्ख लीग के अध्यक्ष' बाबा खड़क सिंह द्वारा सिक्खों को पंजाब में 30 प्रतिशत स्थान दिए जाने की मांग की गई।

2. खिलाफ़त कमेटी के सदस्यों मौलाना शौकत अली, बेगम मोहम्मद अली आदि ने इसका विरोध किया। इस रिपोर्ट को मुस्लिम हितों की विरोधी बताकर मौलाना मोहम्मद अली जौहर ने कांग्रेस की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया।

3. मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना द्वारा नेहरू कमेटी रिपोर्ट को इसलिए खारिज किया क्योंकि इसमें उनकी पृथकतावादी मांगों को शामिल नहीं किया गया था। वो केन्द्रीय व गैर-मुस्लिम बहुमत के प्रान्तों की विधानसभाओं में मुसलमानों के लिए एक तिहाई स्थान, और बंगाल, पंजाब तथा तीन नए मुस्लिम-बहुल राज्यों सिंध, बलूचिस्तान और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में मुस्लिम आबादी के कुल प्रतिशत के अनुरूप मुस्लिम सीटें चाहते थे। 1929 में मुहम्मद अली जिन्ना ने मुस्लिम लीग की ओर से अपनी 14 सूत्री मांग प्रस्तुत कीं जिनमें प्रमुख मांगे थीं –

   लखनऊ समझौते की व्यवस्था का अनुपालन हो।

   शक्ति का विकेन्द्रीकरण हो तथा प्रान्तीय सरकारों को अधिक अधिकार दिए जाएं क्योंकि लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र में अल्पसंख्यक मुसलमानों के हितों की रक्षा नहीं हो सकती।

4. कांग्रेस के युवा सदस्यों ने इस रिपोर्ट की सिफ़ारिशों को अपर्याप्त माना था। नेहरू रिपोर्ट में डोमिनियन स्टेटस की मांग की गई थी जबकि सुभाष चन्द्र बोस पूर्ण स्वतंत्रता की मांग के पक्ष में थे। 1928 के कांग्रेस अधिवेशन में उनका पूर्ण स्वतंत्रता की मांग का प्रस्ताव बहुत थोड़े अंतर से पराजित हो गया।

6.6.3 नेहरू रिपोर्ट का आंकलन

कलकत्ते में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में दिसम्बर, 1928 के कांग्रेस अधिवेशन में नेहरू रिपोर्ट को बहुमत से अनुमोदित कर दिया गया तथा इसको सरकार के समक्ष इस अल्टीमेटम के साथ प्रस्तुत किया गया कि 31 दिसम्बर 1929 तक सरकार इस रिपोर्ट की सिफ़ारिशों को स्वीकार कर ले नहीं तो कांग्रेस अपना जन-आन्दोलन प्रारम्भ कर देगी। नेहरू रिपोर्ट अपनी कमियों के बावजूद भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व

करने में सफल रही। इसकी अधिकांश सिफ़ारिशों को गवर्नर जनरल लॉर्ड इर्विन तथा पूर्व प्रशासक मैल्कम हैली ने न्याय संगत माना। 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में सरकार को इसकी अनेक सिफ़ारिशों को अमल में लाना पड़ा।

6.7 1929 तथा 1930 में भारत का राजनीतिक घटनाक्रम

6.7.1 कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वराज के लक्ष्य की घोषणा तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ

सरकार ने नेहरू रिपोर्ट की सिफ़ारिशों पर कोई अमल नहीं किया। कांग्रेस द्वारा दिए गए 31 दिसम्बर, 1929 के ल्टीमेटम की सरकार ने पूर्ण उपेक्षा की। 1929 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में अध्यक्ष पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 31 दिसम्बर, 1929 पूर्ण स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया।

इस ऐतिहासिक घोषणा का हार्दिक स्वागत किया गया। बनारस से प्रकाशित हिन्दी पत्र आज के 2 जनवरी, 1930 के सम्पादकीय में भारत के इस स्वतन्त्रता को धर्मयुद्ध कहा गया-

स्वतन्त्रता, पूर्ण स्वतन्त्रता - हमारा ध्येय है, यह कहते कितना आनन्द होता है। अभी हम स्वतन्त्र नहीं हुए हैं, पर वही हमारे जीवन का उद्देश्य है, वही राष्ट्र का लक्ष्य है। इन दो निर्णयों के लिए हम राष्ट्र को बधाई देते हैं । आइए, आज हम सब मिलकर परमात्मा से नम्रतापूर्वक प्रार्थना करें - भगवान! हम पर दया करो! हमें शक्ति दो, कर्तव्य पथ पर दृढ़ रखो, हमारे प्यार देश का उद्धार हमसे कराओ, यतोधर्मस्ततोजयः, इस वाक्य पर दृढ़ विश्वास रख सारा राष्ट्र एक बार स्वर से कहे - भारतमाता की जय, स्वतन्त्रता की जय।

सरकार ने पूर्ण स्वराज की मांग को स्वीकार किए जाने के कांग्रेस के अल्टीमेटम की जब नितान्त उपेक्षा की तो 26 जनवरी, 1930 को स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया गया तथा मार्च, 1930 में पूर्ण स्वराज की प्राप्ति के लिए गांधीजी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ किया गया।

6.7.2 साइमन कमीशन की संस्तुतियां तथा उनका आंकलन

27 मई, 1930 को साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट तथा अपनी संस्तुतियां प्रस्तुत कीं जिनका कि प्रकाशन जून, 1930 में हुआ। इस कमीशन की दुर्भावना के विषय में भारतीयों की आशंकाए सही साबित हुईं।

1. इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह बताया कि भारत में जाति, धर्म और क्षेत्र के आधार पर लोग बटे हुए हैं और इन कारणों से भारतीयों को केन्द्र में स्वशासन प्रदान किए जाने से अशान्ति फैलने का खतरा है किन्तु प्रान्तीय स्तर पर लगभग उत्तरदायी सरकार दिए जाने की व्यवस्था की जा सकती है।

2. भारतीय जनता में राजनीतिक चेतना के प्रसार हेतु मताधिकार की शर्तों में ढील तथा विधान सभाओं व विधान परिषदों को विस्तृत किए जाने की संस्तुति की गई किन्तु केन्दीय व्यवस्था में कोई आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं समझी गई। इस बात पर ज़ोर दिया गया कि केन्द्र में किसी भी मूल्य पर द्वैध शासन स्थापित न किया जाए।

3. इस कमीशन ने अपनी संस्तुतियों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को पूर्ववत लागू रखे जाने की सिफ़ारिश की थी। यदि आगे चलकर हिन्दू-मुस्लिम तनाव में कमी आ जाए तो अवश्य मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिए जाने की व्यवस्था को समाप्त किया जा सकता था।

4. कमीशन ने भारत में ब्रिटिश अधीन भारत तथा भारतीय रियासतों का एक संघ बनाए जाने की संस्तुति की।

   भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड इर्विन तथा भारत में दीर्घकाल तक उच्च प्रशासनिक पद पर कार्यरत मैल्कम हेली ने इस रिपोर्ट की संस्तुतियों को भारत विरोधी माना और तुरन्त भारतीयों की सहमति से सुधार योजना तैयार किए जाने की सिफ़ारिश की।

प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय गोलमेज़ सभाओं में तथा 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में साइमन कमीशन की संस्तुतियों की ही भांति साम्प्रदायिक वैमनस्य की आड़ लेकर केन्द्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना को अल्पसंख्यकों के साथ अन्याय बताया गया। 1935 के एक्ट में प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की साइमन कमीशन की संस्तुति को स्वीकार कर लिया गया और प्रान्तीय स्वायत्तता की व्यवस्था की गई। साइमन कमीशन की एक और संस्तुति - ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों के संघ की स्थापना को भी 1935 के एक्ट में स्वीकार कर लिया गया। किन्तु कुल मिलाकर साइमन कमीशन के गठन से लेकर उसके विरोध के दमन और उसकी संस्तुतियों के घटना चक्र में यह स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज़ फूट डालकर शासन करने की अपनी नीति से बाज़ नहीं आ रहे हैं और भारत में विघटनकारी शक्तियों को वह लगातार महत्व दे रहे हैं। अभी अंग्रेज़ शासक भारत की जनता की स्वशासन दिए जाने की मांग को पूर्णरूपेण स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं और भारतीयों को अपने राजनीतिक लक्ष्य प्राप्त करने के लिए एक और देश-व्यापी आन्दोलन करने की आवश्यकता है।

6.8 गांधी- इरविन समझौता

6.8.1. पृष्टभूमि

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में गांधी–इरविन समझौता एक अत्यंत महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में उभर कर सामने आया। 1920 के दशक के उत्तरार्ध में भारत की राजनीतिक स्थिति अत्यंत तनावपूर्ण थी। ब्रिटिश सरकार दमनकारी नीतियों का उपयोग कर रही थी, जबकि भारतीय जनता स्वतंत्रता की माँग के लिए असहयोग, बहिष्कार और सत्याग्रह जैसे शांतिपूर्ण तरीकों को अपनाती जा रही थी। 1930 में नमक सत्याग्रह (Dandi March) के बाद अंग्रेजी शासन की नींव हिलने लगी थी। इस जन-आंदोलन की तीव्रता और वैश्विक प्रतिक्रिया ने ब्रिटिश सरकार को वार्ता की मेज पर आने के लिए बाध्य कर दिया। वायसराय लॉर्ड इरविन स्थिति की गंभीरता को समझ चुके थे।अतः वह इस स्थिति का समाधान चाहते थे। उन्हें अब यह महसूस होने लगा था कि भारत में स्थिरता बहाल करने का एकमात्र तरीका गांधी एवं कांग्रेस नेतृत्व से संवाद स्थापित करना है।दूसरी ओर गांधीजी किसी भी समझौते को तभी स्वीकार करने को तैयार थे, जब उसमें ब्रिटिश दमन नीतियों का अंत और सत्याग्रहियों की रिहाई प्राथमिकता में हो।25 जनवरी, 1931 को गांधीजी और कांग्रेस कार्यसमिति के अन्य सभी सदस्यों को बिना शर्त

रिहा कर दिया गया |अतः अब कांग्रेस अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल एवं कांग्रेस कार्यसमिति ने गांधीजी को वायसराय के साथ बातचीत शुरू करने की अनुमति दे दी।अंततः फरवरी 1931 में औपचारिक वार्ताएँ प्रारंभ हुईं, जो कई दिनों तक चलीं। इन वार्ताओं के परिणामस्वरुपइसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में **5 मार्च 1931**को**गांधी–इरविन**समझौता हुआ, जिसे भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष की दिशा बदलने वाली महत्वपूर्ण घटना माना जाता है।

6.8.2. गांधी-इरविन समझौते की मुख्य शर्तें

वायसराय लॉर्ड इरविन एवं महात्मा गांधी के बीच निम्नलिखित बिन्दुओं में स्वीकृति बनी–

1. दोनों पक्षों ने भारत के आगामी संविधान के विषय में संघीय प्रणाली को स्वीकार किया। प्रशासन में भारतीय उत्तरदायित्व की स्थापना स्वीकार की गई लेकिन अल्पसंख्यकों, प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों तथा भारतीय वित्तीय कुशलता के लिए कुछ विशिष्ट अधिकारों का अंग्रेजों के हाथ में रखना भी स्वीकार कर लिया गया।

2. कांग्रेस को दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया और कांग्रेस के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित किया गया।

3. भारतीय क्रांतिकारियों को स्वदेशी के प्रचार की अनुमति थी लेकिन बायकाट के राजनीतिक प्रयोग को भी स्थगित कर दिया गया।

3. ब्रिटिश प्रशासन द्वारा पुलिस के अत्याचारों की जांच नहीं की जाएगी।

4. ब्रिटिश प्रशासन द्वारा सरकारी निषेधात्मक अध्यादेश वापस ले लिए जाएंगे।

5. ब्रिटिश प्रशासन द्वारा भारतीय संस्थाओं और संगठनों को जिन्हें अवैध घोषित किया गया था पुनः कार्य करने की सुविधा प्रदान की जाएगी।

6. ब्रिटिश प्रशासन द्वारा भारतीय राजनीतिक बंदियों को छोड़ दिया जाएगा। उनकी जब्त की हुई संपत्ति उन्हें लौटा दी जाएगी।

7. ब्रिटिश सरकार की ओर से भारतीय लोगों को नमक बनाने की छूट दे दी गई यदि उनके निकटवर्ती क्षेत्रों में यह कार्य हो सकता हो।

8. ब्रिटिश प्रशासन द्वारा भारतीयोंको शराब प्रतिष्ठानों और बहुराष्ट्रीय कपड़ा खुदरा विक्रेताओं के सामने शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शन की अनुमति देने का निर्णय लिया।

9. ब्रिटिश प्रशासन द्वारा भारतीयों के उन जुर्मानों को माफ करने पर सहमति, जिनका भुगतान अभी तक नहीं किया गया था।

वायसराय लॉर्ड इरविन ने महात्मा गांधी की निम्नलिखित मांगों को अस्वीकार कर दिया-

1. **इरविन ने**क्रांतिकारी भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव की मृत्युदण्ड की सजा को आजीवन कारावास में परिवर्तित करने की मांग को अस्वीकार किया गया |

2. **इरविन ने**सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान पुलिस दुर्व्यवहार की सार्वजनिक जांच की मांग को अस्वीकार किया गया।

गांधीजी ने इस समझौते को उचित ठहराया। उनके अनुसार इसका सबसे बड़ा लाभ यह था कि पहली बार अंग्रेज सरकार ने भारतीय नेताओं के साथ समानता के स्तर पर बातचीत की थी। वह इस समझौते को दोनों पक्षों की विजय कहते थे। लेकिन अधिकांश नेता गांधीजी के इस मूल्यांकन से सहमत नहीं थे। एक ओर गांधीजी पूर्ण स्वराज्य के समर्थक थे दूसरी ओर उन्होंने कुछ विषयों से सम्बन्धित अंग्रेजों के विशेषाधिकारों को भी स्वीकार कर लिया। जवाहरलाल नेहरू इस समझौते से अत्यधिक दुखी थे क्योंकि एक साल भर के प्रयत्न के पश्चात् अब पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य व्यावहारिक रूप में छोड़ दिया गया।

गांधीजी तीन क्रांतिकारियों - भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को दिए गए मृत्युदंड में कुछ कमी न करवा सके। गांधीजी द्वारा किए गए समझौते से युवावर्ग बहुत असंतुष्ट हुआ। दूसरी ओर इरविन की नीति से अंग्रेजी नौकरशाही अत्यधिक असंतुष्ट थी। वह इस समझौते को अंग्रेजी सरकार की हार मानती थी और इरविन के चले जाने के बाद इस समझौते को निरर्थक बनाने के लिए हर संभव प्रयत्न करती रही।

यह समझौता कांग्रेस द्वारा स्वीकृत हुए बिना लागू नहीं हो सकता था। इसलिए कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन (जो दिसंबर, 1930 में होने वाला था और अवज्ञा आंदोलन के फलस्वरूप नहीं हुआ था) मार्च, 1931 में कराची में बुलाया गया। वहां इस समझौते को स्वीकृत कर लिया गया। कांग्रेस की नई वर्किंग कमेटी ने दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भेजे जाने वाले कांग्रेसी शिष्टमंडल के सदस्यों से विचार-विमर्श किया और अंत में अकेले गांधीजी को कांग्रेसी प्रतिनिधि के रूप में भेजा गया। गांधीजी के लंदन जाने के पूर्व ही नए गवर्नर जनरल विलिंगडन ने यह दिखा दिया कि वह गांधी-इरविन समझौते के उल्लंघन में संकोच नहीं करता था। कई बार गांधीजी को यह चेतावनी देनी पड़ी कि वह लंदन नहीं जाएंगे यदि यू. पी. तथा अन्य स्थानों पर सरकारी दमन कम नहीं किया गया। गांधीजी और विलिंगडन में कुछ समझौता होने के बाद ही वह गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए लंदन गए।

6.8.3. गांधी-इरविन समझौते का महत्व

गांधी -इरविन समझौता इतिहास में इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को लाखों भारतीयों का समर्थन हासिल करने और एक राजनीतिक ताकत के रूप में स्थापित होने में सक्षम बनाया। इसके अतिरिक्त, इसने भारत सरकार अधिनियम 1935 का मार्ग प्रशस्त किया, जिसने भारत की द्वैध शासन प्रणाली का विस्तार किया और भारतीयों को विधानमंडल के दोनों सदनों में सांसद के रूप में कार्य करने की अनुमति दी। 1937 के प्रांतीय चुनावों के बाद, निर्वाचित भारतीय सांसदों ने सरकार को अधिकार सौंपे।

गांधी–इरविन समझौता भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में एक ऐतिहासिक समझौता था, जिसने दो विपरीत विचारधाराओं को वार्ता की मेज़ पर लाकर खड़ा कर दिया। इस समझौते ने भारत में अहिंसक आंदोलन की शक्ति

को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दिलाई। यद्यपि इसकी सीमाएँ थीं, परंतु यह वह मोड़ था जिसने आगामी वर्षों में स्वतंत्रता संघर्ष को नई दिशा दी और 1947 की स्वतंत्रता के लिए आधार तैयार किया।

6.9 गोलमेज सम्मलेन (1930 – 1932)

भारत में संवैधानिक सुधारों की दिशा में गोलमेज़ सम्मेलनों का आयोजन ब्रिटिश सरकार द्वारा किया गया एक महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रयास था। 1920 के दशक के अंत तक भारत में राष्ट्रीय आंदोलन अत्यधिक उग्र रूप ले चुका था। साइमन कमीशन का बहिष्कार, लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज की घोषणा, और 1930 का नमक सत्याग्रह अंग्रेजी शासन की नीतियों के विरुद्ध एक बड़े जनसंग्राम का संकेत थे। ऐसे वातावरण में ब्रिटिश शासन को भारत की संवैधानिक मांगों पर विचार करने के लिए एक व्यापक संवाद की आवश्यकता महसूस हुई।

साइमन कमीशन तथा लार्ड इरविन ने इंग्लैंड सरकार पर दबाव डाला कि भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाया जाए जो भारतीय सवैधानिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करे। इरविन की योजना थी कि कांग्रेस के प्रभाव को कम किया जाए और भारतीय प्रतिनिधियों को इस प्रकार चुना जाए कि राष्ट्रीय विचारधारा अल्पमत में दिखाई पड़े। गोलमेज सम्मेलन की योजना को इंग्लैंड सरकार ने स्वीकार कर लिया। सम्मेलन में प्रायः सभी विचारधाराओं के व्यक्तियों को आमंत्रित किया गया। सांप्रदायिक (मुसलमान, हिंदू महासभा, सिक्ख, ईसाई, अनुसूचित जातिया) वर्गों, जमींदारों, उद्योगपतियों, यूरोपीयनों, भारतीय नरेशों, इंग्लैंड के विभिन्न राजनीतिक दलों और भारतीय नरमपंथियों के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया। मुसलमान प्रतिनिधियों को चुनने में इरविन फजली हुसैन से अधिक प्रभावित हुआ। मार्च, 1930 में गांधीजी ने अवज्ञा आंदोलन आरंभ कर दिया इसलिए कांग्रेस ने प्रथम गोलमेज सम्मेलन में भाग नहीं लिया। अन्य दलों तथा हितों के प्रतिनिधि सदस्यों का चयन इस प्रकार किया गया कि भारतीय प्रतिनिधियों में मतभेद स्पष्ट हो जाए। अधिकांश सदस्यों का चयन किसी विशेष हित के समर्थन तथा पोषण के लिए किया गया था। अंग्रेज प्रशासक यह भी दिखाना चाहते थे कि अंग्रेजी नियंत्रण के बिना भारतीय व्यवस्था नहीं चल सकेगी।

इसी पृष्ठभूमि में**1930 से 1932**के बीच**तीन गोलमेज़ सम्मेलनों**का आयोजन लंदन में किया गया। इन सम्मेलनों का उद्देश्य भारत में भविष्य के संवैधानिक ढांचे पर विभिन्न भारतीय और ब्रिटिश राजनीतिक समूहों से विचार-विमर्श करना था। यद्यपि ये सम्मेलन तुरंत कोई निर्णायक समाधान नहीं दे सके, परंतु इन्होंने भारत के संवैधानिक विकास की दिशा को अवश्य निर्धारित किया।

6.9.1. प्रथम गोलमेज सम्मलेन (12 नवंबर, 1930- 19 जनवरी, 1931)

इस सम्मेलन का उद्घाटन जार्ज पंचम ने किया। सम्मेलन की अध्यक्षता इंग्लैंड के प्रधानमंत्री रेम्जे मैकडोनल्ड ने की। जार्ज ने भारत के राष्ट्रीय विकास का वर्णन किया और विभिन्न वर्गों तथा अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। आरंभ में ही कंजर्वेटिव और लिबरल दलों के प्रतिनिधियों और भारतीय प्रतिनिधियों में मौलिक मतभेद स्पष्ट हो गया। भारतीय वक्ता भारत के लिए एक व्यवस्था चाहते थे जिसमें भारतीयों को अधिकार सौंप दिए जाएं। इंग्लैंड के प्रतिनिधि भारत में डोमिनियन स्टेटस लागू करने के पक्ष में नहीं थे। सम्मेलन के कार्य को पूरा करने के लिए विभिन्न उपसमितियां बनाई गईं जिनमें विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श

आरंभ हुआ। अल्पसंख्यकों से सम्बन्धी उपसमिति को छोड़कर शेष समितियों का कार्य सुचारु रूप से चलता रहा। इस समिति में अंबेडकर ने अनुसूचित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग की। यह संभव था कि मुसलमानों के उचित अधिकारों की मांग की समस्या हल हो जाती लेकिन मुसलमानों में दो विचारधाराएं समान रूप से प्रभावशाली थीं। सांप्रदायिक पृथक निर्वाचन और संयुक्त निर्वाचन प्रणाली, जनसंख्या के अनुपात तथा अधिप्रतिनिधित्व की मांग। बंगाल पंजाब के नेता जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व चाहते थे लेकिन शेष क्षेत्रों में अधिप्रतिनिधित्व की बात अधिक प्रभावशाली थी। इसलिए कोई सहमति न हो सकी। 19 जनवरी, 1931 को पहला अधिवेशन समाप्त हुआ। इस अधिवेशन की समाप्ति पर रेम्जे मैकडोनल्ड ने इंग्लैंड सरकार की नीति सम्बन्धी एक घोषणा की जिसमें निम्न बातों पर बल दिया गया।

1. प्रधानमंत्री ने यह भी आशा व्यक्त की कि अवज्ञा आंदोलन शीघ्र ही समाप्त करके कांग्रेस सरकार से सहयोग करेगी।

2. भारतीय प्रशासन का उत्तरदायित्व विधान सभाओं को दिया जाएगा। लेकिन अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा के लिए उचित व्यवस्था की जाएगी।

3. एक अखिल भारतीय संघ की स्थापना की जाए।प्रतिरक्षा और विदेशी विभागों तथा संकटकालीन अधिकारों को छोड़कर शेष क्षेत्रों में केंद्र में कार्यकारिणी का विधानसभा के प्रति उत्तरदायित्व स्थापित करने का प्रयत्न किया जाएगा।प्रांतों में पूर्ण उत्तरदाई प्रशासन लागू किया जाएगा और संघीय तथा प्रांतीय सरकारों का कार्यक्षेत्र स्पष्ट कर दिया जाएगा।

4. सांप्रदायिक समस्या का निवारण विभिन्न संप्रदायों पर निर्भर करेगा।

प्रथम अधिवेशन की समाप्ति पर मैकडोनल्ड की इस घोषणा से कांग्रेस वर्किंग कमेटी बहुत असंतुष्ट हुई लेकिन थोड़े ही दिनों पश्चात् गांधी-इरविन बातचीत आरंभ हो गई जिसका परिणाम 5 मार्च, 1931 को गांधी-इरविन समझौता हुआ।

6.9.2. द्वितीय गोलमेज सम्मलेन (7 सितंबर, 1931 से 1 दिसंबर, 1931)

पहले अधिवेशन की समाप्ति और दूसरे अधिवेशन के आरंभ होने में दो मुख्य राजनीतिक परिवर्तन हुए। भारत में इरविन के स्थान पर विलिंगडन गवर्नर जनरल बन गया और इंग्लैंड में लेबर मंत्रिमंडल के स्थान पर सर्वदलीय मंत्रिमंडल बना जिसमें कंजर्वेटिव दल का बहुमत था। अक्तूबर, 1931 में इंग्लैंड में निर्वाचन के परिणामस्वरूप कंजर्वेटिव दल का मंत्रिमंडल बना। इसके बाद संवैधानिक विकास अत्यधिक कठिन था।दूसरे अधिवेशन में भाग लेने के लिए कांग्रेस ने अपने एकमात्र प्रतिनिधि महात्मा गांधी को भेजा। गांधीजी अपने साथ डॉ. अन्सारी को ले जाना चाहते थे लेकिन वह इसमें असमर्थ रहे। यह अधिवेशन 7 सितंबर, 1931 को आरंभ हो गया। यद्यपि गांधीजी 12 सितंबर को लंदन पहुंच सके।इस अधिवेशन का मुख्य आकर्षण गांधीजी का व्यक्तित्व था। अन्य राजनीतिक नेताओं की अपेक्षा उनका आग्रह प्रेम और सद्भावना पर था। वह इंग्लैंड और भारत के परस्पर सम्बन्ध समानता के आधार पर चाहते थे।

इस अधिवेशन में ब्रिटिश प्रशासन के समक्ष मुख्य समस्या संघीय ढांचे और अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा की व्यवस्था थी। दोनों ही विषयों से सम्बन्धित समितियों में गांधीजी थे। गांधीजी ने कांग्रेस के राष्ट्रीय होने, भारत में पूर्ण रूप से उत्तरदायी सरकार की स्थापना की आवश्यकता और गवर्नर जनरल के विशेषाधिकारों की आवश्यकता पर बल दिया। लेकिन इन बातों का व्यावहारिक निर्णयों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अल्पसंख्यकों के हितों के प्रश्न पर सबसे अधिक वाद-विवाद हुआ। विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों ने आपसी विचार-विमर्श से एक योजना तैयार की जिसे गांधीजी ने स्वीकार करने से मना कर दिया। डॉ. अंबेडकर ने गांधीजी के समक्ष यह प्रस्ताव भी रखा था कि अनुसूचित तथा दलित वर्गों के लिए कुछ स्थान आरक्षित कर दिए जाएं और संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा उनका चुनाव हो। गांधीजी ने इसे अस्वीकार कर दिया। मैकडोनल्ड ने यह भी कहा कि अल्पसंख्यकों द्वारा किया गया समझौता साढ़े ग्यारह करोड़ जनसंख्या द्वारा स्वीकृत था। गांधीजी ने इसका प्रतिकार किया और कांग्रेस को 85 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधि बताया। उन्होंने यह बात कही कि यदि भारतीय प्रतिनिधि आपस में सांप्रदायिक समस्या का हल नहीं कर सकते तो उन्हें अंग्रेज सरकार पर इसका निर्णय छोड़ देना चाहिए। अधिकांश वर्गों ने मैकडोनल्ड के निर्णय के प्रति आस्था प्रकट की। गांधीजी ने भी केवल मुसलमानों और सिक्खों के लिए मैकडोनल्ड की मध्यस्थता स्वीकार की। सांप्रदायिक समस्या के जटिल होने का मूल कारण अंग्रेज सरकार की वह नीति थी जिसके अनुसार इस समस्या के हल को संवैधानिक प्रगति के लिए आवश्यक बताया गया।

दूसरा अधिवेशन कोई भी समस्या हल करने में असफल रहा।भारत के अंग्रेजी प्रतिनिधियों और अन्य अल्पसंख्यकों में एक प्रकार का गठबंधन था जो राष्ट्रीय प्रयत्नों को असफल कराने के लिए उत्तरदायी था। इंग्लैंड में कंजर्वेटिव दल के सत्तारूढ़ हो जाने के पश्चात् भारतीय सवैधानिक प्रगति के प्रति दृष्टिकोण ही बदल चुका था। गांधीजी की असफलता भी स्पष्ट ही थी। वह जिस स्तर पर सम्मेलन में बातचीत करना चाहते थे वह आदर्श, भ्रातृत्व, प्रेम और सद्भावना पर आधारित था। सुलझे हुए राजनीतिज्ञों को यह बात कम समझ में आती थी।

इस सम्मलेन में ब्रिटिश प्रशासन एवं भारतीय प्रतिनिधियों के बीच कोई भी ठोस सहमति नहीं बन सकी।गांधीजी ने इस सम्मेलन को "गहन निराशाजनक" बताया।सम्मेलन के तुरंत बाद ब्रिटिश सरकार ने भारतीय स्वतंत्रता से जुड़े आन्दोलनकारियों का दमन पुनः शुरू कर दिया ।फलस्वरूप**गांधीजी की गिरफ्तारी**और सविनय अवज्ञा आंदोलन फिर से प्रारंभ हो गया ।

6.9.3. तृतीय गोलमेज सम्मलेन ((17 नवंबर से 24 दिसंबर, 1932)

यद्यपि तीसरा **गोलमेज**अधिवेशन (17 नवंबर से 24 दिसंबर, 1932) भी हुआ लेकिन उसका कोई महत्व नहीं था। इंग्लैंड की कंजर्वेटिव सरकार और भारत में विलिंगडन के अत्याचार और आतंक के आधार पर प्रशासन चलाने की नीति से वह वातावरण समाप्त हो गया जो 1929-30 में था जब लेबर दल और इरविन भारतीय स्थिति में समझौते के आधार पर परिवर्तन चाहते थे।

इस सम्मेलन में**कांग्रेस अनुपस्थित थी**, क्योंकि उसके अधिकांश नेता जेल में थे और सरकार से गंभीर मतभेद थे।भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि**,** मुस्लिम लीग, सिख और अन्य अल्पसंख्यक समुदाय**,** दलित प्रतिनिधि (अंबेडकर सहित)**,** भारत सचिव सैमुअल होर और अन्य ब्रिटिश अधिकारी इस सम्मेलन में शामिल हुए थे |

इस सम्मेलन में ब्रिटिश प्रशासन एवं भारत के विभिन्न दलों के बीच भारत में**संघात्मक शासन प्रणाली**को स्वीकृति, प्रांतों को अधिक अधिकार, केन्द्र में संघीय ढांचे की व्यवस्था, जिसमें रियासतों की भागीदारी, अल्पसंख्यकों को विशेष प्रतिनिधित्व देने पर निर्णय लिया गया | इन्हीं निर्णयों ने आगे जाकर**1935 के भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act 1935)**का आधार तैयार किया। साथ ही 1932 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्ज़े मैकडोनल ने**कम्यूनल अवार्ड**घोषित किया, जिसमें दलितों को पृथक निर्वाचन दिया गया। यह कदम अत्यंत विवादास्पद रहा और अंततः**पूना पैक्ट (1932)**के माध्यम से इसमें संशोधन किया गया।

6.9.4.गोलमेज़ सम्मेलनों का मूल्यांकन

एक ओर यह सम्मेलन भारतीय स्वतंत्रता से जुड़े क्रांतिकारियों के उद्देश्यों को पूरा करने में असफलत रहे | जैसे - कांग्रेस और जनमानस की वास्तविक आकांक्षाएँ इन सम्मेलनों में अनदेखी की गईं।, ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारत को एकजुट करने के बजाय विभाजित करना अधिक दिखाई दिया।, विभिन्न समुदायों के अलग-अलग प्रतिनिधित्व ने मतभेदों को और गहरा कर दिया।, कोई भी निर्णायक, सर्वमान्य संविधान का ढांचा तैयार नहीं हो सका।

वहीँ दूसरी ओर यह गोलमेज़ सम्मेलन भारत के संवैधानिक इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यद्यपि ये सम्मेलन तत्काल राजनीतिक समाधान नहीं ला सके, लेकिन इन्होंने भारत सरकार अधिनियम 1935, प्रांतीय स्वायत्तता, तथा भविष्य में संविधान निर्माण की प्रक्रिया के लिए मार्ग प्रशस्त किया।इन सम्मेलनों ने यह स्पष्ट कर दिया किभारत की राजनीतिक समस्याओं का समाधान भारतीयों की सक्रिय भागीदारी के बिना संभव नहीं।यह एक ऐसा सबक था जिसने ब्रिटिश शासन को धीरे-धीरे स्वतंत्रता की दिशा में कदम बढ़ाने पर मजबूर किया।भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन अधिक संगठित हुआ।गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसक आंदोलन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चा में आया एवं ब्रिटिश सरकार पर भारत को सत्ता हस्तांतरण की दिशा में आगे बढ़ने का दबाव बढ़ा।

6.10 कम्यूनल अवार्ड

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ब्रिटिश सरकार की "फूट डालो और राज करो" की नीति कई बार स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। 1932 में रैम्ज़े मैकडोनल द्वारा घोषित**कम्यूनल अवार्ड**इसी नीति का एक महत्वपूर्ण उदाहरण था। यह भारतीय समाज को धार्मिक, जातीय, सांस्कृतिक और सामाजिक समूहों में विभाजित कर राजनीतिक प्रतिनिधित्व को खंडित करता था। भारत की राष्ट्रीय एकता, सामाजिक सामंजस्य और राष्ट्रवादी आंदोलन पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा।

भारतीय अल्पसंख्यक संप्रदायों की समस्या आपसी समझौते से हल न कर सकने के कारण रेम्जे मैकडोनल्ड ने सांप्रदायिक निर्णय की घोषणा की। इस घोषणा के अनुसार अल्पसंख्यक तथा विशेष हितों वाले संप्रदायों की संख्या भी काफी बढ़ा दी गई मुसलमान, सिक्ख, दलितवर्ग, पिछड़े हुए क्षेत्र, भारतीय ईसाई, ऐंग्लो-इंडियन,

यूरोपीयन, व्यापारिक और औद्योगिक वर्ग आदि। प्रत्येक अल्पसंख्यक संप्रदाय के लिए स्थान निर्धारित कर दिए गए और उनके प्रतिनिधियों के निर्वाचन के लिए भिन्न प्रणालियां अपनाई गई।

कम्यूनल अवार्ड की घोषणा का मुख्य कारण भारत में राजनीतिक प्रतिनिधित्व की जटिलता थी। ब्रिटिश सरकार पहले ही मुस्लिमों, सिखों, एंग्लो-इंडियन्स तथा यूरोपियनों को पृथक निर्वाचन का अधिकार दे चुकी थी। 1930–32 के**गोलमेज सम्मेलनों**में भी विभिन्न समुदायों ने पृथक प्रतिनिधित्व की माँगें रखीं। दलितों (Depressed Classes) के प्रतिनिधि डॉ. भीमराव अंबेडकर ने भी दलितों को पृथक निर्वाचन देने की मांग प्रस्तुत की थी, ताकि उनकी राजनीतिक आवाज़ स्वतंत्र रूप से उठ सके।

ब्रिटिश सरकार ने अपनी सामरिक आवश्यकता तथा भारतीय समाज की संरचनात्मक जटिलता को आधार बनाकर भारतीय प्रतिनिधित्व को और अधिक खंडित करने का निर्णय लिया। इसी का परिणाम**16 अगस्त 1932**को घोषित कम्यूनल अवार्ड था।

6.10.1. कम्यूनल अवार्ड के मुख्य बिंदु

कम्यूनल अवार्ड में कई समुदायों को पृथक या विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया। इसके मुख्य बिंदु निम्नानुसार थे:

1. अवार्ड में सबसे विवादास्पद प्रावधान**दलितों (Depressed Classes)**को पृथक निर्वाचक मंडल देना था।दलित मतदाता केवल दलित उम्मीदवारों को ही चुन सकते थे।यह एक प्रकार से दलितों को हिंदू समाज से राजनीतिक रूप से अलग इकाई बनाता था।

2. पहले से ही पृथक निर्वाचन पाए समुदायों—मुस्लिम, सिख, यूरोपियन, एंग्लो-इंडियन्स, भारतीय ईसाई, श्रमिक वर्गको पृथक प्रतिनिधित्व जारी रखा गया।

3. कुछ प्रांतों में जनसंख्या के अनुपात से अधिक सीटें विशेष समुदायों को दी गईं, जिससे उनका राजनीतिक प्रभाव बढ़ जाता।

4. अवार्ड में ब्रिटिश भारत के विभिन्न प्रांतों के लिए कुल सीटों और श्रेणियों के अनुसार सीटों के निर्धारण की विस्तृत व्यवस्था की गई।

सांप्रदायिक निर्णय की योजना इस प्रकार बनाई गई कि वास्तविक उत्तरदायी प्रशासन का विकास प्रांतों में भी न हो सके। केंद्र के संविधान के स्वरूप का स्पष्टीकरण हो जाने के बाद इन्हीं आधारों पर वहां भी ऐसा संभव न हो सकेगा। उदाहरणार्थ : पंजाब और बंगाल में मुसलमान बहुमत में होते हुए भी मुसलमान सदस्यों को बहुमत नहीं दिया गया। यू.पी., विहार, मद्रास में मुसलमानों को जनसंख्या के अनुपात से दोगुने के लगभग स्थान दिए गए। पंजाब और बंगाल में क्रमशः 55 प्रतिशत और 54.8 प्रतिशत जनसंख्या होते हुए उन्हें 49 प्रतिशत और 47.5 प्रतिशत स्थान दिए गए।

6.10.2 कम्यूनल अवार्ड का प्रभाव

गांधीजी को इस निर्णय में सबसे अधिक दुःख दलित वर्गों के लिए सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली की स्थापना से हुआ। यह अवार्ड हिंदू समाज को दो हिस्सों—ऊँची जातियों के विरुद्ध दलित वर्ग को राजनीतिक रूप से विभाजित करता था। इससे सामाजिक सामंजस्य को भारी धक्का लगा।महात्मा गांधी ने कम्यूनल अवार्ड को "दलित जातियों को हिंदू समाज से अलग करने का ब्रिटिश षड्यंत्र" कहा | यह विरोध दलितों को समाज से अलग किए बिना उनके अधिकार सुनिश्चित करने के लिए थाऔर इसके विरोध मेंगांधीजी ने 18 अगस्त को इस निर्णय के विरोध में मैकडोनल्ड को पत्र लिखा और इसी पत्र में 20 सितंबर की दोपहर से **यरवदा जेल में आमरण** अनशन करने की सूचना दी यदि उस समय तक दलित वर्गों के पृथक निर्वाचन को समाप्त नहीं कर दिया गया। सरकार पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा लेकिन हिंदू नेताओं पर अवश्य इसका प्रभाव पड़ा।

पंडित मदन मोहन मालवीय तथा अन्य हिंदुओं ने डा. अंबेडकर के साथ 19 से 24 सितंबर तक विचार-विमर्श किया। कम्यूनल अवार्ड को लेकर गांधी और डॉ. अंबेडकर के बीच लंबी वार्ताएँ चलीं। गांधीजी के अनशन और देशव्यापी चिंता के बाद दोनों पक्षों ने समाधान की तलाश शुरू की।

गांधी–अंबेडकर वार्ता का परिणाम**25 सितंबर 1932**को **'पूना पैक्ट'**के रूप में सामने आया।डॉ. अंबेडकर ने इस अवसर से पूरा लाभ उठाया और 71 के स्थान पर 148 स्थान दलित वर्गों के लिए आरक्षित करा लिए इस प्रकार उसी आधार पर समझौता हुआ जो अंबेडकर ने लंदन में गांधीजी के समक्ष प्रस्तुत किया था। यद्यपि दलित वर्गों के लिए निर्वाचन हिंदुओं के साथ सम्मिलित चुनाव क्षेत्रों द्वारा ही होगा। इस निर्वाचन की प्रणाली यह थी कि पहले दलित वर्ग प्रत्येक आरक्षित स्थान के लिए चार सदस्यों का चुनाव करेंगे और बाद में हिंदू चुनाव क्षेत्रों से उनमें से किसी एक को चुन लिया जाएगा। पूना पैक्ट के बाद गांधीजी ने 26 सितंबर को अपना अनशन समाप्त किया और कम्यूनल अवार्ड का विवाद शांत हो गया।

कम्यूनल अवार्ड ब्रिटिश सरकार का एक ऐसा राजनीतिक कदम था जिसने भारतीय समाज को धार्मिक और सामाजिक खंडों में बाँटने का प्रयास किया। यद्यपि इसका उद्देश्य दलितों और अन्य अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देना प्रदर्शित किया गया, परंतु वास्तविकता में यह भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने का औपनिवेशिक प्रयास था।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए।

1. भारतीयों की दृष्टि में साइमन कमीशन के गठन में क्या दोष थे?
2. नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
3. साइमन कमीशन की संस्तुतियों के गुण-दोषों का परीक्षण कीजिए।

6.8 सारांश

1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था अत्यन्त भ्रामक एवं दोषपूर्ण थी। मडीमैन कमेटी ने प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था को दोषपूर्ण स्वीकार किया था। स्वराज दल ने जन-प्रतिनिधि सभाओं में द्वैध शासन की कमियों को उजागर किया था तथा संवैधानिक सुधारों की मांग की थी। 1919 के एक्ट

में 10 सालों के भीतर संवैधानिक सुधारों के लिए एक स्टेट्यूटरी कमीशन की स्थापना किए जाने का प्रावधान था। नवम्बर, 1927 में जॉन साइमन के नेतृत्व में ब्रिटिश सांसदों का एक कमीशन भविष्य में संवैधानिक सुधारों की योजना बनाने के लिए गठित कर दिया। सर्व-श्वेत सात सदस्यों के इस कमीशन में कोई भी भारतीय सदस्य नहीं था। साइमन कमीशन का देश में हर स्थान पर काले झण्डे दिखाकर विरोध हुआ। कांग्रेस के प्रमुख नेता, लाला लाजपत राय पुलिस की लाठियों से घायल हुए। बाद में लाला जी की इसी कारण मृत्यु हो गई।

भारतीय राजनीतिक दलों ने एक सर्वमान्य संवैधानिक योजना बनाने का निश्चय किया और मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। नेहरू रिपोर्ट की मुख्य सिफ़ारिशें थीं - भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत डोमिनियन स्टेटस प्रदान किया जाए। भारत के नागरिकों के मूल अधिकारों को लेखबद्ध किया जाए तथा वयस्क मताधिकार को भारत में लागू किया जाए।

मई, 1930 में साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह बताया कि भारतीयों को स्वशासन प्रदान किए जाने से अशान्ति फैलने का खतरा है। इस कमीशन ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को पूर्ववत लागू रखे जाने की सिफ़ारिश की थी।कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू ने 31 दिसम्बर, 1929 पूर्ण स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया तथा मार्च, 1930 में पूर्ण स्वराज प्राप्ति के लिए गांधीजी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ किया गया। साइमन कमीशन की संस्तुति पर 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट 1935 में भारतीयों प्रान्तीय स्वायत्तता प्रदान कर दी गई।

6.9 पारिभाषिक शब्दावली

सर्व-श्वेत सदस्योंका कमीशन: सभी गोरे (यूरोपीय) सदस्यों का कमीशन

मुस्लिम बहुल राज्यः ऐसे राज्य जहां कि मुसलमानों का बहुमत हो

डोमिनियन स्टेटसः अधिराज्य पद (ब्रिटिश साम्राज्य का अंग रहते हुए स्वशासन का अधिकार)

स्टेट्यूटरीः वैधानिक

अल्टीमेटमः समय सीमाबद्ध चेतावनी

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 6.4.2 सर्व-श्वेत साइमन कमीशन के गठन की भारतीयों द्वारा आलोचना
2. देखिए 6.6 नेहरू रिपोर्ट
3. देखिए 6.7.2 साइमन कमीशन की संस्तुतियां तथा उनका आकलन

6.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (भाग 4), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फा़र फ्रीडम, बम्बई, 1969

चन्द्रा, बिपन - नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली, 1979

सिंह, अयोध्या - भारत का मुक्ति संग्राम, दिल्ली, 1977

आज़ाद, अबुल कलाम - इण्डिया विन्स फ्रीडम, बम्बई, 1959

सील, अनिल - दि एमरजेन्स ऑफ़ इण्डियन नेशनलिज़्म, कैम्ब्रिज, 1968

6.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

तेन्दुलकर, जी0 डी0 - महात्मा, भाग 2, बम्बई, 1965

नेहरू, जवाहर लाल - एन आटोबायोग्राफ़ी, लन्दन, 1936

सीतारमैया, पी0 - हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, बम्बई, 1936

6.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. साइमन कमीशन के बहिष्कार पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

इकाई सात

सविनय अवज्ञा आन्दोलन

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन

7.3.1 सविनय अवज्ञा आन्दोलन से पूर्व की स्थिति

7.3.2 नमक कानून के उल्लघंन हेतु डांडी मार्च

7.3.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन

7.3.3.1 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का विस्तार

7.3.3.2 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आर्थिक पक्ष

7.3.3.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का राजनीतिक प्रभाव

7.4 गांधी-इर्विन समझौता तथा उसके गुण-दोष

7.4.1 गांधी-इर्विन समझौता

7.4.2 गांधी-इर्विन समझौते के गुण-दोष

7.4.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद का राजनीतिक घटनाचक्र

7.4.4 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आंकलन

7.5 सारांश

7.6 पारिभाषिक शब्दावली

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

7.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम सभी भारतीय राजनीतिक दलों द्वारा साइमन कमीशन के बहिष्कार, सर्वदलीय सम्मेलन द्वारा नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों तथा सरकार द्वारा उनकी नितान्त उपेक्षा किए जाने की चर्चा कर चुके हैं। भारतीयों द्वारा डोमिनियन स्टेटस तथा पूर्ण स्वराज्य की मांग की ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा सर्वथा उपेक्षा किए जाने पर कांग्रेस ने 26 जनवरी, 1930 को स्वतन्त्रता दिवस मनाया। पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने तथा दमनकारी एवं शोषक नमक कानून को तोड़ने के उद्देश्य से गांधीजी ने डांडी यात्रा कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया।

ब्रिटिश भारतीय सरकार ने इस शान्तिपूर्ण आन्दोलन को निर्ममता के साथ कुचलने के प्रयास किए और आन्दोलन को कमज़ोर करने के लिए विघटनकारी तत्वो को बढ़ावा देना प्रारम्भ कर दिया। 1930, 1931 तथा 1932 में आयोजित तीनों गोलमेज़ सभाओं में उसकी दुराशयता के स्पष्ट दर्शन हुए फिर भी सरकार सविनय अवज्ञा आन्दोलन में उठाई गई पूर्ण स्वराज की मांग को कमसे कम प्रान्तीय स्तर पर प्रदान करने के लिए बाध्य हुई। 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रान्तीय स्वायत्तता की व्यवस्था इसका प्रमाण है।

यह आन्दोलन गांधीजी का सबसे अनुशासित आन्दोलन सिद्ध हुआ और इसने प्रेस के माध्यम से विश्व जनमत को अपनी ओर करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। इस आन्दोलन के बाद गांधीजी सामाजिक असमानता, राजनीतिक दमन, साम्राज्यवाद, नस्लवाद और अलगाववाद के विरुद्ध अहिंसात्मक संघर्ष करने वालों के मार्ग दर्शक बन गए। अमेरिका के मार्टिन लूथर किंग जूनियर तथा दक्षिण अफ्रीका के नेल्सन माण्डेला ने गांधीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन से प्रेरणा लेकर अपने राजनीतिक और सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त किया।

इस इकाई में आपको ब्रिटिश भारतीय सरकार की चालों और कुचक्रों से अवगत कराया जाएगा और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा विश्व-राजनीति में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के योगदान का आकलन किया जाएगा।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वराज के लक्ष्य की घोषणा, सविनय अवज्ञा आन्दोलन अर्थात् नमक सत्याग्रह, गांधी-इर्विन समझौता, लन्दन में 1930, 31 तथा 32 में आयोजित तीनों गोल मेज़ सभाओं में उठाए गए मुद्दों, पूना पैक्ट तथा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व विश्व-राजनीति में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के योगदान से अवगत कराया जाएगा। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे -

1. सविनय अवज्ञा आन्दोलन की पृष्ठभूमि के विषय में।
2. सविनय अवज्ञा आन्दोलन अर्थात् नमक सत्याग्रह के परिप्रेक्ष्य में कांग्रेस की आकांक्षाओं, उसकी रणनीति तथा उसके देश-व्यापी प्रभाव के विषय में।
3. 1931 के गांधी-इर्विन समझौते के विषय में।
4. स्विनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगन के बाद के राजनीतिक घटनाचक्र के विषय में।

5. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व विश्व-राजनीति में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के योगदान के आकलन के विषय में।

7.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन

7.3.1 सविनय अवज्ञा आन्दोलन से पूर्व की स्थिति

1929 से समस्त विश्व आर्थिक मन्दी के दौर से गुज़र रहा था। भारत में भी भुखमरी, बेरोज़गारी, औद्योगिक एव व्यापारिक अवनति का दौर था। इस संकट में अंग्रेज़ किसी भी मूल्य पर भारत पर अपनी पकड़ कमज़ोर नहीं करना चाहते थे इसलिए भारतीयों की स्वशासन की मांग को उनके द्वारा बार-बार अनसुना किया जा रहा था। साइमन कमीशन की विफलता ने सरकार और भारतीय राजनीतिक दलों के मध्य टकराव की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। सरकार द्वारा नेहरू रिपोर्ट में भारतीयों को डोमिनियन स्टेटस दिए जाने की संस्तुति की उपेक्षा करने से स्थिति और भी बिगड़ गई थी। कांग्रेस लन्दन में आयोजित की जाने वाली गोलमेज़ सभाओं में भारतीयों को डोमिनियन स्टेटस दिए जाने पर विचार-विमर्श करवाए जाने की मांग कर रही थी। सरकार ने यह साफ़ कर दिया कि भारत के राजनीतिक भविष्य का निर्णय ब्रिटिश पार्लियामेन्ट करेगी न कि स्वयं भारतीय जनता। यह साफ़ हो गया था कि एक विदेशी शासक और परतन्त्र प्रजा के मध्य उत्तरदायी सरकार की स्थापना के मुद्दे पर कोई समझौता नहीं हो सकता। साइमन कमीशन की कूटनीतिक चाल को नकारते हुए कांग्रेस ने 1929 के प्रारम्भ में ही ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आन्दोलन करने का निश्चय कर लिया था। मार्च, 1929 में अपने पत्र नवजीवन में स्वराज्य प्राप्ति हेतु गांधीजी ने सविनय अवज्ञा के औचित्य पर दलील देते हुए लिखा था -

मैं भलीभांति जानता हूँ कि सविनय अवज्ञा कैसी भयंकर चीज़ है। लेकिन जो आदमी आज़ादी का भूखा हो, वह क्या करे? आज़ादी के लिए तड़पते हुए मनुष्य के लिए, आज़ादी के पीछे पागल बने हुए व्यक्ति के लिए अनेक जोखिमों को अपने सिर लेने के सिवा कोई रास्ता ही नहीं है।

29 दिसम्बर से 31 दिसम्बर, 1929 तक लाहौर में चले कांग्रेस के अधिवेशन में तत्कालीन अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू ने 31 दिसम्बर को कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता घोषित कर दिया। इस ऐतिहासिक घोषणा का हार्दिक स्वागत किया गया । बनारस से प्रकाशित आज के 2 जनवरी, 1930 के अंक के सम्पादकीय में भारत के इस स्वतंत्रता संग्राम को धर्मयुद्ध कहा गया था -

स्वतन्त्रता, पूर्ण स्वतन्त्रता - हमारा ध्येय है, यह कहते कितना आनंद होता है। अभी हम स्वतन्त्र नहीं हुए हैं, पर वही हमारे जीवन का उद्देश्य है, वही राष्ट्र का लक्ष्य है। आइए, आज हम सब मिलकर परमात्मा से नम्रतापूर्वक प्रार्थना करें - भगवान! हम पर दया करो! हमें शक्ति दो, कर्तव्य पथ पर दृढ़ रखो, हमारे प्यार देश का उद्धार हमसे कराओ, यतोधर्मस्ततोजयः, इस वाक्य पर दृढ़ विश्वास रख सारा राष्ट्र एक बार स्वर से कहे - भारतमाता की जय, स्वतंत्रता की जय।

कांग्रेस ने केन्द्रीय, प्रान्तीय विधान सभाओं तथा सरकार द्वारा आयोजित गोल मेज़ सभा के पूर्ण बहिष्कार का निर्णय लिया और 26 जनवरी, 1930 को स्वतन्त्रता दिवस के रूप में मनाया।

4.3.2 नमक कानून के उल्लघंन हेतु डांडी मार्च

ब्रिटिश सरकार ने नमक उद्योग तथा उसके व्यवसाय के लिए नमक कानून बनाया जिसमें नमक बनाने व बेचने का एकाधिकार सरकार का हो गया। इस व्यवसाय में पीढ़ियों से लगे लोग बेरोज़गार हो गए। सरकार ने बाज़ार में नमक को उसकी लागत से लगभग चालीस गुने मूल्य पर बेचा। महंगे नमक के कारण गरीब न तो स्वयं अपने लिए पर्याप्त मात्रा में उसे खरीद सकता था और न ही अपने मवेशियों को उनकी खुराक के लिए ज़रूरी मात्रा में नमक दे सकता था। खुराक में नमक की मात्रा कम होने से शरीर में आयोडीन की कमी के कारण मनुष्यों और जानवरों को घेंघा जैसे कई जानलेवा रोग हो जाते थे। गांधीजी इस नमक कानून को ब्रिटिश शासन के सबसे बड़े कलंकों में से एक मानते थे इसलिए उन्होंने इसे तोड़ना अपना कर्तव्य माना। दूसरी बात यह थी कि नमक वफ़ादारी का प्रतीक था और इस कानून के कारण भारतीय अंग्रेज़ों का नमक खाने के लिए विवश थे। इस कानून को तोड़कर और खुद नमक बनाकर भारतवासी अंग्रेजों के प्रति वफ़ादारी के बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकते थे।

कांग्रेस पूर्ण स्वराज को अपना लक्ष्य घोषित कर चुकी थी। गांधीजी सत्याग्रह के माध्यम से इस लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते थे और अपने आन्दोलन का प्रारम्भ वो नमक कानून को तोड़कर ही करना चाहते थे। आन्दोलन आरम्भ करने से पहले गांधीजी ने वाइसराय को लिखे पत्र में 11 सूत्री मांगें रखीं। इसमें रुपये की विनिमय दर में कमी, लगान में कमी, नमक पर सरकार के एकाधिकार की समाप्ति, सैनिक तथा प्रशासनिक व्यय में कमी, भारतीय उद्योग को संरक्षण तथा राजनीतिक बन्दिओं की रिहाई की मांगें शामिल थीं। सरकार द्वारा इन मांगों की पूर्ति न किए जाने की स्थिति में आन्दोलन प्रारम्भ किया जाना था। सरकार द्वारा कांग्रेस की इन मांगों पर प्रतिक्रिया न मिलने पर 2 मार्च, 1930 को गांधीजी ने वाइसराय को सत्याग्रह करने के अपने निर्णय से अवगत कराने के लिए

एक पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होंने सत्यागह के औचित्य पर प्रकाश डाला। वाइसराय ने सत्याग्रह के निर्णय को कानून का उल्लंघन तथा अशान्ति फैलाने वाला बताया। गांधीजी ने अपने वक्तव्य में कहा -

मैने घुटनों के बल झुक कर रोटी मांगी थी और मिला पत्थर। भारत एक विशाल कारागार की तरह है। मेरे कार्यक्रम के अनुसार न्याय प्रणाली और शान्ति एवं व्यवस्था का भंग होना स्वाभाविक है। कानून पर बहुत सी किताबें हैं लेकिन भारतीयों ने अब तक जो कानून जाना है वो है अंग्रेज शासकों की मर्जी। मैं कानून को नकारता हूँ और खुली हवा के अभाव में राष्ट्र का दम घोंटने वाली हम पर थोपी गई इस शान्ति की दुखदाई एकरसता को तोड़ना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ।

12 मार्च, 1930 को प्रातः साढ़े छह बजे अपने आश्रम के 78 अनुयायियों के साथ गांधीजी ने साबरमती आश्रम से अपनी पद यात्रा प्रारम्भ की, ऐसी यात्रा जो कि विश्व इतिहास में अनूठी थी। गांधीजी के विरोधियों ने उनका उपहास उड़ाया। सरकार ने इसको गांधीजी की सनक समझकर इस यात्रा को गम्भीरता से नहीं लिया। उनके शुभचिन्तकों ने चिन्ता और सन्देह व्यक्त किया। परन्तु रबीन्द्रनाथ टैगोर ने गांधीजी की डांडी यात्रा का समर्थन किया और उन्हें सन्देश दिया कि वो विरोधियों की चिन्ता न करें और सत्यमार्ग पर अकेले ही चलते रहें। इस सन्देश को उन्होंने अपने गीत ***एकला चलो रे*** के माध्यम से अमर कर दिया। जल्द ही विरोधियों का उपहास भय और क्रोध में परिवर्तित हो गया। मोतीलाल नेहरू जैसे आलोचक अब स्वयं नमक सत्याग्रही बन गए थे। उन्होंने अपना महल जैसा आनन्द भवन राष्ट्र को समर्पित कर दिया और वह खुद इलाहाबाद की सड़कों पर प्रतिबन्धित नमक बेचने लगे। 241 मील की पद यात्रा के बाद 5 अप्रैल, 1930 को सूर्यास्त के समय गांधीजी डांडी के समुद्र तट पर पहुंचे। 6 अप्रैल, 1930 की सुबह समुद्र में स्नान कर गांधीजी ने मुठ्ठी भर नमक उठाकर नमक कानून तोड़ा और सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। श्रीमती सरोजिनी नायडू इस घटना की गवाह थीं। पूरे देश में उत्साह की लहर दौड़ पड़ी। हर जगह नमक कानून तोड़ा जाने लगा।

7.3.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन

7.3.3.1 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का विस्तार

नमक सत्याग्रह में एक कुशल सेनापति के समान रणनीति तैयार की गई थी। इसमें आश्चर्य, विभिन्न शक्तियों की सार्वभौमिक गतिशीलता, अनुशासन, संगठन और दुश्मन को चारो तरफ़ से घेर कर उस पर प्रहार करने की रणनीति सभी का समावेश था। सरकार ने बड़े पैमाने पर गिरफ़्तारियां कीं, गैर कानूनी ढ़ग से निर्मित नमक को बड़ी मात्रा में ज़ब्त किया गया, पर्दानशीन महिलाओं तक की तलाशी ली गई, जन-सभाओं तथा जुलूसों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। जवाहरलाल नेहरू को गिरफ़्तार कर लिया गया। विधान सभा के अध्यक्ष विठ्ठल भाई पटेल तथा नेशनलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष मदनमोहन मालवीय ने त्यागपत्र दे दिए। खान अब्दुल गफ्फार खां को पेशावर में गिरफ़्तार कर लिया गया। पेशावर में गढ़वाल रेजीमेन्ट के चन्दन सिंह गढ़वाली और उसके साथियों ने निहत्थे आन्दोलनकारियों पर गोली चलाने से इंकार कर दिया जिसके कारण उनका कोर्टमार्शल हुआ। विरोध प्रदर्शन के दौरान सैकड़ों आन्दोलनकारी मारे गए और उससे कहीं अधिक घायल हो गए। 1930 में 25 अप्रैल से 5 मई तक पेशावर आन्दोलनकारियों के हाथों में रहा। गांधीजी ने वाइसराय को सूरत में धरसाना के नमक उद्योग पर कब्ज़ा करने की योजना से अवगत कराया पर इस योजना के क्रियान्वित होने से पहले ही 4 मई, 1930 की मध्य रात्रि में

उन्हें गिरफ़्तार कर यर्वदा की केन्द्रीय जेल भेज दिया गया। गुजरात के धरसाना में शान्तिपूर्ण आन्दोलनकारियों ने अब्बास तैयबजी और कस्तूरबा गांधी के नेतृत्व में 'धरसाना साल्ट वर्क्स' के काम को रोकने का प्रयास किया। आन्दोलनकारियों पर पुलिस की ज़्यादतियों का मार्मिक विवरण न्यू फ्रीमैन के सम्वाददाता वेब मिलर ने किया है-

आन्दोलनकारियों ने अपने ऊपर लाठियों का प्रहार रोकने के लिए अपने हाथ भी नहीं उठाए और चोट खाकर गिरते रहे। जहांपर मैं खड़ा था वहां से लाठियों की चोट से खोपड़ियां चटकने की आवाज़े सुनाई दे रही थीं। दो-तीन मिनटों में ही मैदान घायलों से पट गया। जो लोग बाकी बचे थे वो भी आगे बढ़ते रहे, तब तक, जब तक कि पुलिसकर्मियों ने उन पर भी लाठियां बरसाना शुरू नहीं कर दिया।

मिलर के वृतान्त को सरकार ने दुनिया तक पहुंचने से रोकने की बहुत कोशिश की किन्तु वह 1350 समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ। संयुक्त राज्य अमेरिका के सेनेट में भी सेनेटर जॉन जे0 ब्लेन द्वारा उसे पढ़ा गया। धरसाना में पुलिस के अत्याचार से 320 आन्दोलनकारी घायल हुए और 2 शहीद हुए।

महामना मदनमोहन मालवीय ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय ब्रिटिश दमन चक्र से भयभीत होकर अपने स्वतन्त्रता संग्राम में पीछे नहीं हटेंगे। उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अहिंसक स्वरूप और सरकार के दमनचक्र के सामने किसी भी मूल्य पर घुटने न टेकने की आन्दोलनकारियों की दृढ़ इच्छाशक्ति के विषय में लिखा -

हमने तो जितने ज़ुल्म होंगे, उन्हें निश्चय कर ही यह आन्दोलन आरम्भ किया है। मारने का नहीं, मरने का ही निश्चय किया है। हमने तो यह ठान ही लिया है कि ज़िन्दा रहेंगे तो दुनिया के और राष्ट्रों की तरह आज़ाद होकर रहेंगे और नहीं तो अपने को मिटा देंगे। वे जो ईश्वर प्रदत्त हमारी स्वतन्त्रता को बलात् अपने कब्ज़े में रखना चाहते हैं और सम्भल जाएँ। वे जो हमारी राय से नहीं बल्कि हमें कुचलकर हमपर शासन करना चाहते हैं।

1910 का दमनकारी प्रेस एक्ट फिर से लागू किया गया। 67 समाचार पत्र और 55 छापेखाने बन्द कर दिए गए। गांधीजी ने इसकी तुलना में डायरशाही को भी फीका बताया। इस आन्दोलन में लगभग एक लाख गिरफ़्तारियां हुईं। आन्दोलनकारियों ने नमक कानून का उल्लंघन करने के साथ-साथ विदेशी कपड़ों, ब्रिटिश बैंकों और बीमा कम्पनियों, जहाजरानी आदि का बहिष्कार किया। शराब की दुकानों पर महिला आन्दोलनकारियों ने धरने दिए ओर भारतीय सेना तथा भारतीय पुलिस से यह अपील की गई कि वो आन्दोलनकारियों को अपने बन्धु समझें।

गांधीजी ने अपने बहिष्कार और स्वदेशी अभियान में स्त्रियों को सबसे आगे रखा था। उनकी दृष्टि में इन आंदोलनों को सफल बनाने के लिए जिस त्याग, बलिदान और अनुशासन की आवश्यकता थी वह भारतीय स्त्रियों की प्रकृति में जन्मजात था। गांधीजी तथा देश के अन्य प्रमुख नेता भारतीय महिलाओं को राष्ट्रीय आन्दोलन के सृजनात्मक कार्यक्रम में योगदान की अपेक्षा रखते थे। मद्यनिषेध, स्वदेशी, अस्पृश्यता निवारण, ग्रामोत्थान और स्वयं नारी-उत्थान के कार्यक्रम को सफल बनाने में महिलाएं महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभा सकती थी।

चरखे को अपनाकर भारतीय महिलाएं स्वदेशी आंदोलन के आर्थिक आत्म-निर्भरता के लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त कराने में सहायक हो सकती थीं और सोने पर सुहागा यह था कि इसे अपना कर स्त्रियां सम्मान के साथ, अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए, यहाँ तक कि पर्दा प्रथा का पालन करते हुए भी अपने पैरों पर खुद खड़ी हो सकती थीं और देश को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दे सकती थीं। सविनय अवज्ञा आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका अत्यन्त सराहनीय रही। कांग्रेस की सबसे महत्वपूर्ण महिला नेत्री, प्रसिद्ध वक्ता एवं कवियित्री श्रीमती सरोजिनी नायडू गांधी जी की निकट सहयोगी थीं। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सत्याग्रह का नेतृत्व किया। 5 अप्रैल, 1930 को नमक सत्याग्रह प्रारम्भ करने के लिए साबरमती आश्रम से डांडी पहुंचने पर उन्होंने गांधीजी का स्वागत किया। मई, 1930 में धरसाना सॉल्ट वर्क्स में 2000 आन्दोलनकारियों का नेतृत्व करते समय उन्हें गिरफ्तार किया गया। उर्मिला देवी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान 'देश सेविका संघ' और 'नारी सत्याग्रह समिति' जैसे राष्ट्रवादी महिला संघों की स्थापना की। 13 वर्ष की रानी गिडालू ने मणिपुर में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान गांधीजी के आवाहन पर विदेशी शासन के विरुद्ध खिलाफ़त का झण्डा बुलंद किया। पर्दानशीन महिलाएं भी आन्दोलन में कूद पड़ीं। कस्तूरबा गांधी, मधू बेन पेटिट, श्रीमती जमुना लाल बजाज, श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू, श्रीमती कमला नेहरू आदि ने विदेशी सामानों की दुकानों तथा मादक पदार्थों की दुकानों पर सफलतापूर्वक धरने दिए। आगरा से प्रकाशित हिन्दी पत्र सैनिक के 1 दिसम्बर, 1933 के अंक में कुंवरानी गुणवंती महाराज सिंह का लेख - हमारी जागृति प्रकाशित हुआ था जिसमें कि उन्होंने गांधीजी आन्दोलनों महिलाओं की भूमिका की सराहना की थी -

महात्मा गाँधी का राजनैतिक आंदोलन कभी इतना सफल न होता, यदि भारतीय महिलाओं ने उसमें भाग न लिया होता। स्वदेशी आंदोलन की सफलता बहुत करके इसलिए सम्भव हो सकी कि भारतीय महिलाएं देश की सहायता के लिए कोमल विदेशी कपड़ों का व्यवहार छोड़ने को तैयार हो गईं।

कौंडा वैंकट पैया ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान गुंटूर जिले में नमक कानून तोड़ने के लिए तथा केलाप्पन ने मालाबार में नमक यात्रा (साल्ट मार्च) का नेतृत्व किया। आन्दोलन के प्रारम्भ होने के तीन महीने के अन्दर कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता बन्दी बना लिए गए। अब सविनय अवज्ञा आन्दोलन खुलेआम होने के स्थान पर भूमिगत हो गया।

7.3.3.2 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आर्थिक पक्ष

सविनय अवज्ञा आन्दोलन का विदेश व्यापार पर व्यापक प्रभाव पड़ा। तीस करोड़ रुपयों का विदेशी सामान बम्बई नगर तथा उसके बन्दरगाह पर बिना बिका पड़ा रहा। भारत में कपड़े का आयात 31 प्रतिशत तथा धागे का आयात 45 प्रतिशत कम हो गया। सामान्य आयात एक तिहाई से भी कम हो गया। सिगरेटों का आयात तो पहले का छठवां हिस्सा ही रह गया, बम्बई में ब्रिटिश स्वामित्व के सोलह कपड़े के मिल बन्द करने पड़े, खादी के उत्पादन तथा उसकी बिक्री में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। 'स्पिनर्स एसोसियेशन' ने 140000 कताई वाले तथा 11500 बुनकर तथा 1000 धुनियों को काम पर रखा। खादी-उत्पादन को खुदा का काम बताते हुए गांधीजी ने यह कामना की कि भारत के सभी स्त्री-पुरुष इसमें जुट जाएँ –

जबतक हिन्दुस्तान में हर एक स्त्री पुरुष अपना चर्खा नहीं चलाता तब तक मैं संतुष्ट नहीं हो सकता। अगर चर्खे से कोई अच्छी चीज़ आपको मिले तो चर्खे को जला डालो। यही एक वह काम है जो करोड़ों की आवश्यकताएं उन्हें घर से हटाए बिना पूरी कर सकता है।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान आर्थिक मन्दी और भी अधिक अशान्ति का कारण बनी। कारखानों में हड़तालें हुईं और संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त तथा गुजरात में किसानों ने लगान देने से इंकार कर दिया। कर्नाटक तथा कनारा में भी किसान आन्दोलन कर रहे थे। सरकार ने हज़ारों एकड़ ज़मीन ज़ब्त कर ली और अनेक राजस्व कर्मचारियों को बर्खास्त कर दिया। मध्य प्रान्त तथा महाराष्ट्र के आदिवासियों ने वन सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया। बंगाल में ग्रामवासियों ने चौकीदार कर देने से इन्कार कर दिया।

7.3.3.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का राजनीतिक प्रभाव

भारत में नरमपंथ, चरमपंथ, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा आदि अनेक दलों ने स्वशासन की मांग उठाना शुरू कर दिया। स्वराज, होमरूल, डोमिनियन स्टेटस और स्वतन्त्रता की मांग अब आम हो गई। जिन्ना जैसे प्रबल गांधी विरोधी और गोल मेज़ सभा का स्वागत करने वाले भी अब ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड जैसे देशों में स्थापित उत्तरदायी सरकार भारत में भी स्थापित करने की मांग करने लगे। राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए कांग्रेस समरूपता की पक्षधर थी जब कि मुस्लिम लीग संघीय शासन की स्थापना की पक्षधर थी। इन मतभेदों के कारण मुस्लिम लीग ने सत्याग्रह में भाग नहीं लिया परन्तु अब्बास तैयबजी, मौलाना आज़ाद, रफ़ी अहमद किदवई, डॉक्टर अंसारी, खान अब्दुल गफ़्फ़ार खां और सैयद महमूद जैसे अनेक मुस्लिम नेता तथा जमैतुल उलेमा, अहरारुल इस्लाम, खुदाई खिदमतगार और नेशनलिस्ट मुस्लिम पार्टी जैसे मुस्लिम संघ तथा राजनीतिक दल कांग्रेस के साथ थे। नमक सत्याग्रह में लगभग 12000 मुसलमान जेल गए थे। कांग्रेस ने 1930 की गोल मेज़ सभा के बहिष्कार का निर्णय लिया। गवर्नर जनरल लॉर्ड इर्विन ने आन्दोलन से पहले ही अक्टूबर, 1929 में डोमिनियन स्टेटस देने की दिशा में कार्य करने की योजना प्रस्तुत की थी और यह ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की संस्तुति के बिना लागू नहीं की जा सकती थी लेकिन कांग्रेस उस पर तुरन्त अमल चाहती थी।

खान अब्दल गफ्फार खान

सरकार ने एक ओर जहां आन्दोलनकारियों का निर्ममता से दमन किया वहीं दूसरी ओर वह नरमपंथियों, मुसलमानों, ज़मींदारों आदि को रियायतें देकर अपने साथ मिलाने के लिए प्रयत्नशील हो गई। आन्दोलन की व्याप्ति तथा उसकी पैठ देखकर गवर्नर जनरल लॉर्ड इर्विन को स्वीकार करना पड़ा कि अब केवल दमन से राजनीतिक असन्तोष को थाम पाना सम्भव नहीं है और सरकार को सुधार की प्रक्रिया जल्द आरम्भ करनी पड़ेगी।

अब यह स्पष्ट हो गया कि सरकार जेल में बन्द गांधीजी से जब तक समझौते की बात नहीं करेगी तब तक स्थिति में सुधार नहीं आ सकता।

7.4 गांधी-इर्विन समझौता तथा उसके गुण-दोष

7.4.1 गांधी-इर्विन समझौता

26 जनवरी, 1931 को गांधीजी तथा उनके सहयोगियों को रिहा कर दिया गया। गांधीजी सम्मान के साथ शान्ति वार्ता के लिए तैयार थे। 17 फ़रवरी से 5 मार्च, 1931 तक गांधीजी तथा लॉर्ड इर्विन में वार्ता चली। 5 मार्च को गांधी-इर्विन समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया गया, स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करना स्वीकार किया गया किन्तु विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को और शराब बन्दी के लिए धरना देने को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाना बन्द कर दिया गया। राजनीतिक बन्दी रिहा हुए, भारत में संघीय व्यवस्था का अनुमोदन कर दिया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान पारित अध्यादेशों को वापस ले लिया गया और राजनीतिक संगठनों पर लगी पाबन्दी हटा ली गई। हिंसा में लिप्त घटनाओं के अतिरिक्त सभी राजनीतिक बन्दियों को रिहा कर दिया गया। ज़ब्त की गई सम्पत्तियों को वापस कर दिया गया। गांधीजी द्वारा पुलिस की ज़्यादतियों पर जांच बैठाने की मांग को ठुकरा दिया गया। नमक कानून को भी रद्द नहीं किया गया, मात्र उसमें कुछ सुधार किए गए। कांग्रेस ने द्वितीय गोलमेज सभा में सुधार हेतु बातचीत में भागीदारी करने का निश्चय किया। 29 मार्च, 1931 को कराची में बुलाए गए सम्मेलन में कांग्रेस ने इस समझौते पर अपनी सहमति दे दी।

7.4.2 गांधी-इर्विन समझौते के गुण-दोष

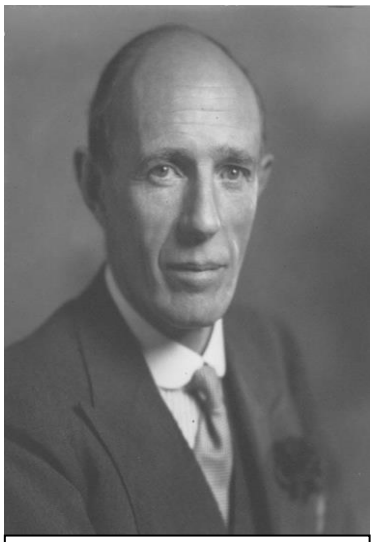
लॉर्ड इरविन

जवाहरलाल नेहरू इस समझौते पर अपनी सहमति जताते हुए भी इससे बहुत निराश हुए किन्तु सरदार वल्लभ भाई पटेल की दृष्टि में गांधीजी शेर की मांद में जाकर उसका मुकाबला कर कुछ भी खोने वाले नहीं थे। वामपंथी इतिहासकारों ने गांधीजी द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन को वापस लिया जाना भारतीय उद्योगपतियों तथा बड़े व्यापारियों के दबाव में आकर लिया फैसला माना है। एक साल तक चले आन्दोलन के दौरान आर्थिक परिस्थितियां बदल चुकी थीं। साल भर से लगातार चली आ रही हड़तालों से भारतीय उद्योगपतियों को नुक्सान हो रहा था और विदेश व्यापार से जुड़े व्यापारी विदेशी सामान के बहिष्कार से परेशान थे। जहां यही वर्ग विदेशी व्यापार से दूर रहने की शपथ खा रहा था और इस आन्दोलन को संचालित करने में अपना आर्थिक सहयोग दे रहा था वहीं अब यह इस आन्दोलन को स्थगित किए जाने के पक्ष में होने लगा था और फिर विदेश व्यापार की ओर उन्मुख हो रहा था। मारवाड़ी व गुजराती व्यापारी तथा भारतीय मिल मालिक गांधीजी पर आन्दोलन को स्थगित करने के लिए दबाव डाल रहे थे। ज़मींदार वर्ग भी सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अन्तर्गत होने वाले किसान आन्दोलनों से परेशान होकर इस आन्दोलन की समाप्ति चाहता था। इधर एक साल तक

आन्दोलन कर आन्दोलनकारियों का उत्साह भी मन्द पड़ चुका था। इन परिस्थितियों में गांधीजी का सरकार से बिना किसी ठोस सुधार प्राप्त किए समझौता करना आश्चर्यजनक नहीं था। विठ्ठल भाई पटेल और सुभाषचन्द्र बोस ने इस निर्णय को जनता के साथ विश्वासघात मानते हुए कांग्रेस में गांधीजी की जगह युवा नेतृत्व की मांग की थी।

7.4.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद का राजनीतिक घटनाचक्र

12 नवम्बर, 1930 को प्रथम गोलमेज़ सभा का आरम्भ हुआ। कांग्रेस ने 1930 की गोल मेज़ सभा के बहिष्कार का निर्णय लिया था। द्वितीय गोल मेज़ सभा 7 सितंबर, 1931 से लन्दन में हुई जिसमें कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में गांधी जी शामिल हुए। कांग्रेस संवैधानिक सुधारों का प्रारूप तैयार करने की इस प्रक्रिया में इस आशा के साथ सम्मिलित हुई थी कि भारत में संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत स्वशासन स्थापित किया जाएगा और रक्षा, विदेश सम्बन्ध, अल्पसंख्यक विषयक मामले, भारतीय ऋण आदि विषयों में भारतीय हितों को सर्वोपरि रखा जाएगा। अब तक इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की सरकार गिर चुकी थी। प्रधानमन्त्री रैमज़े मैक्डोनाल्ड को अनुदारवादियों को सन्तुष्ट करके ही सरकार चलानी थी। विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी के इस दौर में अनुदारवादी किसी भी मूल्य पर भारतीयों को स्वशासन प्रदान कर अपने आर्थिक हितों की बलि नहीं चढ़ाना चाहते थे इसलिए साइमन कमीशन की संस्तुतियों पर अमल करने तक ही द्वितीय गोलमेज़ सभा सीमित रही। इसमें राजनीतिक व संवैधानिक सुधारों के स्थान पर साम्प्रदायिक समस्याओं पर चर्चा हुई और साम्प्रदायिक मांग रखने वाले दलों ने राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा की गई।

10 अगस्त, 1932 को इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री रैमज़े मैक्डोनाल्ड ने साम्प्रदायिक पंचाट की घोषणा की। यह पंचाट इस अवधारणा पर आधारित था कि भारत एक राष्ट्र नहीं अपितु विभिन्न राष्ट्रों का समूह है। इस पंचाट में अंग्रेजी सरकार ने मुसलमानों, सिक्खों, दलितों, पिछड़ी जातियों, भारतीय इसाइयों, एंग्लो इण्डियनों, यूरोपियनों, व्यापारियों, उद्योगपतियों, ज़मींदारों, श्रमिकों और विश्वविद्यालयों को पृथक प्रतिनिधत्व दिया गया था।

गांधीजी ने दलितों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिए जाने की व्यवस्था को हिन्दू समाज को विभाजित करने की साज़िश बताया व इसके विरोध में 20 सितम्बर, 1932 को उन्होंने आमरण अनशन किया। सितम्बर, 1932 में गांधीजी तथा डॉक्टर अम्बेडकर के मध्य हुए पूना समझौते में साम्प्रदायिक पंचाट की दलितों को पृथक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को भंग कर सभी समुदायों के मतदाताओं द्वारा सुरक्षित स्थानों पर दलित प्रतिनिधि चुनने की व्यवस्था की गई। सरकार ने इस व्यवस्था को स्वीकार कर लिया।

17 नवम्बर, 1932 से 24 दिसम्बर, 1932 तक तीसरी गोल मेज़ सभा का आयोजन हुआ। इसमें सरकार ने भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों से विचार-विमर्श को महत्व नहीं दिया बल्कि सभी निर्णय स्वयं लेने का निश्चय प्रकाशित किया गया। कांग्रेस ने इस सभा का बहिष्कार किया। कुल मिलाकर तीनों गोलमेज़ सभाओं में साइमन कमीशन की संस्तुतियों पर ही अमल हुआ। 15 मार्च, 1933 को संविधान की रूपरेखा तैयार कर व्हाइट पेपर प्रकाशित किया गया। इसमें भारत में संघीय शासन की व्यवस्था की गई पर इसको लागू करने के लिए राज्यों को इसमें शामिल होने की शर्त भी थी। प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना इसकी बड़ी उपलब्धि थी। इसी के आधार पर 4 अगस्त, 1935 को गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट पारित हुआ।

7.4.4 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आंकलन

इस आन्दोलन में महिलाओं, किसानों तथा श्रमिकों ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई थी। इसमें पहली बार सरकार को कांग्रेस के साथ बराबरी के स्तर पर समझौते की बात करने के लिए झुकना पड़ा था। सरकार ने नमक कानून को भंग नहीं किया किन्तु उसमें संशोधन अवश्य किए और भारतीयों को स्वशासन दिए जाने की दिशा में कदम उठाए गए। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सृजनात्मक पक्ष में राष्ट्रीय एकता, आर्थिक आत्मनिर्भरता, नारी-उत्थान, अस्पृश्यता निवारण, मद्य-निषेध तथा ग्राम स्वराज्य के स्वप्न को साकार करने का ठोस प्रयास किया गया था।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन सरकार की फूट डालकर शासन करने की नीति पर नियन्त्रण कर पाने में और मुस्लिम लीग, साम्यवादी दल, हिन्दू महासभा आदि राजनीतिक दलों का सहयोग पाने में असफल रहा। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगन के बाद काग्रेस संगठन पर गांधीजी की पकड़ कमज़ोर पड़ने लगी। कांग्रेस में साम्प्रदायिकतावादी, समाजवादी तथा साम्यवादी विचारधारा ज़ोर पकड़ने लगी। 1931 के कराची अधिवेशन में कांग्रेस प्रस्तावों में किसानों को अपना संघ बनाने के अधिकार को सम्मिलित किया गया। 1936 के फ़ैजपुर के अधिवेशन में मज़दूरों को हड़ताल करने का अधिकार और किसानों को संघ बनाने का अधिकार देने का प्रस्ताव रखा गया।

द्वितीय गोलमेज़ में कांग्रेस की विफलता सविनय अवज्ञा आन्दोलन की ही विफलता कही जा सकती है किन्तु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि इस आन्दोलन की मांगों को सरकार देर तक अनसुना नहीं कर सकी और 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रान्तीय स्वायत्तता की व्यवस्था लागू करने से इस आन्दोलन के द्वारा उठाई गई मांगों को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया गया। गांधीजी के सभी आन्दोलनों में सविनय अवज्ञा आन्दोलन सबसे अधिक अनुशासित था। गांधीजी के इस आन्दोलन को पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस ने महत्व दिया था जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश भारतीय सरकार पर भारतीयों को सुधार दिए जाने के लिए चारों ओर से दबाव पड़ने लगा था।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन की रणनीति को मार्टिन लूथर किंग ने अमेरिका में तथा नेल्सन माण्डेला ने दक्षिण अफ्रीका में अपनाकर रंगभेद तथा जातिभेद के विरुद्ध सफल अभियान चलाया था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद गांधीजी समस्त विश्व में दलितों और शोषितों के मसीहा तथा विश्व-शान्ति के दूत के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. डान्डी मार्च।
2. सविनय अवज्ञा आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका।
3. गांधी-इर्विन समझौता।

7.5 सारांश

साइमन कमीशन से व्याप्त असंतोष और डोमिनियन स्टेटस का वादा करके सरकार द्वारा उसे पूरा न करना कांग्रेस के असंतोष का प्रमुख कारण था। सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत के राजनीतिक भविष्य का फैसला ब्रिटिश पार्लियामेन्ट करेगी न कि स्वयं भारतीय जनता। दिसम्बर, 1929 में लाहौर में हुऐ कांग्रेस के अधिवेशन में तत्कालीन अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू ने कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वराज घोषित कर दिया। गांधीजी ने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के उद्देश्य से साबरमती आश्रम से डांडी के समुद्र तट तक पद यात्रा कर दमनकारी नमक कानून तोड़कर 6 अप्रैल, 1930 को सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन में महिलाओं की तथा उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में खान अब्दुल गफ्फ़ार खां की सराहनीय भूमिका रही। विदेशी व्यापार को इस आन्दोलन से भारी क्षति पहुंची और स्वदेशी उत्पादन में वृद्धि हुई। मार्च, 1931 के गांधी-इर्विन समझौते से सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया गया और गांधीजी कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में दूसरी गोलमेज़ सभा में भाग लेने के लिए 1931 में लन्दन गए परन्तु वहां उन्हें निराशा ही हाथ लगी। साम्प्रदायिकता की समस्या का कोई हल नहीं निकला।

1930, 1931 तथा 1932 में आयोजित तीन गोल मेज़ सभाओं में मूलतः साइमन कमीशन की संस्तुतियों पर ही अमल किया गया। फिर भी कुल मिलाकर सरकार को सुधार करने पड़े। 1935 के एक्ट में केन्द्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना नहीं की गई किन्तु प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना कर दी गई। गांधीजी के सभी आन्दोलनों में सविनय अवज्ञा आन्दोलन सबसे अधिक अनुशासित था। गांधीजी के इस आन्दोलन को पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस ने महत्व दिया था जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश भारतीय सरकार पर भारतीयों को सुधार दिए जाने के लिए चारों ओर से दबाव पड़ने लगा था। इस आन्दोलन के बाद गांधीजी समस्त विश्व में दलितों और शोषितों के मसीहा तथा विश्व-शान्ति के दूत के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे।

7.6 पारिभाषिक शब्दावली

नमक कानूनः नमक कानून के अन्तर्गत नमक बनाने और उसको बेचने का एकाधिकार सरकार का था।

एकला चलो रेः अकेले ही चलो।

खुदाई खिदमतगारः खान अब्दुल गफ़्फ़ार खां के अनुयायी जो अहिंसात्मक आन्दोलन कर भारत के लिए पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे।

आर्थिक मन्दीः 1929 से 1931 तक पूरे विश्व में आर्थिक मन्दी का दौर चला जिसके कारण गरीबी, भुखमरी और बेरोज़गारी फैल गई।

शेर की मांद में घुसनाः खुद दुश्मन के घर में घुसकर उसका सामना करने का साहस करना।

अल्प संख्यकः ऐसे समुदाय जिनका कुल आबादी में कम भाग हो।

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 4.3.2 नमक कानून के उल्लघंन हेतु डांडी मार्च।
2. देखिए 4.3.3.1 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का विस्तार।
3. देखिए 4.4.1 गांधी-इर्विन समझौता तथा 4.4.2 गांधी-इर्विन समझौते के गुण-दोष।

7.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (भाग 4), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फा़र फ्रीडम, बम्बई, 1969

चन्द्रा, बिपन - नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली, 1979

सिंह, अयोध्या - भारत का मुक्ति संग्राम, दिल्ली, 1977

आज़ाद, अबुल कलाम - इण्डिया विन्स फ्रीडम, बम्बई, 1959

सील, अनिल - दि एमरजेन्स ऑफ़ इण्डियन नेशनलिज़्म, कैम्ब्रिज, 1968

तेन्दुलकर, जी0 डी0 - महात्मा, भाग 2 तथा 3, बम्बई, 1965

नेहरू, जवाहर लाल - एन आटोबायोग्राफ़ी, लन्दन, 1936

सीतारमैया, पी0 - हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, बम्बई, 1936

7.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

अली, अरुणा आसफ़ - दि रिसर्जेन्स ऑफ़ इण्डियन वीमेन, लन्दन, 1991

काश्यप, सुभाष - भारत का सांविधानिक विकास और संविधान, दिल्ली, 1997

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के महत्व का आकलन कीजिए।

इकाई – आठ

1935 का भारत सरकार अधिनियम

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 1935 का भारत सरकार अधिनियम की पृष्ठभूमि

8.4 1935 का भारत सरकार अधिनियम

8.4.1 प्रस्तावना रहित अधिनियम

8.4.2 अखिल भारतीय संघ की योजना

8.4.2.1 अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

8.4.3 प्रान्तीय स्वायत्तता

8.4.3.1 प्रांतीय कार्यपालिका

8.4.3.2 प्रांतीय गवर्नर की शक्तियाँ

8.4.3.3 प्रान्तीय विधानमण्डल

8.4.3.4 प्रांतीय स्वायत्ता का मूल्यांकन

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

8.4.4 केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना

8.4.5 विषयों का विभाजन

8.4.6 विधानमण्डलों का विस्तार

8.4.7 साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली

8.4.8 मताधिकार का विस्तार

8.4.9 संघीय न्यायालय की स्थापना

8.4.10 संरक्षण एवं आरक्षण के प्रावधान

8.4.11 भारतीय व्यवस्थापिका का सत्तारहित स्वरूप प्रदान

8.4.12 ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता

8.4.13 भारत परिषद का अंत

8.4.14 1935 का अधिनियम का मूल्यांकन

8.5 सारांश

8.6 तकनीकी शब्दावली

8.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

1935 का भारत सरकार अधिनियम भारत में अंग्रेजी शासन द्वारा बनाये गये विधिक नियमों का अगला कदम था। 1935 का भारत सरकार अधिनियम विभिन्न आयोगों, रिपोर्टों एवं विचार विमर्श के बाद अस्तित्व में आया। 1935 का भारत सरकार अधिनियम 2 अगस्त, 1945 ई॰ को पारित हुआ। इसके साथ ही, इस अधिनियम में बर्मा के संविधान का भी प्रावधान था। जिन्हें बाद में 20 दिसम्बर, 1945 ई॰ को अलग कर दिया गया। इससे इस भारत सरकार अधिनियम, 1935 में कुल 321 धाराएँ तथा 10 परिशिष्ट रह गये थे।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. विद्यार्थी 1935 का भारत सरकार अधिनियम की पृष्ठभूमि को समझ सकेगें।
2. विद्यार्थी अखिल भारतीय संघ के बारे में जानेंगे।
3. विद्यार्थी प्रांतीय स्वायत्तता के बारे में जान सकेंगे।
4. विद्यार्थी शक्तियों के विभाजन को समझ सकेगें।
5. विद्यार्थी संघीय सूची, प्रांतीय सूची तथा समवर्ती सूची के विषयों के बारे में जान सकेंगे।
6. विद्यार्थी कार्यपालिका, न्यायपालिका एवं व्यवस्थापिका को समझ सकेगें।
7. विद्यार्थी साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली के बारे में जान सकेंगे।
8. विद्यार्थी द्वैध शासन को जान सकेंगे।
9. विद्यार्थी गवर्नर - जनरल एवं भारत सचिव के बारे में जान सकेंगे।
10. विद्यार्थी 1935 का भारत सरकार अधिनियम के महत्वपूर्ण तत्वों के बारे में जान सकेंगे।

8.3 1935 का भारत सरकार अधिनियम की पृष्ठभूमि

1935 का अधिनियम ब्रिटिश सरकार द्वारा 1919 के अधिनियम के बाद की परिस्थितियों को संतुलित करने के लिए बनाया था। 1919 के बाद अनेक राजनैतिक एवं प्रशासनिक घटनाक्रमों ने एक नवीन अधिनियम की आवश्यकता को जरूरी बना दिया था। 1919 से 1935 के मध्य अनेक राजनैतिक आंदोलन हुए असहयोग आंदोलन सविनय अवज्ञा एवं छोटे - मोटे आंदोलन जिन्होंने लगातार अंग्रेजी सरकार की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह लगाये। स्वराज्य दल ने तो अपनी कार्यप्रणाली से सरकारी व्यवस्था को ही धता बता दिया था। अंग्रेज स्वराज दल की रीति - नीति से हतप्रद रह गये थे।

1935 में अधिनियम से पूर्व भारतीयों को संयुक्त करने के लिए विभिन्न आयोगों का भी गठन किया गया था। 1927 - 30 का साइमन कमीशन, 1928 की नेहरू रिपोर्ट, 1929 की लार्ड इर्निन की अभिनियम स्टेट्स की घोषणा 1930 - 32 तक के तीन गोलमेज सम्मेलन, संयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट, लोथियाँ रिपोर्ट आदि ने 1935 के अधिनियम की पूर्व पीठिका तैयार की थी। अंग्रेजों को भी लगने लगा था कि समय की आवश्यकता के अनुसार भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए नये कदम उठाने आवश्यक है, किन्तु वे यह भी जानते थे कि भारतीयों को ऐसे अधिकार नहीं प्रदान किये जाने चाहिए। जिनसे ब्रिटिश साम्राज्य पर आंच आती हो।

8.4 1935 का भारत सरकार अधिनियम

1935 का अधिनियम भारत की आजादी से पूर्व ब्रिटिश सरकार का सबसे बड़ा संवैधानिक विकास था। यह अधिनियम एक विस्तृत अभिलेख था, जिसमें सभी आवश्यक विषयों पर विस्तृत विवरण दिया गया था। 1935 के इस विस्तृत अधिनियम मुख्यतः संघ की स्थापना, प्रांतीय स्वायत्तता , शक्तियों का विभाजन आदि प्रमुख विशेषताएँ थी।

8.4.1 प्रस्तावना रहित अधिनियम

1935 का अधिनियम प्रस्तावना रहित था। वह इसीलिए कि, अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों के लिए ऐसी कोई नई नीति की घोषणा नहीं की थी, जो प्रस्तावना का हिस्सा बन सके। संभवतः ब्रिटिश सरकार भारतीयों को यह संदेश देना चाहती थी कि ब्रिटिश सरकार का अंतिम उद्देश्य भारत में उपनिवेशक स्वराज्य की स्थापना करना हैं। इसी कारण 1935 के अधिनियम की प्रस्तावना में 1919 के अधिनियम की प्रस्तावना को ही रखा गया।

8.4.2 अखिल भारतीय संघ की योजना

1935 के अधिनियम के अंतर्गत अंग्रेजी साम्राज्य के अधीन अखिल भारतीय संघ की स्थापना की योजना का प्रावधान किया गया था। अधिनियम में यह पवित्र विचारधारा व्यक्त की गयी थी, कि समस्त भारत को एक संघात्मक ढाँचें में गठित किया जाये और इसमें भारत के सभी ब्रिटिश क्षेत्र एवं रियासतों को सम्मिलित किया जाये। 1935 के अधिनियम का वास्तव में यह अद्भुत प्रावधान था, जिसमें सर्वप्रथम भारत को एकसूत्र में बांधकर एक संघ का रूप देने का प्रस्ताव किया गया था। 1935 के अधिनियम की इस योजना के अंतर्गत ब्रिटिश भारतीय

प्रांत, चीफ कमिश्नरों के प्रांत एवं भारत की देशी रियासतों को सम्मिलित किया जाना था। प्रस्तावित संघ पूर्णतः स्पष्ट नियमों पर आधारित होना था, इसके प्रावधानों में संघ के निर्माण की प्रक्रिया को लिख दिया गया था।

शक्तियों के बंटबारें को स्पष्ट कर दिया गया था तथा एक संघीय न्यायालय की स्थापना का प्रावधान किया गया था। ब्रिटिश भारतीय ग्यारह प्रांत - मद्रास, बंबई, मध्य प्रांत, सिन्ध, असम संयुक्त प्रांत, बिहार, उत्तर - पश्चिमी सीमा प्रांत, बिहार, बंगाल, उड़ीसा तथा चीफ कमिश्नरों के प्रांत - दिल्ली, बलूचिस्तान, मेवाड़, अजमेर, कुर्ग, अण्डमान - निकोबार एवं देशी रियासतों से अखिल भारतीय संघ की स्थापना होनी थी। प्रस्तावित संघ में ब्रिटिश भारतीय प्रांतों तथा चीफ कमिश्नरों के प्रांतों का अनिवार्यतः संघ में शामिल होना था, देशी रियासतों को उनकी इच्छा पर छोड़ दिया गया। अर्थात् जो रियासत संघ से अलग रहना चाहे, वह संघ से अलग रहकर अपनी पहली वाली अवस्था में रह सकती थी।

देशी रियासतों को प्रस्तावित संघ में सम्मिलित होने के लिए निश्चित निर्धारित एवं स्पष्ट नियमों पर आधारित स्वीकृति पत्र पर हस्ताक्षर करने अनिवार्य थे, यह स्वीकृति लेख एक प्रकार का विलय प्रपत्र ही था, जिसमें समस्त शर्तों एवं सीमाओं का उल्लेख किया गया था। इस स्वीकृति पत्र में उन सभी विषयों का भी उल्लेख किया गया था, जो कि रियासतों संघ के अधीन स्वीकार करने थे, अर्थात् देशी रियासतों को यह अधिकार था कि, वह अपनी इच्छा के अनुसार उन विषयों पर स्वीकृति दे सकती थी, जो वह संघ के अधीन रखना चाहती थी, शेष विषयों पर रियासतें अपनी इच्छा के अनुसार अपने पास रखने को स्वतंत्र थी। कुल मिलाकर प्रस्तावित संघ में देशी रियासतों को पर्याप्त स्वतंत्रता एवं अधिकार प्राप्त थे।

इस अधिनियम में यह भी स्पष्ट किया गया था कि संघ की सत्ता में अन्य स्वीकृति पत्र से बढ़ोत्तरी की जा सकती थी, किन्तु संघ की सत्ता को कम नहीं किया जा सकता था, अर्थात् संघ की सत्ता में बढ़ोत्तरी स्वीकृति लेख से संभव थी, किन्तु संघ के अधिकारों और सत्ता को कम नहीं किया जा सकता था। इसके साथ ही, संघ में शामिल होने के लिए यह भी आवश्यक था कि रियासतें अधिकांश संघीय विषयों पर संघ की सत्ता को स्वीकृति प्रदान करें। अधिनियम में प्रावधान किया गया था कि, इस स्वीकृति पत्र में संघ की व्यवस्थापिका को बीस वर्ष तक परिवर्तन का कोई अधिकार नहीं दिया गया थ। जबकि, ब्रिटिश सम्राट पर स्वीकृति पत्र को स्वीकारने की कोई बाध्यता नहीं थी।

अधिनियम के द्वारा विषयों की शक्तियों का स्पष्ट विभाजन तीन सूचीयों - संघीय राज्य एवं समवर्ती सूची में कर दिया गया था। संघीय सूची, जिसमें 59 विषय रखे गये थे, ये विषय समस्त भारत पर एक समान लागू होने थे। प्रांतीय सूची में 54 विषय रखे गये थे तथा समवर्ती सूची में 36 विषय रखे गये थे। इन विषयों पर संघीय सूची के विषयों पर संघ, प्रांतीय सूची के विषयों प्रांत तथा समवर्ती सूची पर संघ और प्रांत दोनों कानून बना सकते थे, किन्तु विवाद की स्थिति में समवर्ती सूची पर बनाये गये कानून पर संघ के कानून को मान्यता प्रदान करने का प्रावधान था।

देशी रियासतों को संघ विधान मण्डल के दोनों सदनों (संघीय असेम्बली एवं कौंसिल ऑफ स्टेट) में क्रमशः 375 में से 125 एवं 260 में से 104 सदस्य नियुक्त करने का अधिकार था। इसके साथ ही, देशी रियासतों

को अपने सदस्य मनोनीत करने का अधिकार दिया गया था अर्थात्, देशी रियासतों के सदस्य संघीय विधायिका में लोकमत के आधार पर निर्वाचित होके नहीं आने थे। इस प्रकार उच्च सदन (संघीय असैम्बली) में 2/5 और निम्न सदन (कौंसिल ऑफ स्टेट) में 1/3 के अनुपात में देशी रियासतों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था। संघ को अस्तित्व में आने के लिए अधिनियम की आवश्यक शर्ते निम्नलिखित थीं -

1. संघ केवल तब ही अस्तित्व, जब कम से कम आधी जनसंख्या कुछ रियासतों की शामिल हो। अर्थात् संघ में शामिल होने वाली रियासतों की जनसंख्या कुल रियासतों की जनसंख्या की आधी होनी चाहिए थी।
2. ऐसी रियासतें जोकि संघीय कौंसिल ऑफ स्टेट में 52 प्रतिनिधि भेजती हो।
3. जब संसद के दोनों द्वारा इसे पारित करने के लिए सम्राट से प्रार्थना की जाये।

1935 का अधिनियम अपने आप में विशिष्ट एवं विलक्षण था। इस प्रस्तावित संघ के घटकों में भारी असमानता थी। ब्रिटिश प्रांतों पर संघ का सर्वाधिक प्रभाव रहता , जबकि देशी रियासतों पर सबसे कम देशी रियासतों पर भी अलग - अलग प्रभाव रहता, क्योंकि यह इस बात पर निर्भर करता की कि, देशी रियासतें किन - किन विषयों को संघ के दायरे में लाती है। इसके साथ ही, यह भी असमानता थी कि, संघीय विधानमंडलों में ब्रिटिश प्रांतों से तो निर्वाचित प्रतिनिधि आते, किन्तु देशी रियासतों से मनोनीत प्रतिनिधि आते। क्योंकि ब्रिटिश प्रांतों में प्रजातांत्रिक व्यवस्था लागू थी और देशी रियासतों में निरंकुश स्वेच्छाचारी व्यवस्था थी।

8.4.2.1 अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन

अधिनियम में संघीय विधानमण्डल का अधिकार संघीय विधान मण्डल के स्थान पर ब्रिटिश संसद को सौंप दिया गया था। इससे संघीय विधानमण्डल पंगु हो गया था। अधिनियम ने गवर्नर जनरल एवं भारत सचिव को इतने विशेषाधिकार दे रखे थे कि, वे संघ की वास्तविक मूल आत्मा को कभी भी कुचल सकते थे। वस्तुतः संघ की व्यवस्था के माध्यम से अंग्रेज भारतीयों को यह बता रहे थे कि, उन्होंने भारतीयों को सब कुछ दे दिया और ब्रिटिश जनता और प्रशासन को बताया गया कि, उन्होंने भारतीयों को कुछ नहीं दिया है।

ब्रिटिश जनता को यह बताया गया कि, प्रस्तावित संघ में देशी रियासतों के ऊपरी सदन में 40 प्रतिशत तथा निचले सदन में 33 प्रतिशत सदस्य होगें, इससे रियासतें अंग्रेजों की मित्र रहेगी और कांग्रेस अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो सकेगी। फिर भी देशी रियासतों ने संघ के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। तर्क दिया गया कि, इससे देशी रियासतों के उन गैर संघीय अधिकारों का पर्याप्त संरक्षण नहीं होता था, जो उन्हें विभिन्न संधियों के माध्यम से प्राप्त है। उधर कांग्रेस, मुस्लिम लीग आदि ने भी संघीय योजना को नकार दिया।

पं॰ जवाहर लाल नेहरू ने तो इसे 'अत्यधिक प्रतिक्रियावादी, प्रगतिहीन एवं विकास की संभावनाओं को नष्ट करने वाला कहा।' जिन्ना ने भी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि, 'यह योजना पूर्णतः सड़ी हुई, मौलिक रूप से खराब तथा पूर्णतः अस्वीकार योग्य थी।' इस प्रकार संघीय योजना अस्तित्व में नहीं आ सकी। जिसका उद्घाटन सम्राट की घोषणा से होना था। लागू होने से पहले ही यह योजना मृत हो गयी। गवर्नर जनरल ने भी 11 सितम्बर, 1939 की घोषणा से संघीय योजना को लागू नहीं करने की घोषणा कर दी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. गवर्नर जनरल ने संघीय योजना को कब लागू नहीं करने की घोषणा की ?
   (क) 5 सितम्बर, 1939 ई0 को (ख) 10 सितम्बर, 1939 ई0 को
   (ग) 11 सितम्बर, 1939 ई0 को (घ) 25 सितम्बर, 1939 ई0 को
2. संघीय सूची में कितने विषय थे ?
   (क) 23 (ख) 39
   (ग) 20 (घ) 59
3. ब्रिटिश भारत में कितने प्रांत थे ?
   (क) दस (ख) ग्यारह
   (ग) आठ (घ) पाँच
4. संघीय योजना को किसने 'अत्यधिक प्रतिक्रियावादी, प्रगतिहीन एवं विकास की संभावनाओं को नष्ट करने वाला कहा' था ?
   (क) महात्मा गांधी ने (ख) पटेल ने
   (ग) पं॰ जवाहर लाल नेहरू ने (घ) जिन्ना ने
5. संघीय योजना को किसने कहा 'यह योजना पूर्णतः सड़ी हुई, मौलिक रूप से खराब तथा पूर्णतः अस्वीकार योग्य थी' ?
   (क) महात्मा गांधी ने (ख) पटेल ने
   (ग) पं॰ जवाहर लाल नेहरू ने (घ) जिन्ना ने

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) संघीय योजना के अस्तित्व में आने के लिए क्या शर्तें थीं ?
   (ख) 1935 का अधिनियम प्रस्तावना रहित क्यों था ?
2. **नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:**
   (अ) अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन कीजिये ?

8.4.3 प्रान्तीय स्वायत्तता

1935 के अधिनियम का सबसे महत्वपूर्ण प्रावधान प्रानतीय स्वायत्ता थी। अधिनियम ने ब्रिटिश भारतीय प्रान्तों को वैधानिक दर्जा देकर प्रान्तों को महत्वपूर्ण इकाई बना दिया था। प्रानतों को स्वायत्ता देकर ब्रिटिश सारे संसार को और भारतीय को यह बताना चाहते थे कि, वे भारतीयों के सच्चे हितैषी हैं। वे शनैः - शनैः प्रशासन की बागडोर भारतीयों को सौंपने का पवित्र विचार रखते हैं तथ उनकी मंशा भारतीयों के प्रति सकारात्मक हैं।

1935 के अधिनियम से प्रांतों को स्वशासित राजनीतिक इकाई का दर्जा मिल जाने से प्रान्त अब अपने आंतरिक मामलों में स्वनिर्णय लेने में सक्षम हो गये थे। प्रांतीय स्वायत्तता के अंतर्गत प्रांतीय सरकारों को निश्चित निर्धारित और सुस्पष्ट क्षेत्र में विशेष अधिकार प्रदान किये गये थे। प्रांतीय सरकारें इस निश्चित निर्धारित क्षेत्र से संबंधित विषयों पर कानून बनाने और लागू करने के लिए स्वतंत्र थी। प्रांतीय स्वायत्तता योजना के अन्तर्गत प्रांतीय सूची के 54 विषयों में प्रांतीय सरकारों की विशिष्ट अधिकार प्राप्त थे, इन विषयों पर प्रांतीय सरकारें, संघीय सरकार एवं विधानमण्डल के हस्तक्षेप से मुक्त थी।

प्रांतीय स्वायत्तता के अंतर्गत की योजना में प्रत्येक प्रान्त के लिए एक कार्यपालिका तथा विधानमण्डल का प्रावधान किया गया था। ब्रिटिश भारत के ग्यारह प्रांतों में से छः विधानमण्डलों में दो सदनों की व्यवस्था की गयी थी। प्रांतीय स्वायत्तता को विद्वानों ने व्यारव्यामित करने का प्रयास किया है। उन्होंने प्रांतीय स्वायत्तता से तात्पर्य प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायी सरकारों की स्थापना तथा प्रान्तों को एक निश्चित निर्धारित क्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने के अधिकार से माना है। अतः प्रांतीय स्वायत्तता से मतलब ऐसी स्वायत्तता से है, जिसमें प्रांतों को उनके लिए निर्धारित विषयों में पूर्ण स्वतंत्रता जिसमें कोई बाह्य हस्तक्षेप न हो और प्रांतीय सरकारें स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सके तथा समस्त प्रांतों में उत्तरदायी सरकारों की स्थापना होना।

8.4.3.1 प्रांतीय कार्यपालिका

1935 के अधिनियम के अंतर्गत प्रांतीय कार्यपालिका की संरचना गवर्नर और प्रंातीय मंत्रिपरिषद से मिलकर बनती थी। प्रांतीय कार्यपालिका की शक्ति गवर्नरों में समाहित होती थी उसे प्रशासन में सहयोग देने के लिए एक मंत्रीपरिषद होती थी। इस प्रकार प्रांतों का शासन मंत्रिपरिषद के सहयोग से गवर्नर चलाता था। गवर्नर प्रान्तों की कार्यपालिका का अध्यक्ष होता था। गवर्नरों की नियुक्ति भारत सचिव एवं गवर्नर जनरल की अनुशंसा पर ब्रिटिश समा्रट करता था। भारत सचिव की अनुशंसा पर बंगाल, बम्बई एवं मद्रास के गवर्नरों की तथा शेष अन्य प्रान्तों के गवर्नरों की नियुक्ति गवर्नर जनरल की अनुशंसा पर सम्राट करता था। प्रांतीय गवर्नर प्रांतों में ब्रिटिश सम्राट का प्रतिनिधि होता था। गवर्नर का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता था।

8.4.3.2 प्रांतीय गवर्नर की शक्तियाँ

1935 के अधिनियम के अंतर्गत प्रांतीय स्वायत्तता की योजना में गवर्नर को तीन प्रकार की कार्यपालिका शक्तियाँ प्रदान की गयी थी - स्वेच्छाचारी शक्तियाँ, व्यक्तिगत निर्णात्मक शक्तियाँ तथा मंत्रियों की सलाह से प्रयोग में होने वाली शक्तियाँ। प्रांतीय गवर्नरों को असीम स्वेच्छाचारी शक्तियाँ प्राप्त थी, यह गवर्नर की इच्छा पर ही निर्भर था कि, वह किन शक्तियों का प्रयोग स्वेच्छाचारी ढंग से करना चाहता है और किन की सलाह से प्रयोग करना चाहता था, अर्थात गवर्नर को ही यह निर्णय लेना होता था कि, वह कब स्वेच्छाचारी बने और कब नहीं बने। गवर्नरों को मंत्रीपरिषद की बैठक की अध्यक्षता का वैधानिक अधिकार था। प्रान्तीय विधानमण्डलों को बुलाने और भंग करने का अधिकार भी गवर्नर को था। प्रान्तीय मंत्रियों की नियुक्ति एवं बर्खास्तगी का अधिकार उसे था। प्रान्तीय विधानमण्डलों की संयुक्त बैठक बुलाना तथा अध्यादेश जारी करने का अधिकार गवर्नर में निहित था इस प्रकार गवर्नर को अनेक स्वेच्छाचारी शक्तियाँ प्राप्त थी।

1935 के अधिनियम के अंतर्गत प्रांतीय गवर्नर को व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियाँ प्रदन की गयी थी। जिनक प्रयोग वह प्रांतीय मंत्रियों की सलाह से करता था। गवर्नर प्रांतीय मंत्रियों की सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं था, अर्थात् प्रांतीय मंत्रियों की सलाह एवं परामर्श गवर्नर की इच्छा पर निर्भर था। प्रांतीय गवर्नर को प्रांतीय शक्ति और सुरक्षा रियासतों और उनके शासकों के अधिकारों एवं हितों की रक्षा करना, महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) की नियुक्ति करना, सार्वजनिक सेवाओं और पुलिस नियमों में संशोधन करना अल्पसंख्यकों की सुरक्षा सुनिश्चित करना आदि व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियाँ प्राप्त थी।

1935 के अधिनियम से गवर्नर को अनेक ऐसी शक्तियाँ प्राप्त थी, जिनका प्रयोग वह मंत्रियों की सलाह से करता था। स्वेच्छाचारी शक्तियों और व्यक्तिगत निर्णयों संबंधी अधिकारों के अतिरिक्त जो भी अधिकार शेष थे, उनका प्रयोग गवर्नर मंत्रियों की सलाह पर करता था। ऐसी बहुत कम शक्तियाँ अधिनियम द्वारा प्रदत्त थी।

गवर्नर को 1935 के अधिनियम ने व्यवस्थापन शक्तियाँ भी प्रदान की थी। व्यवस्थापन शक्तियों से तात्पर्य ऐसी संवैधानिक शक्तियों से जिसमें विधानमण्डलों से संबंधित शक्तियाँ होती है। प्रांतीय सदनों की बैठक बुलाना, स्थगित करना एवं भंग करना संयुक्त बैठकें बुलाना तथा बैठकों को संबोधित करना, प्रांतीय विधानमण्डल की क्रिया विधि के लिए नियम कायदे बनाना, बिल पास करना तथा बिल को पुनर्विचार के लिए विधानमण्डल को वापस भेजना, आंतरिक शांति व्यवस्था तथा रियासतों से संबंधित मामलों पर बहस पर पाबंदी लगा सकता था, अध्यादेश जारी करने का अधिकार गवर्नर का था तथा विधानमण्डलों की परवाह किये बिना भी वह नियम कानून बनाना आदि शक्तियाँ उसे प्राप्त थी।

गवर्नर को 1935 के अधिनियम ने वित्तीय शक्तियों से भी परिपूर्ण कर रखा था विधानमण्डल गवर्नर के निर्देश पर बजट तैयार करते थे। विधानमण्डल की अस्वीकृति बाबजूद भी गवर्नर अपने विशेषाधिकार से विशेष धन स्वीकृत कर सकता था। विधानमण्डलों को अनुदान की मांग प्रस्तुत करने के लिए गवर्नर से अनुमति लेनी होती थी। इस प्रकार अनेक वित्तीय शक्तियाँ भी गवर्नर को प्राप्त थी। 1935 के अधिनियम के तहत गवर्नर को असीमित शक्तियाँ प्राप्त थी। गवर्नर को अधिनियम ने अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया था। समस्त शक्तियाँ गवर्नर में निहित थी और गवर्नर की शक्तियाँ पर अंकुश लगाने का कोई प्रावधान नहीं किया गया था। गवर्नर को इतनी शक्तियाँ प्राप्त थी कि, वह गवर्नर की इच्छा शक्ति पर ही निर्भर करता था कि, वह प्रान्तीय सरकार को कितना स्वायत्तशाली होने देता है। किसी भी स्वायत्तशासी शासन को कार्यपालिका के प्रमुख को इतने अधिकार नहीं प्रदान किये जाते। गवर्नर को प्रदत्त इतनी शक्तियों को देखते हुए विद्वानों ने कहा है कि स्वायत्तता मंत्रिमण्डल को नहीं, अपितु गवर्नर को प्रदान की गयी है।

1935 के अधिनियम के प्रावधानों में प्रांतीय गवर्नर को शासन में सहयोग के लिए मंत्रिपरिषद् के गठन की बात कही गयी थी। मंत्रीपरिषद गवर्नर को विवेकाधीन विषयों के अतिरिक्त विषयों पर सलाह देती थी। यह सलाह भी गवर्नर के लिए बाध्यतापूरक नहीं थी। गवर्नर बहुमत दल के नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त करता था तथ उसी की सलाह पर मंत्रियों की नियुक्ति करता था। मंत्री का विधानमण्डल में अविश्वास होने पर हराया जा सकता था।

मंत्रिपरिषद् सम्मिलित रूप से सदन के प्रति उत्तरदायी होती थी। किन्तु मंत्रिपरिषद् की स्थिति गवर्नर की शक्तियों के कारण अत्यन्त कमजोर हो गयी थी।

8.4.3.3 प्रान्तीय विधानमण्डल

प्रान्तीय विधानमण्डलों की व्यवस्था 1935 के अधिनियम के अंतर्गत की गयी थी। अधिनियम ने ब्रिटिश भारत के ग्यारह प्रान्तों में से छः प्रान्तों में द्विसदनीय विधानमण्डलों का प्रावधान किया गया था, जिसमें उच्च सदन विधानपरिषद तथा निम्न सदन विधानसभा कहलाता था। अधिनियम में प्रान्तों की विधानसभाओं के लिए सदस्यों की संख्या इस प्रकार थी, मद्रास में 215 बंगाल में 250, संयुक्त प्रांत में 228, बम्बई में 175, पंजाब में 175, बिहार में 152, मध्यप्रांत में 112, सिन्ध में 60, उड़ीसा में 60, असम में 108, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत में 50। विधानसभाओं का कार्यकाल पाँच वर्ष का था, विशेष परिस्थिति में विधानसभा को निर्धारित करने का भी प्रावधान था। जबकि, विधानपरिषद एक विधानपरिषद स्थायी सदन था। विधानपरिषद के सदस्यों का कार्यकाल 9 वर्ष का होता था तथा विधानपरिषद के एक तिहाई सदस्य प्रति वर्ष तीन वर्ष में रिटायर हो जाते थे।

प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं को प्रान्तीय और समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया गया था। अधिनियम में प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं के सदस्यों को प्रश्न करने, पूरक प्रश्न पूंछने, काम रोकों प्रस्ताव लाने, आलोचना करो आदि का अधिकार प्रदान किया गया था। प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं के सदस्य निरंकुश प्रशासन पर अंकुश लाने का भी प्रयास करते थे। प्रांतीय विधानसभा अविश्वास प्रस्ताव से मंत्रियों को हटा सकती थी।

8.4.3.4 प्रांतीय स्वायत्ता का मूल्यांकन

प्रांतीय स्वायत्तता पर विचार करने पर विदित होता है कि 1935 के अधिनियम द्वारा प्रदत्त प्रांतीय स्वायत्तता मात्र एक डकोसला था। प्रांतीय स्वायत्तता नाममात्र की थी। गवर्नर को असीमित शक्तियाँ प्रदान की गयी थी। गवर्नर कभी भी प्रांतीय सरकारों का गला घोंट सकता था।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. ब्रिटिश भारत के कितने प्रांतों में दो सदनों की व्यवस्था की गयी थी ?
   (क) दस (ख) ग्यारह
   (ग) छः (घ) पाँच
2. प्रांतीय सूची में कितने विषय थे ?
   (क) 23 (ख) 54
   (ग) 20 (घ) 59
3. विधानसभाओं का कार्यकाल कितने वर्ष का था ?
   (क) दस (ख) ग्यारह
   (ग) छः (घ) पाँच

4. विधानपरिषद के सदस्यों का कार्यकाल कितने वर्ष का था ?

(क) दस (ख) ग्यारह

(ग) नौ (घ) पाँच

5. प्रांतीय गवर्नर को कितने प्रकार की कार्यपालिका शक्तियाँ प्राप्त थीं ?

(क) तीन (ख) चार

(ग) छः (घ) पाँच

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) प्रान्तीय विधानमण्डल।

(ख) प्रांतीय कार्यपालिका।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) प्रांतीय गवर्नर की शक्तियों का विवरण दीजिये ?

8.4.4 केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना

1935 के अधिनियम से केन्द्र में द्वैध शासन स्थापित कर दिया गया था। द्वैध शासन अर्थात्, केन्द्र में गवर्नर जनरल और संघीय विधान मण्डल दो अलग - अलग प्रशासनिक ईकाईयों को शासन के अधिकार प्रदान किये गये थे। अधिनियम के अंतर्गत केन्द्रीय विषयों में से रक्षा, विदेश, धार्मिक मामले एवं कबाइली क्षेत्र आदि विषय, जिन्हें संरक्षित विषय कहा गया को गवर्नर - जनरल के अधीन कर दिया गया। इन विषयों पर गवर्नर जनरल अपनी परिषद् की सहायता से अपने विवेकानुसार शासन करेगा। गवर्नर जनरल एवं उसकी परिषद् के पार्षद केन्द्रीय विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं थे।

इन विषयों के अलावा अन्य विषयों, जिन्हें हस्तान्तरित विषय कहा गया पर केन्द्रीय विधान मण्डलों के मंत्रियों द्वारा शासित होगें तथा ये मंत्री अपने कार्यों और उत्तरदायित्वों के लिए केन्द्रीय विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होंगे। इस प्रकार केन्द्र में दो शासन गवर्नर जनरल एवं केन्द्रीय विधानमण्डल बना दिये गये। इस द्वैध शासन की स्थापना के पीछे तर्क यह दिया गया कि, रक्षित विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है, साम्राज्य के लिए ये संवेदनशील है और साम्राज्य की स्थापना के लिए भी आवश्यक है तथा साम्राज्य की सुरक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ ही यह भी तर्क दिया गया कि, भारतीय इतने योग्य और अनुभवी नहीं है कि, ऐसे संवेदनशील विषयों को उन्हें सौंपा जाये।

8.4.5 विषयों का विभाजन

1935 के अधिनियम के द्वारा शासन के विषयों का स्पष्ट रूप से विभाजन कर दिया गया था। ताकि, शासन संचालन में कोई खिंचाव न पैंदा हो।अधिनियम के द्वारा विषयों का स्पष्ट विभाजन तीन सूचीयों - संघीय राज्य एवं समवर्ती सूची में कर दिया गया था। संघीय सूची, जिसमें 59 विषय रखे गये थे, ये विषय समस्त भारत पर एक समान लागू होने थे। प्रांतीय सूची में 54 विषय रखे गये थे तथा समवर्ती सूची में 36 विषय रखे गये थे। इन विषयों पर संघीय सूची के विषयों पर संघ, प्रांतीय सूची के विषयों प्रांत तथा समवर्ती सूची पर संघ और प्रांत दोनों

कानून बना सकते थे, किन्तु विवाद की स्थिति में समवर्ती सूची पर बनाये गये कानून पर संघ के कानून को मान्यता प्रदान करने का प्रावधान था।

8.4.6 विधानमण्डलों का विस्तार

1935 के अधिनियम के द्वारा विधानमण्डलों का विस्तार कर दिया गया। इसका उद्देश्य अधिक से अधिक लोगों को विधानमण्डलों में स्थान प्रदान करना तथा विभिन्न क्षेत्रों को विधानमण्डलों में अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान करना भी था। इसके द्वारा ब्रिटिश सरकार भारतीयों में अपनी स्वीकारता को भी बढ़ाना चाहती थी तथा यह भी दर्शाना चाहती थी कि, हम भारतीयों को शासन में अधिक से अधिक भागीदारी प्रदान कर रहे है। संघीय विधानमण्डल के उच्च सदन में 260 तथा निम्न सदन में 375 सदस्य प्रस्तावित किये गये थे। इसके साथ ही, प्रांतीय विधानमण्डलों के सदस्यों की संख्या भी पहले से विधानमण्डलों की भी व्यवस्था की गयी थी। इससे प्रान्तों में भी भारतीयों का प्रतिनिधित्व बड़ा दिया गया था।

8.4.7 साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली

1935 के अधिनियम ने साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को और अधिक विस्तृत एवं सुदृढ़ बना दिया। साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को अंग्रेजों ने साम्राज्य के हित में कायम किया था तथा भारतीयों में वैमनस्यता को और अधिक बढ़ाने के लिए था। मुसलमानों को उनकी जनसंख्या से अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इसके साथ ही, हरिजनों के लिए भी आरक्षित निर्वाचन प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इसका उद्देश्य हिन्दुओं का हिन्दुओं के साथ प्रतितोलन करना तथा हिन्दुओं में आपस में फूट डालना था।

8.4.8 मताधिकार का विस्तार

1935 में इस अधिनियम से मताधिकार का भी विस्तार कर दिया गया था। अब ग्यारह प्रतिशत भारतीय मताधिकार का प्रयोग कर सकते थे। इससे भारतीयों को अधिक संख्या में मताधिकार का अधिकार मिल सका।

8.4.9 संघीय न्यायालय की स्थापना

1935 के अधिनियम के अंतर्गत एक संघीय न्यायालय के स्थापना का प्रावधान भी किया गया था। संघीय न्यायालय की स्थापना इस उद्देश्य से करने का प्रावधान किया गया था कि, यह न्यायालय संघ और प्रान्तों के मध्य होने वाले विवादों को सुलझाने का कार्य करेगा। यह न्यायालय भारत के न्यायालयों में उच्च था, किन्तु यह न्यायालय भारत का सर्वोच्च न्यायालय नहीं था, इसके विरूद्ध इंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल में अपील की जा सकती थी। फिर इस न्यायालय का अपना विशिष्ट महत्व था, कम से कम भारत में इस तरह का न्यायालय तो स्थापित किया गया। जो भारत में सभी न्यायालय पर उच्च था और इससे भविष्य के भारत के लिए भविष्य के उच्चतम न्यायालय का रास्ता तो साफ हुआ ही। इस संघीय न्यायालय को 1935 के अधिनियम की व्याख्या करने का भी अधिकार प्रदान किया गया था। अर्थात् यह न्यायालय जिस अधिनियम के तहत बना उस अधिनियम की व्याख्या भी कर सकता था।

8.4.10 संरक्षण एवं आरक्षण के प्रावधान

1935 के अधिनियम में विशिष्ट संरक्षण एवं आरक्षण के प्रावधान भी किये गये थे। इस अधिनियम में गवर्नर जनरल को अनेक विशेषाधिकार प्रदान किये गये थे। यह विशेषाधिकार थे - संघीय विधानमण्डल के रक्षित विषयों जैसे - रक्षा, विदेश, धार्मिक मामलें एवं कबाइली क्षेत्रों का प्रावधान गवर्नर जनरल को प्रशासन के लिए संरक्षित और आरक्षित किये गये थे, जिनका प्रशासन गवर्नर जनरल अपने पार्षदों के माध्यम से चलता था।

गवर्नर - जनरल को प्रदत्त ये विशेषाधिकार बहुत ही वृहद परिप्रेक्ष्य में लागू होते थे, जैसे अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करना, अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करना, अन्य अल्पमतों के हितों एवं अधिकारों की रक्षा करना, सार्वजनिक सेवाओं का समुचित तरीके से कार्य करना, आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षा की व्यवस्था करना, शांति और व्यवस्था बनाये रखना, देशी रियासतों के शासकों के पदों एवं अधिकारों की सुरक्षा, साम्राज्य के आर्थिक हितों की रक्षा करना आदि थे। कुल मिलाकर गवर्नर - जनरल को प्राप्त संरक्षण और आरक्षण के विशेषाधिकार ब्रिटिश साम्राज्य के भारत में हितों की सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रदान किये गये थे।

गवर्नर जनरल को इन प्रावधानों के अंतर्गत असीम शक्तियाँ प्राप्त थी, वह अपने स्वविवेक से जो उसे उचित लगता कर सकता था। संरक्षण और आरक्षण के इन प्रावधानों से गवर्नर जनरल अधिनियम की मूल भावना को भी कुचल सकता था। वह इन प्रावधानों के माध्यम से मनमाने ढंग से निरंकुश शक्ति की तरी कार्य सकता था। आपातकाल के समय तो संपूर्ण शक्ति को वह अपने हाथों में लेकर स्वेच्छाचारी निरंकुश शासक की तरह कार्य करता था। गवर्नर जनरल को प्राप्त इन विशेषाधिकारों को ही संरक्षण और आरक्षण की संबा प्रदान की गयी थी।

8.4.11 भारतीय व्यवस्थापिका का सत्तारहित स्वरूप प्रदान

1935 के अधिनियम के प्रावधानों के कारण भारतीय व्यवस्थापिका पंगु बन गयी थी। अधिनियम में जानबूझकर ऐसा प्रावधान किया गया था, जिससे भारतीय व्यवस्थापिका कोई ऐसा निर्णय न ले सके, जिससे साम्राज्य को हानि हो। 1935 के अधिनियम के तहत भारतीय व्यवस्थापिका जो कानून बनाती उसकी स्वीकृति ब्रिटिश संसद से लेना अनिवार्य था अर्थात् भारतीय व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून ब्रिटिश संसद की स्वीकृति के बाद ही कानून बन सकते थे। इस प्रकार 1935 के अधिनियम ने भारतीय व्यवस्थापिका को सत्तारहित स्वरूप प्रदान कर दिया था।

8.4.12 ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता

1935 के अधिनियम से ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता स्थापित हो गयी थी। 1935 के अधिनियम में संशोधन की शक्ति ब्रिटिश संसद में निहित कर दी गयी थी। भारतीय व्यवस्थापिका 1935 के अधिनियम में संशोधन नहीं कर सकती थी। संशोधन की शक्ति तो ब्रिटिश संसद को सौंप दी गयी थी अर्थात् 1935 के अधिनियम में संशोधन का अधिकार ब्रिटिश संसद को ही था। इस प्रकार 1935 के अधिनियम ने ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता स्थापित कर दी थी।

8.4.13 भारत परिषद का अंत

1935 के अधिनियम ने भारत परिषद का अंत कर दिया था। इससे गृह सरकार में आमूलचूल परिवर्तन आया भारत सचिव का अब उन विषयों पर नियंत्रण नहीं रहा, जिन विषयों पर गवर्नर जनरल अपने मंत्रियों की सलाह पर कार्य करता था। अर्थात् रक्षित विषयों पर भारत सचिव का नियंत्रण अब समाप्त हो गया। 1935 के अधिनियम ने भारत परषिद् को समाप्त कर दिया। उसके स्थान पर सलाहकारों की नियुक्ति कर दी गयी।

8.4.14 1935 का अधिनियम का मूल्यांकन

1935 का अधिनियम, अंग्रेजी सरकार द्वारा भारतीय प्रशासन के लिए जारी अधिनियमों एवं विधिक कानूनों की एक श्रृंखला था। 1935 के अधिनियम के अनेक प्रावधान अपना वास्तविक रूप नहीं ले सके। 1935 के अधिनियम की संघीय योजना कार्यरूप लेने से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो गयी। यह इतनी उलझी हुई थी कि, वह अस्तित्व में आ ही नहीं सकती थी। इसी कारण केन्द्रीय सरकार 1919 के अधिनियम के कानूनों के आधार पर ही चलती रही। सामुदायिक एवं प्रतिक्रियावादी तत्वों को अधिनियम ने और उभारा। अधिनियम में गवर्नर जनरल एवं प्रांतीय गवर्नरों को अत्यधिक शक्तियाँ प्रदान की गयी थी, जिससे अधिनिमय की वास्तविक आत्मा को कुचल दिया गया था। प्रांतीय स्वायत्तता तो नाममात्र की ही रह गयी थी। 1935 के अधिनियम के कुछ प्रावधान लागू हो गये थे, जैसे संघीय न्यायालय 1935 में स्थापित हो गया, संघीय बैंक भी 1935 में स्थापित हो गया तथा 1937 ई0 में प्रांतों में सरकारों ने अपना कार्यभार संभाल लिया था।

8.5 सारांश

1935 का अधिनियम अपने आप में अभिनव था। यह अधिनियम अब तक के सभी अधिनियमों विशेष था। अधिनियम में संघीय योजना और प्रांतीय स्वायत्ता अपने आप में विशिष्ट प्रावधान थे। इस अधिनियम के द्वारा भारत के भावी संविधान की एक तरह से आधारशिला रख दी गयी थी और स्वतंत्र भारत का आधुनिक संविधान बहुत हद तक 1935 के अधिनियम पर ही आधारित है। 1935 के अधिनियम से भारत में संघीय न्यायालय एवं संघीय बैंक स्थापित हो सके। हालाँकि, 1935 के अधिनियम में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली, प्रांतीय गवर्नरों को अत्यधिक शक्तियाँ आदि दोष निहित थे।

8.6 तकनीकी शब्दावली

साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली:- धर्म के आधार पर सदस्यों के चुनाव की व्यवस्था।

वैमनस्यता :- बैरभाव रखना।

स्वेच्छाचारी:- मनमाना आचरण करने वाला, नियम कानून को न मानने वाला निरंकुश शासक।

अपरिवर्जित क्षेत्र:- प्रांतीय गवर्नर को शासक के लिए दिये गये क्षेत्र। जिन पर प्रांतीय मंत्रीपरिषद् का कोई हस्तक्षेप नहीं होता था।

वैधानिक:- कानूनी

निरंकुश शासक:- जिस पर कोई अंकुश नहीं हो। अर्थात् ऐसा शासक जिसके कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता हो।

8.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 8.4.2 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 8.4.2.1 अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन
2. देखिए 8.4.2 अखिल भारतीय संघ की योजना
3. देखिए 8.4.2 अखिल भारतीय संघ की योजना
4. देखिए 8.4.2.1 अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन
5. देखिए 8.4.2.1 अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) देखिए 8.4.2 अखिल भारतीय संघ की योजना
   (ख) देखिए 8.4.1 प्रस्तावना रहित अधिनियम
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) देखिए 8.4.2.1 अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन

इकाई 8.4.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 8.4.3.3 प्रान्तीय विधानमण्डल
2. देखिए 8.4.3 प्रान्तीय स्वायत्ता
3. देखिए 8.4.3.3 प्रान्तीय विधानमण्डल
4. देखिए 8.4.3.3 प्रान्तीय विधानमण्डल
5. देखिए 8.4.3.2 प्रांतीय गवर्नर की शक्तियाँ

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) देखिए 8.4.3.3 प्रान्तीय विधानमण्डल
   (ख) देखिए 8.4.3.1 प्रांतीय कार्यपालिका
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) देखिए 8.4.3.2 प्रांतीय गवर्नर की शक्तियाँ

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, आर॰ सी॰ - भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, संवैधानिक विकास तथा आधुनिक संविधान का तुलनात्मक अध्ययन, नई दिल्ली, 1965
2. बसु, डी॰ डी॰ - भारत का संविधान, नागपुर, 2001
3. परांजपे, एन॰ वी॰ - भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, इलाहाबाद, 2003
4. पाण्डेय, जय नारायण - भारत का संविधान, इलाहाबाद, 1996
5. राय, सत्या एम॰ (संपा॰) - भारत में उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवाद, नई दिल्ली, 1990

6. ताराचंद - भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, चतुर्थ खण्ड, नई दिल्ली, 2007

8.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बिपिन चन्द्र - आधुनिक भारत, नई दिल्ली, 1971
2. फड़िया, बी॰ एल॰ - भारत का राष्ट्रीय आंदोलन तथा सांविधानिक विकास, जयपुर,1991
3. ग्रोवर, बी॰ एल॰ एवं यशपाल - आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1999
4. पाठक,सुशीलमाधव-भारतीयस्वाधीनतासंग्रामकाइतिहास(1857-1947),वाराणसी, 1993
5. त्रिपाठी, जी॰ पी॰ - भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, इलाहाबाद, 2001

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. 1935 के अधिनियम की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिये ?

प्रश्न 2. अखिल भारतीय संघ की योजना का सविस्तार वर्णन कीजिये ? यह क्यों असफल हो गयी

प्रश्न 3. 1935 के अधिनियम के तहत प्रांतीय स्वायत्ता का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

इकाई नौ

भारत छोड़ो आन्दोलन

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठभूमि

9.3.1 द्वितीय विश्व युद्ध

9.3.2 भारत को द्वितीय विश्व युद्ध में शामिल करना

9.3.3 डोमिनियन स्टेट्स की घोषणा

9.3.4 प्रांतीय मंत्रीमण्डलों से इस्तीफा

9.3.5 अगस्त प्रस्ताव

9.3.6 व्यक्तिगत सत्याग्रह

9.3.7 द्वितीय विश्व युद्ध की भयानकता एवं अंतर्राष्ट्रीय दबाव

9.3.8 क्रिप्स मिशन

9.4 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव

9.4.1 भारत छोड़ो आन्दोलन का उद्देश्य एवं कार्यक्रम

9.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाएँ

9.5 सारांश

9.6 तकनीकी शब्दावली

9.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

9.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

भारत की स्वतंत्रता के लिए भारतीयों ने अपना सर्वस्व त्यागकर अंग्रेजों का सामना किया। भारतीयों ने अपने प्राण - प्रण से स्वतंत्रता संग्राम की बेदी पर स्वयं न्यौछावर कर दिया था। स्वतंत्रता संग्राम की ओर अंतिम कदम बढ़ाते हुए भारतीयों ने 1942 ई0 में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' चलाया। इस आन्दोलन में भारतीयों ने घोर संघर्ष किया। यह आंदोलन अपने आप में अभिनव आंदोलन था, जिसमें देश का प्रत्येक नागरिक स्वयं अपना नेता था और उसका अपना स्वयं का कार्यक्रम था तथा उसे स्वयं तय करना था कि वह किस प्रकार के साधनों का प्रयोग करेगा। किन्तु उद्देश्य निश्चित था, अंतिम सांस तक संघर्ष करना और भारत को स्वतंत्रता दिलाना।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. विद्यार्थी स्वतंत्रता संग्राम के महत्वपूर्ण तत्वों के बारे में जान सकेंगे।
2. विद्यार्थी भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठभूमि को समझ सकेगें।
3. विद्यार्थी द्वितीय विश्व युद्ध के बारे में जानेंगे।
4. विद्यार्थी अगस्त प्रस्ताव के बारे में जान सकेंगे।
5. विद्यार्थी व्यक्तिगत सत्याग्रह को समझ सकेगें।
6. विद्यार्थी क्रिप्स मिशन को समझ सकेगें।
7. विद्यार्थी भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव के बारे में जान सकेंगे।
8. विद्यार्थी भारत छोड़ो आन्दोलन के उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों को समझ सकेगें।
9. विद्यार्थी भारत छोड़ो आन्दोलन की प्रगति एवं घटनाओं को जान सकेंगे।
10. विद्यार्थी भूमिगत आंदोलन, समानान्तर सरकारों आदि के बारे में जान सकेंगे।

9.3 भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठभूमि

भारत की आम जनता की स्वतंत्रता के लिए तृष्णा ने आंदोलन को विकराल रूप प्रदान किया। जिससे अंग्रेजी सरकार की चूँलें हिल गयी और अंत में भारत छोड़ो आन्दोलन भारत की स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि बन गया।

9.3.1 द्वितीय विश्व युद्ध

भारत छोड़ो आंदोलन उन सभी आंदोलनों की अंतिम कड़ी था, जो आजादी के लिए किये गये थे। भारत छोड़ो आंदोलन से पहले भारतीय राजनैतिक पटल पर ऐसी पृष्ठभूमि बनने लगयी थी, जिनके कारण आन्दोलन अवश्यसंभावी बन गया था। ऐसी परिस्थिति में 1 सितम्बर, 1939 ई0 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया। इंग्लैण्ड और उसके सहयोगियों ने द्वितीय विश्व की तार्किकता को प्रगट करने के लिए कहा कि वे तो विश्व में प्रजातंत्र की सुरक्षा की सद्भावना से युद्ध कर रहे हैं।

9.3.2 भारत को द्वितीय विश्व युद्ध में शामिल करना

इंग्लैण्ड ने युद्ध का पवित्र आदर्श बताते हुए युद्ध छेड़ा। किन्तु इसी बीच भारत में वायसराय लिनलिथगों ने 3 सितंबर, 1939 को विश्व युद्ध में इंग्लैण्ड की ओर से भारत के सम्मिलित होने की एक तरफा घोषणा कर दी तथा समस्त आपातकालीन शक्तियों को अपने हाथों में ले लिया। वायसराय के इस कृत्य से सारा देश सन्न रहा गया। भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने कहा कि वायसराय न किसी सलाह से यह कदम उठाया है और भारत को किस पवित्र आदर्श के लिए युद्ध में झौंक दिया है? वायसराय का भारतीय जनमानस की इच्छा के विरूद्ध भारत को युद्ध में सम्मिलित करने के निर्णय के विरूद्ध गहरा आक्रोश भारतीयों में व्याप्त हो गया। प्रारंभ में तो गांधीजी ने भी इंग्लैण्ड का नैतिक समर्थन किया। किन्तु कालान्तर में उन्होंने अपना विचार बदल दिया। वायसराय के निर्णय ने भारतीय राजनैतिक धरातल में भूचाल ला दिया था, चारों ओर राजनैतिक सरगर्मी तेजी से बढ़ती जा रही थी, ऐसी दशा में कांग्रेस ने भारतीयों को आत्मनिर्णय का अधिकार की मांग कर डाली।

9.3.3 डोमिनियन स्टेट्स की घोषणा

वायसराय लिनलिथगों ने बढ़ते राजनैतिक तापमान को देखते हुए 17 अक्टूबर 1939 की घोषणा की कि युद्ध के बाद भारतीयों को डोमिनियन स्टेट्स (औपनिवेशिक अधिराज्य) प्रदान किया जायेगा। वायसराय की इस घोषणा से कांग्रेस के नेता तिलमिला गये और उन्होंने कहा कि 'औपनिवेशिक अधिराज्य' की बात अब बहुत पुरानी हो चुकी है और अब वक्त आ गया है कि, जब इंग्लैण्ड को भारतीयों के लिए अगले प्रगतिशील कदम उठाने चाहिए और भारत को आजादी देने की प्रक्रिया प्रारंभ करने की बात करना चाहिए।

9.3.4 प्रांतीय मंत्रीमण्डलों से इस्तीफा

बहरहाल, वायसराय लिनलिथगों के डोमिनियन स्टेट्स के प्रस्ताव को कांग्रेस ने ठुकरा दिया और अपनी लगातार की जा रही अनदेखी पर 23 अक्टूबर, 1939 ई0 को कांग्रेस के आठों प्रांतों की सरकारों ने इस्तीफा दे दिया। इससे निश्चित रूप से अंग्रेजों और कांग्रेस के मध्य खिचाव और बढ़ गया। ऐसी दशा में भी गाँधी - नेहरू इंग्लैण्ड का सहयोग करने की भावना रखते थे और अंग्रेजी सरकार से तार्किक वार्ता की इच्छा रखते थे, किन्तु अंग्रेजी सरकार कांग्रेसियों की एक भी बात सुनने को तैयार नहीं थी। इससे कांग्रेस और अंग्रेजी सरकार के बीच मतभेद और गहरे होते चले गये।

9.3.5 अगस्त प्रस्ताव

अंग्रेजी सरकार ने बढ़ते गतिरोध को समाप्त करने की दृष्टि से और युद्ध में भारतीयों के सहयोग लेने की गर्ज से तथा भारतीय राजनैतिक हलचल को शांत करके युद्ध पर ध्यान देने की दृष्टि से कोई न कोई रास्ता निकालने का निर्णय लिया और 8 अगस्त, 1940 ई0 को एक मसौदा प्रस्तुत किया, जोकि भारतीय इतिहास में 'अगस्त प्रस्ताव' (अगस्त ऑफर) के नाम से जाना जाता है। अगस्त प्रस्ताव के प्रस्तावों में कुछ नया नहीं था, इसमें भी डोमिनियन स्टेट्स की बात कही गयी थी, इसके साथ ही विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद संविधान पीठ के गठन की बात कही गयी थी।

प्रस्ताव में वायसराय की कार्यकारिणी परिषद एवं सलाहकार परिषद में भारतीयों को प्रतिनिधित्व देने की बात कही गयी थी और जुलाई 1941 ई0 में अंग्रेजी सरकार ने प्रगतिशील कदम उठाते हुए वायसराय की कार्यकारिणी में विस्तार करते हुए आठ सदस्यों को नियुक्त किया। अब वायसराय की कार्यकारिणी के 12 में से 8 सदस्य भारतीय थे, जो कि अब तक के इतिहास में सर्वाधिक होने के साथ ही, भारतीयों के बहुमत वाली परिषद थी। किन्तु अंग्रेजों का 'अगस्त प्रस्ताव' कांग्रेस को संतुष्ट न कर सका। क्योंकि इसमें देश के विभाजन की भावना छिपी थी, क्योंकि सत्ता हस्तांतरण अन्य वर्गो सम्प्रदायों की संतुष्टि के बिना संभव न था।

9.3.6 व्यक्तिगत सत्याग्रह

अंग्रेजी सरकार और कांग्रेस के बीच लगातार मतभेद और मतभेद गहरी खायी का रूप लेता जा रहा था। ऐसे समय में जब कांग्रेस, अंग्रेजी सरकार के साथ सहयोगात्मक रवैया अपना रही थी, तब भी अंग्रेजी सकरार कोई सकारात्मक पहल नहीं कर रही थी। अब कांग्रेस ने आगे की रणनीति बनाते हुए आगामी आंदोलन के लिए देश की जनता में चेतना जागृत करने की अंग्रेजों के विरूद्ध एक सीमित आंदोलन चलाने का विचार किया। 15 अगस्त, 1940 कें बंबई अधिवेशन में कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारंभ करने का निर्णय ले लिया। महात्मा गाँधी इस आंदोलन के प्रमुख सूत्रधार थे, उन्होंने विनोवा भावे को प्रथम एवं पं. जवाहर लाल नेहरू को द्वितीय व्यक्तिगत सत्याग्राही चुना।

इस आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य देशभर में अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध अहिंसात्मक ढंग से विनोध प्रगट करना एवं युद्ध के विरूद्ध अपना सकारात्मक विरोध प्रगट करना था। ज्ञातव्य रहे कि कांग्रेस ने बड़ी ही रणनीतिक चपलता से इस आंदोलन को बड़े ही सीमित ढंग से चलाया। वह अंग्रेजी सरकार को किसी भी प्रकार से दमन का अवसर नहीं देना चाहती थी। कांग्रेसी बड़ी संख्या में अंग्रेजी सरकार और विश्व युद्ध के खिलाफ आवाज बुलंद करके शांति से अपनी गिरफ्तारी देने लगे और बड़ी संख्या में लोग जेल में जा चुके थे, किन्तु 1941 के अंत में आंदोलन कमजोर पड़ने लगा और कांग्रेसियों को जेल से मुक्त कर दिया गया। किन्तु कांग्रेस का राजनैतिक वातावरण को गर्माये रखने का उद्देश्य सफल रहा।

9.3.7 द्वितीय विश्व युद्ध की भयानकता एवं अंतर्राष्ट्रीय दबाव

विश्व युद्ध की भयानकता लगातार बढ़ती जा रही थी ब्रिटेन एवं उसके मित्रों पर लगातार जर्मनी एवं जापान का दबाव बढ़ता जा रहा था। न केवल यूरोप में अपितु एशिया में भी ब्रिटेन और उसके मित्रों की स्थिति बिगड़ रही थी। जापान लगातार पूर्व से भारत की ओर आगे गढ़ता जा रहा था। ऐसी स्थिति में ब्रिटेन को लगने लगा था कि भारतीयों का सकारात्मक सहयोग आवश्यक है। उधर अंतर्राष्ट्रीय दबाव भी लगातार ब्रिटेन पर बनता जा रहा था कि, वह भारतीयों से सकारात्मक वार्ता करे और कोई सकारात्मक कदम उठाये। जिससे विश्व युद्ध में भारतीयों का सक्रिय सहयोग मिल सके। अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट की तो स्पष्ट धारणा थी कि, भारतीयों को युद्ध के बाद स्वतंत्रता देने का वचन देने के साथ ही विश्व युद्ध में उनका सहयोग ले लेना चाहिए।

उधर चीनी राष्ट्रपति च्यांग काई शेक भी भारतीयों की आजादी की मांग का समर्थन कर रहे थे और इस बारे में उन्होंने अमरीकी राष्ट्रपति से भी बात की थी। साथ ही उनका मानना था कि, यदि भारत को स्वतंत्र

कर दिया जायेगा, तो जापान के आक्रमण का खतरा भारत पर नहीं मंडरायेगा। बहरहाल, विश्व युद्ध की तीव्रता और उसमें बिगड़ती ब्रिटेन की स्थिति और अंतर्राष्ट्रीय जनमत का भारत की आजादी के पक्ष में होने का लाभ कांग्रेस उठाना चाहती। कांग्रेस का मानना था कि ऐसे समय में जब अंतर्राष्ट्रीय स्थिति भारत के पक्ष में बनती जा रही, का 'भारत की आजादी' की मांग के लिए उपयुक्त है अतः कांग्रेस ने एक बड़े आंदोलन की रूपरेखा का विचार पनपने लगा।

9.3.8 क्रिप्स मिशन

राजनैतिक गतिरोध को समाप्त करने एवं अंतर्राष्ट्रीय दवाब के चलते ब्रिटेन ने भारत में एक संवैधानिक आयोग 23 मार्च, 1942 को भेजा। इस आयोग के अध्यक्ष प्रधानमंत्री चर्चिल के युद्ध मंत्रीमण्डल के सदस्य सर स्टेफर्ड क्रिप्स थे और उन्हीं के नाम से इसे 'क्रिप्स मिशन' के नाम से जाना गया। चर्चिल ने क्रिप्स को एक निश्चित निर्धारित प्रारूप के साथ भारत भेजा था, जिसके अतिक्रमण अनुमति क्रिप्स को नहीं थी। क्रिप्स को भारत में सभी धर्मो, वर्गो एवं जातिगत समूहों का ध्यान रखने की हिदायत दी गयी थी और सभी की सहमति एवं संतुष्टि का ध्यान क्रिप्स को रखना था। इन सब से ऊपर क्रिप्स को ब्रिटिश हितों की सर्वोपरीयता का ध्यान रखना था।

भारत पहुंचते ही क्रिप्स ने अपनी पवित्र धारणा व्यक्त करते हुए कहा कि, हमारी नीति का अंतिम उद्देश्य 'शीघ्रातिशीघ्र परिषद' के विचार विमर्श के लिए 'प्रस्ताव' प्रस्तुत किया और ठीक दो दिन बाद उन्होंने इसे भारतीयों के सामने विचार विमर्श के लिए प्रस्तुत कर दिया। क्रिप्स 29 मार्च, 1942 में प्रगतिशील पहल करते हुए प्रस्ताव को 'आम जनता' के विचार विमर्श के लिए पत्रकारों के सामने प्रस्तुत किया। क्रिप्स का प्रस्ताव अब तक के प्रस्तावों में सबसे अधिक प्रगतिशील एवं अनुगामी थे। क्रिप्स के मंसूबों पर लिनलिथगों को विश्वास नहीं था। यहाँ तक कि, उसने त्याग पत्र देने तक की धमकी चर्चिल को दे डाली थी। किन्तु, चर्चिल ने लिनलिथगों को समझाया कि ऐसे विकट समय में इसका गलत संदेश जायेगा। हमारी नीति और नियत पूर्णतः स्पष्ट है। भारतीय इसे स्वीकार नहीं करते तो भी संपूर्ण विश्व में हमारे प्रयासों की निष्पक्षता एवं ईमानदारी सिद्ध हो जायेगी।

क्रिप्स मिशन के प्रमुख प्रावधानों में स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स), संवैधानिक सभा का गठन तथा कॉमनवेल्थ से पृथक होने का अधिकार सम्मिलित था। क्रिप्स ने स्पष्ट किया कि, विश्व युद्ध के बाद भारत को स्वशासन दे दिया जायेगा। भारतीय अपना संविधान स्वयं बनाये, जिसकी संविधान सभा का गठन निर्वासित सदस्यों से होगा। प्रांतों एवं रियासतों को संविधान को स्वीकार ने एवं अस्वीकारने का अधिकार होगा तथा जातीय एवं अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान रखा जायेगा। कुल मिलाकर क्रिप्स के प्रस्तावों में प्रांतीय स्वायत्तत्ता, शक्ति हस्तांतरण के समय अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए संधि और अंत में भारत के विभाजन के बीज विद्यमान थे।

क्रिप्स के प्रस्तावों पर लगातार 15 दिनों तक गंभीर चर्चा होती रही और अंत में प्रतिरक्षा संबंधी विषयों पर कांग्रेस से बात नहीं बनी और क्रिप्स मिशन के प्रस्तावों को भारतीयों ने ठुकरा दिया। बहुत से भारतीय नेताओं ने इन प्रस्तावों को देर से उठाया गया कदम बताया और गांधीजी ने तो क्रिप्स के प्रस्तावों को 'उत्तरतिथीय चैक' की संज्ञा' तक दे डाली थी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. द्वितीय विश्व युद्ध कब प्रारंभ हुआ ?
   (क) 5 सितम्बर, 1939 ई0 को (ख) 10 सितम्बर, 1939 ई0 को
   (ग) 1 सितम्बर, 1939 ई0 को (घ) 25 सितम्बर, 1939 ई0 को
2. कांग्रेस के प्रांतीय मंत्रीमण्डलों ने इस्तीफा कब दिया ?
   (क) 23 अक्टूबर, 1939 ई0 को (ख) 13 अक्टूबर, 1939 ई0 को
   (ग) 20 अक्टूबर, 1939 ई0 को (घ) 25 सितम्बर, 1939 ई0 को
3. कांग्रेस के कितने प्रांतीय मंत्रीमण्डलों ने इस्तीफा दिया था ?
   (क) दस (ख) सात
   (ग) आठ (घ) पाँच
4. भारत छोड़ो आन्दोलन के समय भारत का वायसराय कौन था ?
   (क) कर्जन (ख) लिनलिथगों
   (ग) रिपन (घ) सर स्टेफर्ड क्रिप्स
5. उत्तरतिथीय चैक किसे कहा गया था ?
   (क) अगस्त प्रस्ताव को (ख) व्यक्तिगत सत्याग्रह को
   (ग) क्रिप्स मिशन को (घ) इनमें से कोई नहीं

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) अगस्त प्रस्ताव।
   (ख) व्यक्तिगत सत्याग्रह।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) क्रिप्स मिशन भारत क्यों आया था ?

9.4 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव

क्रिप्स मिशन की असफलता के बाद भारत के राजनैतिक पटल पर हलचल अत्यधिक होने लगी और उधर जापान लगातार भारत की ओर बढ़ रहा था। ऐसे समय में भारत में खलबली मची हुई थी। महात्मा गाँधी भी अंग्रेजो की रीति - नीति से खफा होते जा रहे थे। उन्होंने तल्ख लहजे में कहा कि, अब समय आ गया है जब अंग्रेजों को भारत छोड़ देना चाहिए महात्मा गाँधी ने 3 मई, 1942 को 'हरिजन' में लिखा कि ***'यदि अंग्रेज भारत छोड़ देगे तो जापानी खतरा टल जायेगा।'*** उन्होंने आगे 10 मई 1942 को 'हरिजन' में लिखा कि 'भारत में अंग्रेजों की उपस्थिति जापानियों को आमंत्रित कर रहा है।'

महात्मा गाँधी लगातार अंग्रेजो को भारत छोड़ देने की नसीहत देते हुए, अपनी आगे की रणनीति पर शनैः - शनैः आगे बढ़ते जा रहे थे। इसके लिए वैचारिक पृष्ठभूमि वे अपने वक्तव्यों एवं लेखों से तैयार कर रहे थे। इसी तारतम्य में उन्होंने 'हरिजन' में लिखा कि, ***अंग्रेजो भारत को ईश्वर के हवाले या अराजकता के भंवर में छोड़***

जाओ। इस प्रकार महात्मा गाँधी का अंग्रेजो से मोहभंग होता जा रहा था और वे देश की जनता को संघर्ष के लिए तैयार होने का संदेश दे रहे थे। 27 अप्रैल - 1 मई, 1942 ई0 में कांग्रेस कार्य समिति की इलाहाबाद बैठक में महात्मा गाँधी की इच्छा के आधार पर एक प्रस्ताव पारित किया गया। कार्य समिति ने जोर देकर कहा कि ब्रिटिश सरकार भारत की रक्षा करने में असमर्थ है, अतः अंग्रेजों को भारत छोड़ देना चाहिए।

महात्मा गाँधी ने 'हरिजन' में 5 जुलाई, 1942 में लिखा कि, अंग्रेजों भारत को भारतीयों के लिए व्यवस्थित रूप से छोड़ जाओं। महात्मा गाँधी देश की जनता को जुझारू संघर्ष के प्रेरित करने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे थे, वे लगातार आम जनता को कड़े संघर्ष और कठिन राहों पर चलने की हिदायत दे रहे थे। महात्मा गाँधी आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने के बाद अपने कार्यक्रम को कार्यरूप देने के लिए कांग्रेस कार्य समिति की बैठक वर्धा में 7 से 14 जुलाई, 1942 के मध्य आयोजित की जिसमें 'भारत छोड़ो' आंदोलन का प्रस्ताव पारित किया गया। इससे पूर्व महात्मा गाँधी ने बड़े तल्ख लहजे में कांग्रेस के नेताओं से कहा कि***, अब हमें संघर्ष और केवल संघर्ष करना होगा। इसमें देर करना आत्मघाती होगा और यदि कांग्रेस मेरे प्रस्ताव पर राजी नहीं हुई तो मैं देश की रेत (बालू) से ही कांग्रेस से भी बड़ा आंदोलन खड़ा कर दूंगा।***

अंतोगत्वा, कांग्रेस ने अपने वर्धा सम्मेलन में महात्मा गाँधी के प्रस्तावों को हरी झण्डी दे दी। महात्मा गाँधी के प्रस्तावों पर अंतिम स्वीकृति देने एवं आंदोलन की व्यापक रणनीति बनाने और विचार - विमर्श के लए 7 अगस्त, 1942 ई0 को बम्बई के ग्वालिया टैंक मैदान में बैठक प्रारंभ हुई। बंबई के इस अधिवेशन में कांग्रेस कार्य समिति ने अपने प्रस्ताव में अंग्रेजों को भारत छोड़ने और अपना शासन समेटकर ब्रिटेन लौटने का आव्हाहन किया। कांग्रेस ने अपने प्रस्ताव में आगे स्पष्ट रूप से कहा कि, यदि प्रस्ताव को अंग्रेजी सरकार ने नहीं माना तो कांग्रेस महात्मा गाँधी के नेतृत्व में मजबूर होकर बड़े पैमाने पर अहिंसक जन आंदोलन करेगी।

कांग्रेस ने प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से कहा कि, आंदोलन अहिंसक रहेगा तथा प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना नेता, मार्गदर्शक, पथ प्रदर्शक रहेगा। इन सब बातों से स्पष्ट है कि, कांग्रेस यह मान चुकी थी कि, जैसे ही आंदोलन की घोषणा होगी, सरकार सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लेगी और किसी भी महत्वपूर्ण नेता के अभाव में आंदोलन में बिखर जायेगा। अतः कांग्रेस ने मानसिक रूप से देश की जनता को जागृत करते हुए कहा कि, ***सभी आंदोलनकारी स्वयं अपने मार्गदर्शक होगें तथा स्वयं अपनी योजना पर चलकर आंदोलन करेगें।***

कांग्रेस का प्रस्ताव और उसकी आम जनता से अपील दोनों एक बड़े और व्यापक जन आंदोलन की रूपरेखा की ओर इशारा कर रहे थे तथा अंग्रेजी सरकार भी इसे कुचलने के पूरी मानसिक स्थिति बना चुकी थी, अतः कांग्रेस और अंग्रेजी सरकार दोनों व्यापक आंदोलन और उसे दबाने का क्रमशः इंतजाम कर चुकी थी। कांग्रेस अब निर्णायक कदम उठाने के रास्ते पर चल चुकी थी, अब न कोई आश्वासन लेना था और न कोई वादा करना था। पं0 जवाहर लाल नेहरू ने 8 अगस्त, 1942 के अपने भाषण में इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि ***'हमने अपने आप को आग में धकेल दिया है, इसमें या तो हम सफलतापूर्वक बाहर निकल आएंगे या इसी आग में समाप्त हो जायेगें***। 8 अगस्त की रात कांग्रेस इस अगस्त क्रांति की रूपरेखा और कार्यक्रम पर चर्चा करती रही।

महात्मा गाँधी ने आंदोलन को व्यापक बनाने और आम जनता को आंदोलित करने के लिए कहा कि, 'यह आंदोलन अब तक का सबसे बड़ा और व्यापक आंदोलन होगा।' इसे हम चरम सीमा तक ले जायेगें। यह अहिंसक क्रांति होगी। किन्तु आवश्यकता के अनुसार आम जनता सभी प्रकार के साधनों का उपयोग कर सकती है। महात्मा गाँधी ने इस आंदोलन को 'खुली बगावत' की संज्ञा दी और कहा कि, ***'यह आंदोलन हमारा अंतिम प्रयास है और हम देश को स्वतंत्र करायेगे या ऐसा करते मर जायेगें। किन्तु पीछे नहीं हटेगें।'*** कांग्रेस ने प्रबुद्ध वर्ग एवं विद्यार्थियों से आशा प्रगट की कि, वह इस आंदोलन की भावना का प्रसार - प्रचार भारत की आम जनता में करेगें।

9.4.1 भारत छोड़ो आन्दोलन का उद्देश्य एवं कार्यक्रम

कांग्रेस ने भारत छोड़ो आंदोलन के लिए एकदम सीसे की तरह स्पष्ट उद्देश्य निर्धारित करते हुए कहा कि, आंदोलन का मुख्य उद्देश्य पूर्ण स्वतंत्रता और भारत से अंग्रेजी सत्ता की समाप्ति। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सभी प्रकार के तरीकों और साधनों के प्रयोग की अनुमति देती है।

कांग्रेस ने बंबई के इस सम्मेलन में भारत छोड़ो आंदोलन की व्यापक योजना बनायी थी। कांग्रेस ने आंदोलन के लिए छः चरणों वाला प्रारूप तैयार किया था, अर्थात् आंदोलन को विभिन्न स्तरों के छः चरणों में चलाने की योजना कांग्रेस ने बनायी थी और इसके लिए स्पष्ट कार्यक्रम भी बनाया था, किन्तु यह कार्यक्रम आम जनता तक नहीं पहुंच सका क्योंकि अंग्रेजी सरकार ने 9 अगस्त के सारे अखबार जप्त कर लिये थे। कांग्रेस ने भारत छोड़ों आंदोलन के कार्यक्रम में बहिष्कार, कानूनों का उल्लंघन कर अदायगी न करना विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, हड़ताल आदि का प्रावधान किया था, जिनको अमलीय जामा आंदोलन के दौरान क्रमशः कांग्रेस पहनाने वाली थी।

इन सब कार्यक्रमों के अतिरिक्त महात्मा गाँधी ने बंबई के ग्वालिया टैंक मैदान में 9 अगस्त, 1942 की ओर में प्रातः पाँच बजे अपना प्रसिद्ध 'करो या मरो' का मंत्र आम जनता को दिया। महात्मा गाँधी आजादी के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहते थे उनका दृढ़ संकल्प था कि या तो हम आजादी प्राप्त कर लेगे या इस प्रयास में मर जायेगें। महात्मा गाँधी ने स्पष्ट कहा कि हम गुलामी को देखने के लए जिंदा नहीं रहेगे, हम हर हाल में आजादी प्राप्त करेगें। जैसी की आशंका थी, सभी कांग्रेसी नेताओं को 9 अगस्त, 1942 ई0 को अंग्रेजी सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। महात्मा गाँधी को बंबई के आगा खाँ महल तथा नेहरू सहित अन्य बहुत से नेताओं को अहमद नगर किले में नजरबंद रखा गया। अंग्रेजी सरकार पहले ही कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार करने एवं आंदोलन को कुचलने की योजना बना चुकी थी, जैसा कि वायसराय ने प्रांतीय राज्यपालों को अपने 8 अगस्त, 1942 के पत्र में लिखा था। अंग्रेजी सरकार के इस कृत्य से आम जनता भड़क गयी और लाखों लोगों का हुजूम बंबई के ग्वालिया टैंक की ओर उमड़ पड़ा।

9.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाएँ

9 अगस्त, 1942 ई0 के अंग्रेजी सरकार के इस कृत्य से आम जनता भड़क गयी और लाखों लोगों का हुजूम बंबई के ग्वालिया टैंक की ओर उमड़ पड़ा। भारत छोड़ों आंदोलन सारे देश में तीव्रता के साथ फैलने लगा।

पूरा देश आजादी की आकांक्षा में कुलांचे मारने लगा। भारत में पहली बार महानगरों से लेकर गांवों तक राजनैतिक जागृति का अद्भुत दृश्य देखने को मिला। अब भारत के लोग अपना स्वराज प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता की बलिबेदी पर अपने प्राणों की आहूति देने के लिए अपने घरों से बाहर निकले और अपने सिर पर कफन बांधकर अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध विद्रोह का ताण्डव करने लगे। चारो ओर नारे गूंज रहे थे, अंग्रेजों भारत छोड़ो।

सारा देश तन कर आजादी के संघर्ष में कूद चुका था। आंदोलनकारी नेतृत्व विहीन थे, वे स्वयं अपने विवके से कार्य कर रहे थे, उन्होंने सरकारी प्रतीकों और अंग्रेजी सत्ता के चिन्हों को सर्वप्रथम अपना निशाना बनाया। पुलिस थानों, डाकघरों, रेल्वे स्टेशनों, प्रशासनिक भवनों आदि को अपना निशाना बनाया। साथ ही रेल्वे लाईनों, पुलों, टेलीफोन एवं तार की लाइनों तथा यातायात के अन्य साधनों को ध्वस्त करने के प्रयास किये गये। भारत की आम जनता की इस प्रतिक्रिया से अंग्रेजी सरकार सकते में आ गयी। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था, इस खुली वगावत को कुचलने के लिए अंग्रेजी सरकार ने कठोरतम् दमन चक्र चलाया और सारे देश में एक प्रकार से पुलिस राज्य की स्थापना कर दी गयी थी।

आंदोलन इतना भयानक था कि, आंदोलन प्रारंभ होने के प्रथम हफ्ते में ही 500 डाकघर, 150 पुलिस थाने तथा 250 रेल्वे स्टेशनों को निशाना बनाया गया। 1942 के अंत तक 60,000 लोगों को गिरफ्तार किया गया, 26000 को सजा दी गयी तथा 18000 लोगों को भारत रक्षा नियमों के अंतर्गत जेलों ठूंस दिया गया।

1943 के अंत तक अंग्रेजी सरकार ने 91,836 लोगों को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया था तथा 945 डाकघरों, 208 पुलिस स्टेशन तथा 332 रेल्वे स्टेशनों को निशाना बनाया गया, 538 बार आम जनता पर पुलिस और सेना ने गोलियाँ चलायी। जिनमें एक हजार से अधिक आंदोलनकारी मारे गये थे।

अंग्रेजी सरकार ने अनेक अवसरों पर वायुयानों से आंदोलनकारियों पर गोलियाँ चलवायी। भगतपुर, मुगेर, नदिया, तामलुक, तल्छर आदि स्थलों पर अंग्रेजी सरकार ने आंदोलनकारियों पर हवाई जहाज से गोलीबारी करवायी। इसके साथ ही अंग्रेजी सरकार ने दमन चक्र के हथियार के रूप में 90 लाख रूपये का सामूहिक जुर्माना भी वसूला। साथ ही, अंग्रेजो ने लोगों को प्रताड़ित करने के लिए गांवो के गाँव आग के हवाले कर दिये थे।

भारत छोड़ों आंदोलन के कार्यक्रम मे हड़तालों को भी सम्मिलित किया गया था। ज्ञातव्य रहे कि भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान ही महात्मा गाँधी ने प्रथम बार राजनैतिक हड़तालों का समर्थन किया था। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान हड़तालों में विद्यार्थियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। विद्यार्थियों ने स्कूल, कॉलेजों, शहरी क्षेत्रों में दुकाने एवं व्यावसायिक संस्थानों को हड़तालों के द्वारा बंद करवाया। हड़ताले आंदोलन के हथियार के तौर पर संपूर्ण आंदोलन के दौरान कारगर साबित हुई थी।

9 से 14 अगस्त तक बंबई में तथा 10 से 17 अगस्त तक कलकत्ता में, दिल्ली एवं पटना में सचिवालयों के सामने हड़ताले की गयी। लखनऊ, कानपुर, बंबई, नागपुर, अहमदाबाद में श्रमिकों ने कारखानों में हड़ताले की। टाटा इस्पात कारखानों में 20 अगस्त से 13 दिनांक तक हड़ताल रही। भारत छोड़ो आंदोलन में सबसे बड़ी श्रमिक हड़ताल अहमदाबाद के कपड़ा कारखाने में हुई, जो तीन महीने से अधिक समय तक बंद रहा। इसे बुद्धिजीवी

'भारत का स्तालिनग्राद' कहने लगे थे। इस प्रकार भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान श्रमिकों विद्यार्थियों एवं मध्यमवर्गीय लोगों ने हड़तालों में उत्साह से सक्रिय भूमिका निभायी।

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान भूमिगत आंदोलन ने आंदोलन को दिशा देने एवं आंदोलन को सक्रिय बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भूमिगत आंदोलन बिहार, केरल, कर्नाटक संयुक्त प्रांत, बंबई, दिल्ली, पूना आदि में सक्रिय रहा। जयप्रकाश नारायण, बीजू पटनायक, सुचेता कृपलानी, राममनोहर लोहिया, छोटूभाई पुराणिक, अच्युत पटवर्धन आदि ने भूमिगत रहकर आंदोलन की ज्वाला को प्रज्वलित बनाये रखा। भूमिगत आंदोलनकारियों की गतिविधियों की खबर लेने में अंग्रेजी सरकार भी नाकाम रही थी, वे बड़ी तीव्रता से अपना कार्य करके भूमिगत हो जाते थे।

भूमिगत आंदोलनकारियों ने आंदोलन की खबरे सारे देश में पहुंचाने का काम बड़ी तत्परता से किया था। इसके साथ ही, भूमिगत आंदोलनकारियों ने गुप्त रेडियों स्टेशन स्थापित करके अंग्रेजी सरकार की नीतियों और अत्याचारों का विवरण सारे देश में पहुंचाया साथ ही, आंदोलन की प्रगति एवं आंदोलनकारियों को प्रोत्साहित करने का कार्य ये रेडियों स्टेशन अपने प्रसारण में करते थे। ये रेडियों स्टेशन मुख्यतः बंबई और नासिक में अधिक सक्रियता से कार्य कर रहे थे। अंग्रेजी सरकार ने इन रेडियों स्टेशनों को नवम्बर, 1942 में खोजने में सफलता पायी और इन्हें जप्त कर लिया गया।

भारत छोड़ो आंदोलन निश्चित रूप से अब तक के आंदोलन में अभिनव एवं विशिष्ट था, क्योंकि इस आंदोलन के दौरान अनेक ऐसी विशिष्टाएँ दिखी, जो पूर्व के आंदोलनों में नहीं थी। इसकी सबसे विशिष्ट बात आंदोलन के दौरान 'समानांतर सरकारों' का गठन होना था। ऐसी पहली समानांतर संयुक्त प्रांत के बलिया जिले में गठित हुई थी। बंगाले के मिदनापुर जिले के तामलुक तथा महाराष्ट्र के सतारा जिले में 'समानांतर सरकारें' बनी। समानांतर सरकारों ने अपने क्षेत्रों में भारतीय पद्धति से शासन किया तथा अंग्रेजी शासन की प्रतिनिधित्वकारी संस्थाओं और वस्तुओं को ध्वस्त कर दिया था।

अंग्रेजी सरकार ने बड़ी बेदर्दी से आंदोलन को कुचल दिया था। समस्त भारत में अंग्रेजी सत्ता की शक्ति का नंगा नाच हुआ और छः से सात सप्ताहों में ही आंदोलन को कुचल दिया गया। अंग्रेजों के अत्याचार एवं हिंसक होते आंदोलन से गांधीजी द्रवित हो गये। इसी कारण उन्होंने 'आत्म शुद्धि' के लिए 10 फरवरी, 1943 से 21 दिनों का उपवास प्रारंभ कर दिया। 13 वे दिन महात्मा गाँधी की हालत अत्यधिक बिगड़ गयी। फिर भी अंग्रेजी सरकार ने उनकी सुध नहीं ली, बल्कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने बड़ी ही धृष्टता दर्शाते हुए कहा कि ***''जब दुनिया में हम हर कहीं जीत रहे है, ऐसे वक्त में हम एक कमबख्त बुड्डे के सामने कैसे झुक सकते हैं, जो हमेशा से हमारा दुश्मन रहा है।''*** सभी लोग महात्मा गाँधी की जिंदगी के लिए प्रार्थना कर रहे थे, उधर अंग्रेजी सरकार उनके मरने की प्रतिक्षा कर रही थी अंग्रेजो ने महात्मा गाँधी की शवयात्रा और भस्म ले जाने के लिए वायुयान की व्यवस्था कर ली थी तथा आधे दिन के अवकाश की व्यवस्था सारे देश में करने की योजना थी।

किन्तु, लोगों की प्रार्थना ईश्वर ने सुन ली और महात्मा गाँधी ने अपना 21 दिनों का 7 मार्च 1943 को उपवास पूर्ण किया। महात्मा गाँधी के स्वास्थ्य को देखते हुए 6 मई, 1944 को उन्हें जेल से रिहा कर दिया। आगे की राजनैतिक गतिविधियों को संचालित करने एवं किसी एकमत निर्णय पर पहुंचने के लिए सरकार ने राजनैतिक कदम उठाने प्रारंभ कर दिये थे और इसीलिए 15 जून, 1945 को अन्य कांग्रेस के नेताओं को भी जेलों से मुक्त कर दिया गया। भारत छोड़ो आंदोलन तत्कालीन परिस्थिति में अवश्य असफल दिखायी दिया। किन्तु इस आंदोलन से सरकार हिल गयी थी, उसे 1857 की क्रांति के बाद सबसे महान खुली जन वगावत का सामना करना पड़ा था, जिसकी अंतिम 1947 में आजादी के साथ आयी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. ग्वालिया टैंक मैंदान कहाँ है ?
   (क) दिल्ली में (ख) अहमदाबाद में
   (ग) बम्बई में (घ) वर्धा में
2. महात्मा गाँधी ने 'खुली बगावत' की संज्ञा किस आन्दोलन को दी ?
   (क) व्यक्तिगत सत्याग्रह को (ख) भारत छोड़ो आन्दोलन को
   (ग) क्रिप्स मिशन को (घ) इनमें से कोई नहीं
3. 'भारत का स्तालिनग्राद' किसे कहा गया ?
   (क) बम्बई को (ख) दिल्ली को
   (ग) अहमदाबाद को (घ) इनमें से कोई नहीं
4. भारत छोड़ो आन्दोलन के समय पं॰ जवाहर लाल नेहरू कहां नजरबंद थे ?
   (क) अहमद नगर किले में (ख) दिल्ली के किले में
   (ग) बम्बई में (घ) इनमें से कोई नहीं
5. महात्मा गाँधी ने 21 दिनों का उपवास कब प्रारंभ किया ?
   (क) 05 फरवरी, 1943 से (ख) 25 फरवरी, 1943 से
   (ग) 10 फरवरी, 1943 से (घ) इनमें से कोई नहीं

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) भूमिगत आंदोलन।
   (ख) समानांतर सरकारें।
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) भारत छोड़ो आन्दोलन के उद्देश्य एवं कार्यक्रम क्या थे ?

9.5 सारांश

भारत छोड़ों आंदोलन भारत के राजनैतिक पटल पर होने वाला सबसे बड़ा एवं आम जनता के राजनैतिक रूप से आजादी के लए तन - मन - धन से राष्ट्र के प्रति समर्पण को सर्वोच्च अभिव्यक्ति था। इस आंदोलन ने आम

जनता को अपने घरो से खींच कर सड़क पर ला खड़ा किया और ऐसा घनघोर रूप से आंदोलित किया कि संपूर्ण भारत में अंग्रेजों भारत छोड़ो का जयघोष गूंजने लगा। जिसकी अंतिम और तार्किक परिणति भारत की 1947 को आजादी के रूप में हुई।

9.6 तकनीकी शब्दावली

डोमिनियन स्टेट्स :- ऐसा राज्य जिसमें आंतरिक स्वतंत्रता हो, किन्तु बाह्य परतंत्रता हो।

कॉमनवेल्थ :- इंग्लैण्ड की अगुआयी में बना, स्वतंत्र देशों का संगठन।

द्वितीय विश्व युद्ध :- द्वितीय विश्व युद्ध 1939 से 1945 ई॰ तक चला। इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि मित्र देश तथा जर्मनी, जापान आदि धुरी देश सम्मिलित थे।

पूर्ण स्वतंत्रता :- सार्वभौमिक आंतरिक एवं बाह्य स्वतंत्रता, किसी भी अन्य राष्ट्र की गुलामी नहीं। परतंत्रता से पूर्ण मुक्ति।

उत्तरतिथीय चैक :- समय निकल जाने के बाद दिया गया प्रस्ताव।

भूमिगत आंदोलन :- गुप्त आंदोलन

9.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 9.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 9.3.1 द्वितीय विश्व युद्ध
2. देखिए 9.3.4 प्रांतीय मंत्रीमण्डलों से इस्तीफा
3. देखिए 9.3.4 प्रांतीय मंत्रीमण्डलों से इस्तीफा
4. देखिए 9.3.2 भारत को द्वितीय विश्व युद्ध में शामिल करना
5. देखिए 9.3.8 क्रिप्स मिशन

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 9.3.5 अगस्त प्रस्ताव
   (ख) देखिए 9.3.6 व्यक्तिगत सत्याग्रह
2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:
   (अ) देखिए 9.3.8 क्रिप्स मिशन

इकाई 2.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 9.4 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव
2. देखिए 9.4 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव
3. देखिए 9.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाएँ
4. देखिए 9.4.1 भारत छोड़ो आन्दोलन का उद्देश्य एवं कार्यक्रम

5. देखिए 9.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाएँ

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 9.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाएँ

   (ख) देखिए 9.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाएँ

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

   (अ) देखिए 9.4.1भारत छोड़ो आन्दोलन का उद्देश्य एवं कार्यक्रम

9.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बिपिन चन्द्र एवं अन्य - भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, नई दिल्ली, 1998
2. भूयान, ए॰ सी॰ - द क्विट इण्डिया मूवमेंट: द सेकेण्ड वर्ड वॉर एण्ड इण्डियन नेशनालिज्म, नई दिल्ली, 1957
3. माथुर, वाई॰ बी॰ - क्विट इण्डिया मूवमेंट, नई दिल्ली, 1972
4. राय, सत्या एम॰ (संपा॰) - भारत में उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवाद, नई दिल्ली, 1990
5. सरकार, सुमित - आधुनिक भारत (1885 - 1947), नई दिल्ली, 1992
6. ताराचंद - भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, चतुर्थ खण्ड, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2007

9.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बिपिन चन्द्र - आधुनिक भारत, नई दिल्ली, 1971
2. बिपिन चन्द्र, त्रिपाठी, अमलेश, डे, बरूण - स्वतंत्रता संग्राम, नई दिल्ली,1972
3. ग्रोवर, बी॰ एल॰ एवं यशपाल - आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1999
4. पाठक, सुशील माधव - भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास (1857 - 1947), वाराणसी, 1993
5. शुक्ल, रामलखन (संपा॰) - आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1998

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठभूमि का सविस्तार वर्णन कीजिये ?

प्रश्न 2. भारत छोड़ो आन्दोलन के प्रस्ताव एवं तत्कालीन राजनैतिक हलचल का विवरण दीजिये ?

प्रश्न 3. भारत छोड़ो आन्दोलन के प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाओं का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

इकाई दस

देशी राज्यों में राष्ट्रीय आंदोलन

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 देशी राज्यों में आन्दोलन की पृष्ठभूमि

10.3.1 आधुनिक शिक्षा का प्रभाव

10.3.2 प्रेस एवं समाचार पत्रों का प्रभाव

10.3.3 देशी राज्यों में नवीन मध्यम वर्ग का उदय

10.3.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागरण का प्रभाव

10.3.5 निरंकुश एवं विलासी शासक

10.3.6 देशी राज्यों में अत्यधिक भू - राजस्व

10.3.7 राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का प्रभाव

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

10.4 देशी राज्यों में आन्दोलन

10.4.1 देशी राज्यों का भारत में विलय

10.4.1.1 जूनागढ़ राज्य का भारत में विलय

10.4.1.2 हैदराबाद राज्य का भारत में विलय

10.4.1.3 कश्मीर राज्य का भारत में विलय

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

10.5 सारांश

10.6 तकनीकी शब्दावली

10.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

10.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

देशी राज्यों में आन्दोलन शेष भारत में हुए स्वतंत्रता के आंदोलन का अभिन्न अंग था। अंग्रेजी वर्चस्व वाले क्षेत्रों की जनता में राष्ट्रवाद की भावना का विकास पहले हुआ। क्योंकि अंग्रेजी राज के प्रति भारतीयों में नफरत की भावना थी। अंग्रेजी राज के अत्याचारों और भेदभाव की नीतियों ने भारतीयों को अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाया। शनैः - शनैः भारतीयों ने अपनी माँगों को अंग्रेजों के सामने रखना प्रारंभ किया और जब माँगें ठुकरायी जाने लगीं, तो शीघ्र ही भारतीयों ने आंदोलन करने प्रारंभ करने शुरू कर दिये। कांग्रेस ने भी देशी राज्यों की जनता को कांग्रेस की सदस्यता देनी प्रारंभ की और शनैः - शनैः देशी राज्यों की जनता को अभिन्न रूप से राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ लिया। इसके कारण देशी राज्यों को अपनी जनता को राजनैतिक अधिकारों को देने के लिए कदम उठाने पड़े।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. विद्यार्थी देशी राज्यों में आन्दोलन के महत्वपूर्ण तत्वों के बारे में जान सकेंगे।
2. विद्यार्थी देशी राज्यों में आन्दोलन की पृष्ठभूमि को समझ सकेगें।
3. विद्यार्थी देशी राज्यों में आन्दोलन के बारे में जानेंगे।
4. विद्यार्थी विभिन्न देशी राज्यों में आन्दोलन की प्रकृति को समझ सकेगें।
5. विद्यार्थी देशी राज्यों के स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान के बारे में जानेंगे।
6. विद्यार्थी देशी राज्यों के भारत में विलय को समझ सकेगें।
7. विद्यार्थी देशी राज्यों की भारत के प्रति नीति के बारे में जानेंगे।
8. विद्यार्थी हैदराबाद, जूनागढ़ एवं कश्मीर रियासत की स्थिति को समझ सकेगें।
9. विद्यार्थी विभिन्न देशी राज्यों में आन्दोलन की प्रगति एवं घटनाओं को जान सकेंगे।
10. विद्यार्थी देशी राज्यों के आन्दोलन और अंग्रेजी शासित क्षेत्रों के आंदोलन की प्रकृति कोसमझ सकेगें।

10.3 देशी राज्यों में आन्दोलन की पृष्ठभूमि

देशी राज्यों में आंदोलन आंतरिक राजनैतिक स्थिति, शासकों की निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता, अत्यधिक भू - राजस्व तथा किसान समस्याएँ एवं रियाया के राजनैतिक अधिकारों ने आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार की। इसमें आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवीन मध्यम वर्ग ने, प्रेस एवं समाचार पत्रों आदि ने देशी राज्यों में आंदोलनों को हवा और खाद प्रदान की।

10.3.1आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव

आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा के भारत में आगमन से भारतीयों का बड़ा लाभ हुआ। अंग्रेजों ने भले ही शासन की आवश्यकताओं के कारण अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार - प्रचार किया हो। किन्तु, इसका प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष लाभ भारतीयों को हुआ। पाश्चात्य शिक्षा ने भारतीय जनमानस में क्रांतिकारी बदलावों का सूत्रपात किया। शीघ्र ही राजनैतिक चेतना और उभरते राष्ट्रवाद की वाहक बन गयी। यह शनैः - शनैः राष्ट्रीय आंदोलन का एक हथियार

बन गयी। शिक्षित भारतीयों का संपर्क भारतीय सीमाओं से निकलकर विश्वव्यापी विचारों से हुआ। भारतीय सांस्कृतिक विचारों से ओतप्रोत भारतीयों का साम्य विदेशी स्वतंत्र, उन्मुक्त विचारधारा से हुआ। जिसका उपयोग भारतीयों ने समय - समय पर अपने हितों के लिए किया। इससे अंग्रेज हतप्रद रह गये। आधुनिक शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने अंग्रेजों को अंग्रेजी तौर - तरीकों से जबाब देना प्रारंभ किया, जो शीघ्र ही सीधे संघर्ष में बदल गया। अंग्रेजी ने भारतीयों के लिए एक सामान्य संपर्क भाषा का कार्य किया। अंग्रेजी ने भारतीय आबादी के विभिन्न वर्गो एवं धर्मों को एक सूत्र में पिरोने का काम किया। इससे विभिन्न भाषाभाषी लोग अंग्रेजी में अपने विचारों एवं समस्याओं का आदान - प्रदान कर सके तथा अपनी योजनाओं को बेहतर तरीके से क्रियान्वित कर सके।अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय अंग्रेजों के दोहरे चरित्र को समझ चुके थे, उन्होंने अंग्रेजों की नीति और नीयत को खुली आंखों से देखा। जिससे देशी राज्यों की जनता ने अपने विभिन्न अधिकारों और समस्याओं के समाधान के लिए जोरदार आंदोलन करने प्रारंभ कर दिये। इस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा ने देशी राज्यों की जनता को जागृत किया।

10.3.2 प्रेस एवं समाचार पत्रों का प्रभाव

देशी राज्यों में आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में प्रेस एवं समाचार पत्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारत में जे॰ के॰ हिक्की ने *1780* ई॰ में सर्वप्रथम *'*द बंगाल गजट*'* नामक समाचार पत्र प्रकाशित किया। पं. जुगल किशोर ने *1826* ई॰ में कानपुर से सर्वप्रथम हिन्दी का समाचार पत्र *'*उदन्त मार्तण्ड*'* प्रकाशित किया। देशी राज्यों और भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रेस एवं समाचार पत्रों ने आधारभूत भूमिका निभायी। प्रेस एवं समाचार पत्रों के माध्यम से भारत के नवीन बौद्धिक वर्ग ने सोये हुए भारत में राजनैतिक चेतना का अलख जगाया।

वस्तुतः देशी राज्यों और भारत को राजनैतिक दृष्टि से चेतन अवस्था प्रदान करने का श्रेय समाचार पत्रों को जाता है। राजनैतिक रूप से देश की जनता को जागरूक कर, उनमें राष्ट्र के प्रति अपनत्व पैंदा करने तथा मर मिटने का भाव समाचार पत्रों ने जगाया। वास्तव में राष्ट्रीयता के बीज को अंकुरण से पौधा बनाने का श्रेय प्रेस एवं समाचार पत्रों को जाता है। समाचार पत्रों ने बड़ी ही चतुरायी से देश में राष्ट्रीय भावना का प्रचार - प्रसार करके अंग्रेजी सत्ता के शोषण तंत्र का पर्दाफास किया। इससे भारतीयों की आंखे खुली की खुली रह गयी। वो अंग्रेजों के वास्तविक उद्देश्यों को समझ गये और प्राण-पण से आजादी के लिये संघर्षरत् हो उठे।

देशी राज्यों में प्रेस एवं समाचार पत्रों को विशेष आजादी प्राप्त नहीं थी। देशी राज्यों में फिर भी समाचार पत्र प्रकाशित होते थे। बड़ी ही सावधानी से राष्ट्रवादी नेता अपनी बात जनता तक पहुंचाते थे। उन्होंने शनैः - शनैः देशी राज्यों की जनता में राजनैतिक चेतना के भावांकुरण पैंदा किये। देशी राज्यों की जनता को अंग्रेजी सत्ता की वास्तविकताओं से परिचित कराया तथा देशी राज्यों और अंग्रेजों के गठबंधन की वास्तविकताओं को भी समझाया। देशी राज्यों में प्रेस एवं समाचार पत्रों ने अंग्रेजी सत्ता के प्रशासन एवं नागरिक अधिकारों के बारें में भी बताया। इससे देशी राज्यों की जनता में अपने अधिकारों की बहाली के लिए आन्दोलन प्रारंभ कर दिये।

10.3.3देशी राज्यों में नवीन मध्यम वर्ग का उदय

देशी राज्यों के आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में नवीन मध्यम वर्ग के उदय ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। शेष ब्रिटिश भारत की तरह ही देशी राज्यों में भी नवीन मध्यम वर्ग का उदय हुआ। अंग्रेजी शिक्षित इस

वर्ग में प्रशासक, डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, वकील आदि सम्मिलित थे। इस नवीन मध्यम वर्ग ने देशी राज्यों और अंग्रेजी प्रशासन एवं उसकी नीतियों का नजदीकी से मूल्यांकन किया और पाया कि, देशी राज्यों और शेष ब्रिटिश भारत में नागरिकों के अधिकारों में भारी अंतर है। भू - राजस्व भी शेष ब्रिटिश भारत से अधिक है। इस नवीन मध्यम वर्ग ने देशी राज्यों में राष्ट्रीयता का शंख, पत्र - पत्रिकाओं, पुस्तकों, नवीन संगठनों का निर्माण करके एवं जनता को राजनैतिक रूप से जागरूक करके फूंका। देशी राज्यों के आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में इस नवीन मध्यम वर्ग का महत्वपूर्ण योगदान रहा

10.3.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागरण का प्रभाव

सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण ने देशी राज्यों के आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण का बहुत गहरा प्रभाव देशी राज्यों की जनता पर पड़ा। सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण के व्यक्तियों एवं संस्थाओं ने देशी राज्यों की जनता के ज्ञान चक्षु खोले एवं वह रास्ता दिखाया, जो आत्म सम्मान, आत्म गौरव, आत्म निर्भरता की ओर ले जाता था। सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण ने सदियों से निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता से परिपूर्ण देशी राज्यों के शासकों के विरूद्ध तन कर खड़े होने का साहस प्रदान किया।

10.3.5 निरंकुश एवं विलासी शासक

सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण ने देशी राज्यों के निरंकुश एवं विलासी शासकों ने देशी राज्यों के आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाला। देशी राज्यों के अधिकांश शासक निरंकुश एवं विलासी थे, उन्हें आम जनता दुःख - दर्दों से कोई लेना देना नहीं था। आम जनता के धन को यह शासक रंग - रेलियों एवं विलासिता में उड़ाते थे। आम जनता की भलाई के लिए ये शासक कोई काम नहीं करते थे। देशी राज्यों और शेष ब्रिटिश भारत में नागरिकों के अधिकारों में भारी अंतर था। भू - राजस्व भी शेष ब्रिटिश भारत से अधिक था तथा भू - राजस्व भी अत्यधिक कठोरता से वसूला जाता था। इससे देशी राज्यों की आम जनता प्रजा मण्डल के रूप में संगठित हुई और उसने निरंकुश एवं विलासी शासकों ने विरूद्ध आन्दोलनों की राह पकड़ ली।

10.3.6 देशी राज्यों में अत्यधिक भू-राजस्व

देशी राज्यों में अत्यधिक भू - राजस्व ने आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में सबसे बड़ी भूमिका निभायी। देशी राज्यों में भू - राजस्व और अन्य करों में कृषकों का लगभग *70 - 80* प्रतिशत उत्पाद चला जाता था। इस कारण अत्यधिक गरीबी और भुखमरी का जीवन कृषक जी रहे थे। समय - समय पर होने वाली भू - राजस्व वृद्धि ने कृषकों के लिए मुशीबत खड़ी कर दी थी। देशी राज्यों में बेगार प्रथा भी प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त श्रमिकों को उनके श्रम के अनुरूप भुगतान नहीं किया जाता था। देशी राज्यों में भू - राजस्व जमींदार और जागीरदार अत्यधिक कठोरता के साथ वसूलते थे। देशी राज्यों के आन्दोलनों में भू - राजस्व सबसे बड़ा मुद्दा था। देशी राज्यों में अनेक आन्दोलन भू - राजस्व के कारण हुए।

10.3.7 राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का प्रभाव

राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इससे देशी राज्यों की जनता राष्ट्रीय आन्दोलनों के सीधे संपर्क में आयी। देशी राज्यों की जनता में भी इससे राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। इसके कारण देशी राज्यों के अनेक लोग ब्रिटिश भारत में होने वाले आन्दोलनों में भाग लेने लगी। इससे देशी राज्यों की जनता राजनैतिक रूप से प्रशिक्षित भी होने लगी और जब आवश्यकता पड़ी तो स्वयं देशी राज्यों की जनता ने आन्दोलनों का रूख करना प्रारंभ कर दिया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देशी राज्यों के शासक कैसे थे ?
   (क) जनता के हितैषी (ख) निरंकुश एवं विलासी
   (ग) प्रजातांत्रिक (घ) इनमें से कोई नहीं
2. देशी राज्यों में भू - राजस्व की दरें थीं ?
   (क) अत्यधिक कम (ख) ब्रिटिश भारत से कम
   (ग) अत्यधिक ऊँच (घ) इनमें से कोई नहीं
3. राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का कैसा प्रभाव पड़ा?
   (क) सकारात्मक (ख) नकारात्मक
   (ग) कुछ भी नहीं (घ) इनमें से कोई नहीं
4. सर्वप्रथम समाचार पत्र किसने प्रकाशित किया था ?
   (क) जे० के० हिक्की ने (ख) के० के० बिरला ने
   (ग) पं. जुगल किशोर ने (घ) सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने
5. हिन्दी में सर्वप्रथम समाचार पत्र किसने प्रकाशित किया था ?
   (क) जे० के० हिक्की ने (ख) के० के० बिरला ने
   (ग) पं. जुगल किशोर ने (घ) इनमें से कोई नहीं

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का प्रभाव।
   (ख) देशी राज्यों में भू - राजस्व का प्रभाव।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

   (अ) देशी राज्यों के आन्दोलनों में प्रेस एवं समाचार पत्रों की क्या भूमिका थी?

10.4 देशी राज्यों में आन्दोलन

आजादी के पूर्व भारत में अनेक देशी राज्य थे। *1941* ई० में इनकी कुल संख्या *562* थी। इन देशी राज्यों के अधीन देश का *45* प्रतिशत क्षेत्रफल भाग तथा देश की कुल जनसंख्या का *24* प्रतिशत भाग निवास करता था।

देशी राज्यों में आंदोलन आंतरिक राजनैतिक स्थिति, शासकों की निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता, अत्यधिक भू - राजस्व तथा किसान समस्याएँ एवं रियाया के राजनैतिक अधिकारों की बहाली को लेकर प्रारंभ हुए। ब्रिटिश भारत की राजनैतिक स्थिति एवं राजनैतिक आंदोलनों ने देशी राज्यों को सीधे तौर पर प्रभावित किया। इससे देशी राज्यों की जनता ने अपने विभिन्न अधिकारों और समस्याओं के समाधान के लिए जोरदार आंदोलन करने प्रारंभ कर दिये। ब्रिटिश भारत में राजनैतिक सुधारों और उनकी प्रतिक्रिया स्वरूप होने वाले आंदोलनों से देशी राज्यों की जनता भी अछूती नहीं रह सकी।

देशी राज्यों की जनता भी ब्रिटिश भारत के आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेनी लगी। जिससे देशी राज्यों की जनता में भी अपनी रियासतों में राजनैतिक एवं अन्य सुधारों की भावना जागृत होने लगी। उन्होंने भी शनैः - शनैः अपनी आवाज राजा - महाराजाओं तक दबी जुबान से करनी प्रारंभ कर दी। ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना के प्रयासों का प्रभाव देशी राज्यों की जनता पर भी पड़ा। उन्होंने भी देशी राज्यों में उत्तरदायी सरकारों के गठन की ओर कदम उठाने के लिए मांग करनी प्रारंभ कर दी।

देशी राज्यों की जनता और ब्रिटिश भारत की जनता के मध्य मेल - मिलाप और राजनैतिक जागरण का कार्य ब्रिटिश सरकार और देशी राज्यों की नीतियों ने भी किया। दोनों की नीतियों में भारी अंतर था तथा दोनों ही राजनैतिक आंदोलनों के समय एक - दूसरे की मदद करते थे अर्थात् जब किसी भी प्रश्न पर देशी राज्यों की जनता आंदोलन करती थी, तब उस आंदोलन को दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार फौजी मदद प्रदान करके आंदोलन को कुचल देती थी और इसी प्रकार ब्रिटिश भारत में होने वाले आंदोलनों को आंतरिक रूप से ध्वस्त करने तथा प्रत्यक्ष रूप से कुचलने के लिए देशी राज्यों की फौजें ब्रिटिश शासन का भरपूर सहयोग करती थी। ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों की इस जुगबंदी को आम जनता समझ गयी और इसी कारण ब्रिटिश भारत की जनता और देशी राज्यों की जनता एक दूसरे के नजदीक आ गयी तथा उनमें राजनैतिक मेल - मिलाप का सिलसिला प्रारंभ होने से साझा उद्देश्यों ने एक - दूसरे को एकजुट होने के लिए प्रेरित किया।

देशी राज्यों में राजनैतिक हलचल को स्पष्ट देखा जाने लगा और *1921 ई0* के बाद देशी राज्यों में प्रजा मण्डल आंदोलन आकार लेने लगे। प्रजा मण्डल आंदोलनों की सक्रियता ने देशी राजाओं के कान खड़े कर दिये। उन्होंने बड़ी बेदर्दी से इन आंदोलनों को कुचलना प्रारंभ किया। जिसमें अंग्रेजों ने उनका पूरा सहयोग किया। प्रजा मण्डल आंदोलन फिर भी विभिन्न देशी राज्यों में जोर शोर से चलने लगे। जिनका उद्देश्य रियाया के राजनैतिक अधिकारों की बहाली तथा देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था।

प्रजा मण्डल आंदोलनों की सक्रियता ने देशी राज्यों को राजनैतिक सुधारों के लिए मजबूर कर दिया। शनैः - शनैः अनेक देशी राज्यों में प्रजा मण्डलों का गठन हुआ और उन्हें राजनैतिक मान्यता भी प्रदान कर दी गयी। कतिपय देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन के गठन की ओर कदम भी उठाये। हालांकि देशी राज्यों के शासक स्वभाव एवं कर्म से निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासक थे। उत्तरदायी शासन की स्थापना करना उन्हें मंजूर नहीं था। अनेक देशी राज्यों में प्रजा मण्डलों की स्थापना होने के बाद भी उन्हें पर्याप्त राजनैतिक मर्यादा प्रदान नहीं थी।

अनेक देशी राज्यों में प्रजा मण्डल राजा - महाराजाओं के मात्र सलाहाकार बनकर रह गये थे। फिर भी इन प्रजा मण्डलों ने देशी राज्यों की रियाया के अधिकारों और सुविधाओं के लिए संघर्ष किया।

देशी राज्यों में मैंसूर, त्रावणकोर, पोरबंदर, कोचीन ने प्रगतिशील कदम उठाते हुऐ अपने राज्यों में रियाया के चुने हुए प्रतिनिधियों को शासन में पर्याप्त अधिकार प्रदान किये। इन देशी राज्यों ने अपने यहाँ होने वाले सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों का पर्याप्त सम्मान करते हुए उनकी मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया। इन देशी रियासतों ने अपनी रियाया की धार्मिक समानता की मांगो को भी पूर्ण किया। त्रावणकोर में *1921 ई0* से, पुडुकोट्टाई में *1924 ई0* से तथा कोचीन में *1925 ई0* से विधान परिषदों में जनता द्वारा निर्वाचित सदस्य बहुमत से कार्य कर रहे थे। इन देशी राज्यों की वैधानिक कार्य विधि ब्रिटिश भारत की वैधानिक कार्य विधि के समान ही थी।

ग्वालियर इन्दौर, बड़ौदा, बीकानेर, हैदराबाद आदि देशी राज्यों के शासकों ने विधान मण्डलों का गठन किया था तथा जनता के प्रतिनिधियों को परिषदों में नियुक्त भी किया था, किन्तु इन्हें अधिक आजादी प्राप्त नहीं थी। इनकी बैठकें भी अनियमित होती थीं तथा ये स्वतंत्र कार्य करने की अपेक्षा राजा - महाराजाओं की सलाहकार परिषदों के रूप में ही कार्य कर रही थी। देश के अधिकांश देशी राज्य परिपाला, कश्मीर, हैदराबाद आदि अपनी जनता को राजनैतिक अधिकार देना नहीं चाहते थे, वे निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन के पक्षधर थे। इन रियासतों में जो भी राजनैतिक परिवर्तन हुए वे मात्र दिखावे के लिए ही थे वास्तविक सत्ता यहाँ राजा - महाराजाओं में ही विद्यमान रही।

देशी राज्यों के आंतरिक मामलों में अंग्रेजी सरकार मात्र अपने हितों को छोड़कर कभी हस्तक्षेप नहीं करती थी और नहीं किसी प्रकार के राजनैतिक सुधारों से ही उसे कोई मतलब था। फिर भी कुछ गवर्नर - जनरलों एवं अंग्रेजों ने देशी राज्यों को अपनी रियाया को सुविधाएँ देने और आधुनिक संसाधनों के विकास के लिए प्रेरित किया। लॉर्ड मेयो, नॉर्थबूक, रिपन, कर्जन हार्डिंग, चेम्सफोर्ड, रीडिंग, इर्बिन आदि ने देशी राज्यों के राजा - महाराजाओं को अपने राज्यों में प्रशासनिक सुधार करने तथा आधुनिक शिक्षा आवागमन के साधनों संचार की व्यवस्था के लिए प्रेरित किया। कुछ ने तो राजा - महाराजाओं की फिजुलखर्ची एवं देश - विदेश में पर्यटन की प्रवृत्ति की आलोचना तक की तथा कहा कि राजा-महाराजाओं को जनता के धन का अपव्यय नहीं करना चाहिए। लॉर्ड कर्जन तो इस मामले में शासन सख्त था। कुछ गवर्नरों ने देशी राज्यों में सभी जनता को समान अवसर देने तथा समान प्रगति का अधिकार देने तक की बात कही।

बहरहाल, *1921 ई0* के बाद देशी राज्यों में राजनैतिक जागृति पैदा होने लगी। देशी राज्यों की जनता ने प्रजा मण्डल आन्दोलनों के द्वारा राजनैतिक जनजागरण का शंखनाद किया। कतिपय राजनीतिज्ञों ने देशी राज्यों के प्रजा मण्डलों को अखिल भारतीय आधार प्रदान करने के प्रयास करते हुए दिसंबर, *1927 ई0* में बम्बई में *'*ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेंस*' (ए0 आई0 एस0 पी0 सी0)* का गठन किया। इस संस्था के द्वारा देशी राज्यों के प्रजा मण्डल आंदोलनों को संगठित करने वैचारिक आधार प्रदानकरने तथा राजनैतिक नेतृत्व प्रदान करने की मंशा प्रगट की गयी। ए*0* आई*0* एस*0* पी*0* सी*0* को *''*अखिल भारतीय राज्य जन कॉन्फ्रेन्स*''* के नाम से भी जाना जाता है। इसके गठन में मणिलाल कोठारी, जी*0* आर*0* अभ्यंकर, बलबंतराय मेहता आदि ने प्रमुख भूमिका निभाई।

दिसंबर, *1927* ई*0* में बम्बई अखिल भारतीय राज्यजन कॉन्फ्रेन्स का प्रथम अधिवेशन हुआ, जिसमें *700* से अधिक प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इस प्रथम अधिवेशन में ए*0* आई*0* एस*0* पी*0* सी*0* के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को निर्धारित किया गया। जिनमें प्रमुख थे देशी राज्यों के प्रशासन में सुधार प्रशासन में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का हस्तक्षेप, देशी राज्यों में उत्तरदायी प्रतिनिधि शासन की स्थापना जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का वित्त एवं प्रशासन पर नियंत्रण, देशी राज्यों के राजस्व का राजा के निजी व्यय एवं राज्य में स्पष्ट विभाजन स्वतंत्र एवं निष्पक्ष सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना देशी राज्यों एवं अंग्रेजी सरकार के मध्य स्पष्ट संवैधानिक संबंध हो। देशी राज्यों की जनता को भावी भारतीय संविधान में उचित स्थान प्रदान करने की बात भी की गयी।

ए*0* आई*0* एस*0* पी*0* सी*0* ने नेताओं ने संस्था को मान्यता दिलाने के लिए आवेदन किया। किन्तु अंग्रेजी सरकार ने इसे मान्यता देने से यह कहकर मना कर दिया कि, देशी राज्यों के राजनैतिक संगठनों को हम मान्यता नहीं दे सकते हैं, इसका अधिकार देशी राज्यों के राजे - महाराजाओं का है। अब संस्था के नेताओं ने अपना पक्ष रखने एवं समर्थन जुटाने के लिए लंदन (इंग्लैण्ड) का रूख किया। जुलाई, *1928* ई*0* को संस्था के प्रमुख नेता दीवान बहादुर रामचंद्र राव (अध्यक्ष), अमृतलाल सेठ, पी*0* एल*0* चुदगर, जी*0* आर*0* अभ्यंकर आदि लंदन पहुंचे। संस्था के इस प्रतिनिधि मण्डल ने ब्रिटिश जनता और संसद को अपनी बात प्रभावी ढंग से बतायी। किन्तु इसका कोई विशेष सकारात्मक परिणाम नहीं निकला।

देशी राज्यों में आंदोलनों का प्रमुख कारण भूमि और भू - राजस्व संबंधित समस्याओं से प्रारंभ हुए। कृषि प्रधान देशी राज्यों में भूमि और भू - राजस्व आम आदमी को सीधे प्रभावित करते थे। ज्ञातव्य रहे कि देशी राज्यों में भूमि और भू - राजस्व की दशा ब्रिटिश भारत की अपेक्षा अत्यधिक खराब थी। देशी राज्यों में भू - राजस्व की दर ब्रिटिश भारत की अपेक्षा काफी ऊँची थी तथा भू-राजस्व को कठोरता से बसूलने की भी प्रथा थी। भूमि और भू - राजस्व संबंधी मामलों पर ब्रिटिश भारत की अपेक्षा देशी राज्यों का रूख सख्त था और इस विषय पर ब्रिटिश भारत में अपेक्षाकृत अधिक अच्छी व्यवस्था थी। देशी राज्यों में भू - राजस्व की ऊँची दरों और राजस्व वृद्धि के प्रश्न पर आंदोलन प्रारंभ हुए। देशी राज्यों में कृषक आंदोलनों के माध्यम से जन जागरण हुआ।

कृषक आंदोलनों में बिजौलियां कृषक आंदोलन ने सर्वाधिक प्रसिद्धी पायी। राजस्थान के मेवाड़ में बिजौलियाँ एक बड़ी देशी जागीर थी। बिजौलिया में कृषकों ने जागीरदार की भू - राजस्व वृद्धि एवं कठोर वसूली के विरूद्ध एक लंबा घोर संघर्ष किया। *1905* ई*0* में प्रारंभ यह कृषक आंदोलन, समय - समय पर एक लंबे समय तक चलता रहा। *1913* ई*0* में बिजौलिया के कृषकों ने राज्य द्वारा आरोपित सामूहिक कृषि की प्रथा के विरूद्ध आक्रोश प्रगट करते हुए सामूहिक कृषि करने से मना कर दिया और अपने ग्रामों को छोड़कर चले गये। इस समय बिजौलियाँ के इस कृषक आंदोलन को नेतृत्व सीताराम दास ने प्रदान किया। इसके कारण आंदोलन ने बड़ा जोर पकड़ा। आंदोलन को अधिक दशा - दिशा विजय सिंह पाथिक के नेतृत्व ने प्रदान की। *1915* ई*0* में विजय सिंह पाथिक ने आंदोलन का नेतृत्व संभाला और राज्य में तीव्र और सशक्त कृषक आंदोलन खड़ा कर दिया। *1916* ई*0* में विजय सिंह पाथिक ने उदयपुर राज्य के विरूद्ध कर नहीं अदायगी का आंदोलन चलाया। बिजौलियाँ कृषक आंदोलन असहयोग आंदोलन के समय भी चलता रहा और इसी कारण शीघ्र ही महात्मा गाँधी का ध्यान इस

आंदोलन की ओर गया और बहुत से आंदोलनकारियों ने महात्मा गांधी से मुलाकात करके अपनी व्यथा उन्हें बतायी।

असहयोग आंदोलन के बाद मेवाड़ के बिजौजियाँ में पुनः संघर्ष प्रारंभ हुआ। इस बार माणिकलाल वर्मा एवं विजय सिंह पाथिक ने संयुक्त नेतृत्व ने बिजौजियाँ के कृषकों के संघर्ष को आगे बढ़ाया। इस आंदोलन का कृषकों को खासा लाभ हुआ। इससे कृषि भूमि पर चुंगियों और बेगार प्रथा में कमी आयी। *1927 ई0* में बिजौजियाँ में फिर से माणिकलाल वर्मा, हरिभाऊ उपाध्याय, विजय सिंह पथिक ने कृषक आंदोलन छेड़ा। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप चुंगी की नई दरों और बेगार के विरूद्ध घोर जन संघर्ष हुआ और सीधा लाभ कृषकों को मिला।

वर्तमान राजस्थान की अनेक देशी राजपूत राज्यों में कृषकों ने अपने भूमि संबंधी अधिकारों तथा भू - राजस्व संबंधित समस्याओं को लेकर घोर संघर्ष किये। गांधी जी के असहयोग आंदोलन से इन्हें खासी ऊर्जा मिली। क्योंकि संघर्ष का अब नया तरीका आम जनता को पता चल गया था। अलवर राज्य में भील आंदोलन एवं कृषक आंदोलन ने सभी का ध्यान खींचा। अलवर राज्य के नीमूचना में भू - राजस्व की दुगनी वृद्धि पर कृषकों में भयानक रोष व्याप्त हो गया। राज्य प्रशासन और कृषकों में भारी संघर्ष छिड़ गया। जिसमें एक हजार से अधिक लोग मारे गये तथा छः सौ से अधिक घायल हो गये। अलवर राज्य में ही मोतीलाल तेजावत ने भील आंदोलन को अपना नेतृत्व प्रदान किया। उन्होंने भीलों की भेशभूषा धारण करके भीलों को संगठित किया। इस आंदोलन ने भारी जनसमर्थन जुटाया और गंभीर रूप से बड़ते आंदोलन को दबाने के लिए अलवर राज्य को अंग्रेजी फौजों का सहयोग प्राप्त हुआ। तब जाकर कहीं आंदोलन को कुचला जा सका।

उधर राजस्थान के मेवाड़ में भील आन्दोलन को संगठित मोतीलाल तेजावत ने किया। उन्होंने अपने आपको महात्मा गाँधी का प्रतिनिधि बताया। जिससे इन्हें भारी जन समर्थन मिला। मेवाड़ राज्य की पुलिस ने बड़ी बेदर्दी से आंदोलन को कुचलना प्रारंभ किया। भीलों के गांवों में आग लगा दी गयी। किन्तु फिर भी भील आंदोलन ने अपनी प्रचंडता का परिचय दिया और राज्य सरकार को अपनी ताकत का एहसास करा दिया तथा स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस आंदोलन का खास प्रभाव अन्य राज्यों पर पड़ा तथा जन जागृति का अलख आंदोलन की प्रमुख उपलब्धि थी। राजस्थान के मारवाड़ में कृषक आंदोलन को नेतृत्व जयनारायण व्यास ने प्रदान किया। जयनारायण व्यास ने कर न देने का आंदोलन चलाया। जिससे कृषकों में भारी जन आक्रोश फूटा और सारे मारवाड़ में कृषि कर न देने का आंदोलन व्याप्त हो गया।

देशी राज्यों में कृषक आंदोलन मात्र राजस्थान तक ही सीमित नहीं था, यह आंदोलन देश के अन्य देशी राज्यों में भी व्याप्त था। इनसे पंजाब भी अछूता नहीं रहा। पंजाब की फरीदकोट मालेर, कोटला, कालसिया आदि देशी राज्यों में कृषकों की समस्याओं को लेकर आंदोलन राज्य प्रजा मण्डल के द्वारा किये गये। राज्य प्रजा मण्डल ने अपनी प्रगतिशील मांगों को लेकर आंदोलन किये। भू-राजस्व में कमी जनता पर अन्य करों को कम करना ग्रामों में शिक्षा के प्रचार के लिए विद्यालयों की स्थापना आधुनिक अस्पतालों की ग्रामों में स्थापना, ग्रामों को यातायात के साधनों से जोड़ना कृषकों के ऋण माफ करना आदि मांगों को लेकर आंदोलन किये। प्रजा मण्डल राज्य में उत्तरदायी सरकार की स्थापना तथा राजा की निरंकुश सत्ता की समाप्ति भी चहते थे।

कश्मीर में भी विभिन्न मांगों को लेकर आंदोलन हुए। इनमें सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीति सभी प्रकार की मांगें सम्मिलित थी। कश्मीर की डोंगर देशी राज्य के विरूद्ध बहुसंख्यक मुसलमान जनता ने धार्मिक प्रश्नों को उठाकर आंदोलन किया। शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में 'नेशनल कॉन्फ्रेंस' ने जुलाई, *1931 ई0* को घोर संघर्ष छेड़ा। सारे कश्मीर राज्य में तीव्र साम्प्रदायिक आंदोलन फैलाने लगा। मुसलमानों ने श्रीनगर जेल पर आक्रमण कर दिया। जिसके फलस्वरूप गोलियाँ चली और अनेक लोग मारे गये। साम्प्रदायिक रंग में रंगें लोगों ने सरकारी कर्मचारियों पर हमले करना प्रारंभ कर दिये। मजबूरी में कश्मीर नरेश को ब्रिटिश फौज बुलाकर आंदोलन को शांत करना पड़ा। कश्मीर राज्य ने आंदोलनकारियों की मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करते हुए एक आयोग गठित किया। जिसकी सिफारिश पर मुस्लिम शिक्षा के राज्य में प्रसार-प्रचार धार्मिक भवनों को सरकारी नियंत्रण से मुक्त करना, चराई कर निलंबित करना, श्रमिकों का बकाया भुगतान करना आदि को मंजूर किया गया। कश्मीर राज्य में आंदोलनकारियों का दृष्टिकोण राष्ट्रीय न होकर साम्प्रदायिक दायरे तक ही सीमित था।

दक्षिण के देशी राज्यों में भी राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक प्रश्नों को लेकर जन आंदोलन हुए। मैसूर राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए जन आंदोलन हुआ। अप्रैल, *1938 ई0* को मैसूर राज्य के विदुरास्वथ ग्राम में उग्र राजनैतिक आंदोलनकारियों एवं राज्य शासन के मध्य घोर तनाव उत्पन्न हो गया और इसी प्रक्रिया में आंदोलनकारियों को नियंत्रित करने के लिए पुलिस ने गोलियाँ चलायी। जिसमें अनेक आंदोलनकारी मारे गये। सरदार पटेल के सक्रिय हस्तक्षेप के बाद ही आंदोलन शांत हो सका था।

पूर्वी भारत के उड़ीसा प्रान्त के देशी राज्यों में भी आंदोलनों ने जोर पकड़ा। यहाँ भी आंदोलनकारी महात्मा गांधी के असहयोग एवं सविनय अवज्ञा आंदोलनों से वैचारिक उर्वरा शक्ति प्राप्त कर रहे थे। उड़ीसा के देशी राज्य में *1938-39 ई0* में समाजवादी कांग्रेस के नेताओं ने खासा प्रभाव आम जनता पर डाला और सारे उड़ीसा राज्य में आम जनता एवं जनजातियों को जागृत कर घोर आंदोलन किया। उड़ीसा राज्य में आंदोलनकारियों की प्रमुख मांगों में बेगार प्रथा समाप्त करना वनोत्पादों पर कर माफी उपहार कर से मुक्ति किराया संबंधी अधिकार उत्तरदायी सरकार जनता के राजनैतिक अधिकारों की बहाली आदि थी। उड़ीसा में समाजवादी एवं साम्यवादी दोनों आम जनता के लिए संघर्ष कर रहे थे, कृषकों की मांगों को लेकर भी भारी संघर्ष हुआ और इस संघर्ष से देशी राज्यों में राजनैतिक एवं कृषक समस्याओं को लेकर भारी जनांदोलन हुए।

दक्षिण भारत में त्रावणकोर, कोचीन और मालाबार में भारी राजनैतिक आंदोलन हुए। यहाँ *1935 - 38 ई0* में मध्य कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने सक्रिय राजनैतिक भूमिका का निर्वहन किया। *1938 ई0* में त्रावणकोर राज्य के दीवान के विरूद्ध भारी राजनैतिक आंदोलन हुआ। आंदोलन इतना प्रबल था कि, सारे केरल के लोग इसमें कूद पड़े। केरल के छात्रों ने भी भारी संख्या में इस आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभायी।

दक्षिण भारत के ही त्रावणकोर राज्य में सामाजिक समानता के लिए निम्न जातियों ने जबरदस्त आंदोलन किये। निम्न जातियों के सामाजिक एवं शैक्षणिक उत्थान, सार्वजनिक मांगों पर निम्न जातियों को चलने का अधिकार, हिन्दू मंदिरों में निम्न जातियों के प्रवेश संबंधी अनेक ऐसी समस्याओं और अधिकारों को लेकर त्रावणकोर के वायकोम नामक ग्राम से आंदोलन प्रारंभ हुआ। इसी कारण इस आंदोलन को वायकोम सत्याग्रह का

नाम दिया गया। त्रावणकोर राज्य के वायकोम ग्राम में एक बड़ा मंदिर था और मंदिर की चार दीवारों के चारों ओर मंदिर की ही सड़के थीं। इन सड़कों पर और मंदिर पर निम्न जातियों के लोग प्रवेश नहीं कर सकते थे। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए केरल राज्य कांग्रेस ने छुआछूत के विरूद्ध सशक्त आंदोलन छेड़ने का निर्णय लिया। मार्च, *1924 ई0* को केरल कांग्रेस के नेतृत्व में संवर्ण और अछूत हिन्दुओं ने मिलकर एक जूलूस लेकर मंदिर में पहुंचे। इसकी खबर से सारा राज्य सन्न रह गया। तुरंत ही अनेक सामाजिक एवं राजनैतिक संगठनों ने इसको अपना समर्थन देना प्रारंभ कर दिया। मंदिर प्रबंध को एवं सरकार ने आंदोलनकारियों की गतिविधियों पर रोक लगाने का प्रयास किया। अनेक सत्याग्राहियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

अगस्त, *1924 ई0* में महाराजा की मृत्यु के बाद महारानी ने सिंहासन संभाला और वायकोम आंदोलन के सत्याग्राहियों को मुक्त कर दिया। अक्टूबर, *1924 ई0* में पुनः मंदिर प्रवेश के लिए आंदोलन प्रारंभ हुआ और अनेक लोगों ने जत्थों में एकत्रित होकर महारानी से मंदिर प्रवेश की मांग की किन्तु महारानी ने इन्कार कर दिया। मार्च, *1925 ई0* में महात्मा गांधी ने केरल पहुंचकर एक मध्यम मार्गीय समझौता कराया और निम्न वर्ग के लोगों के लिए मंदिर की सड़कों पर चलना स्वीकार कर लिया। किन्तु मंदिर प्रवेश की इजाजत अभी निम्न वर्गो को नहीं मिली।

केरल में ही 'केरल कांग्रेस' ने के*0* केलप्पण की मांग पर *1931 ई0* में मंदिर प्रवेश आंदोलन प्रारंभ करने का निर्णय लिया। यह आंदोलन गुरूवायूर में मंदिर प्रवेश को लिए सत्याग्रह छेड़ने से प्रारंभ होना था। इसीलिए इस आंदोलन को 'गुरूवायूर सत्याग्रह' आंदोलन के नाम से जाता है। केरल के अनेक भागों से जत्थों और जुलूसों के रूप में अनेक नेताओं ने मंदिर प्रवेश के लिए पैदल यात्राऐं निकालना प्रारंभ कर दिया। सारे केरल में सभी जातियों ने इसका समर्थन किया और आंदोलन में भाग लिया। आंदोलन लगातार पकड़ता गया और *21* सितम्बर, *1932 ई0* को के*0* केलप्पण आमरण अनश्न पर बैठ गये। महात्मा गांधी के अनेक बार अनुरोध करने पर ही *2* अक्टूबर, *1932* को केलप्पण ने अनशन तोड़ा इसके बाद भी आंदोलन जारी रहा। इन प्रयासों के बाद भी निम्न जातियों के लिए मंदिरों के द्वार नहीं खुले। किन्तु फिर भी यह आंदोलन सकारात्मक प्रभाव छोड़ने में सफल रहा। जिसके परिणाम कालान्तर में सकारात्मक निकले।

दक्षिण भारत में ही देश का सबसे बड़ा देशी राज्य हैदराबाद राजनैतिक आंदोलनों का केन्द्र बना। यहाँ के निजाम शासकों ने अपनी बहुसंख्यक हिन्दू जनता को जबरन धार्मिक एवं भाषायी रूप से प्रताड़ित किया। हिन्दुओं पर जबरन इस्लाम और उर्दू भाषा लादी गयी। इसके विरूद्ध जोरदार धार्मिक एवं राजनैतिक आंदोलन हैदराबाद राज्य में हुए।

10.4.1 देशी राज्यों का भारत में विलय

आजादी के पूर्व ही यह तय हो गया था कि, भारतीय देशी राज्यों का भारत में विलय अवश्यांभावी है। जून, *1947 ई0* को कांग्रेस ने कहा कि, वह किसी भी देशी राज्य की भारत से पृथक स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार नहीं करेगी। जुलाई, *1947 ई0* को ''भारतीय रियासत विभाग'' की स्थापना की। जिसका प्रमुख सरदार वल्लभभाई

पटेल को बनाया गया। सरदार वल्लभभाई पटेल ने चमत्कार किया और देश का एकीकरण कर सभी देशी राज्यों का भारत में विलय कर दिया। मात्र जूनागढ़, हैदराबाद और कश्मीर के प्रश्न पर कुछ समस्याएँ आयी।

10.4.1.1 जूनागढ़ राज्य का भारत में विलय

भारतीय देशी राज्यों की महात्वाकांक्षाओं एवं निरंकुशता की पराकाष्ठा का एक उदाहरण जूनागढ़ रियासत ने दिया। स्वेच्छाचारी मुस्लिम शासक ने समस्त जनता की भावनाओं की अवहेलना करते हुए जूनागढ़ रियासत को पाकिस्तान में विलय करने की घोषणा सितम्बर, *1947 ई0* में कर दी। ज्ञातव्य रहे कि, जूनागढ़ रियासत का शासक मुस्लिम था, किन्तु अधिकांश जनता हिन्दू थी, जो भारत में विलय चाहती थी। जूनागढ़ रियासत की जनता ने अपने मुस्लिम नवाब के विरूद्ध घोर संघर्ष किया और एक स्वतंत्र अस्थायी हुकुमत की स्थापना कर ली। संपूर्ण जूनागढ़ रियासत में जबरदस्त आंदोलन प्रारंभ हो गया। जनता की मांग थी कि, जूनागढ़ का भारत में विलय किया जाये। जनता के आंदोलन ने इतना जोर पकड़ा कि, जूनागढ़ के तत्कालीन नबाव को जूनागढ़ छोड़कर पाकिस्तान भागना पड़ा। जनता के आंदोलन की विजय हुई और जूनागढ़ रियासत के दीवान शाहनबाज भुट्टों ने *8* नवम्बर, *1947 ई0* को जूनागढ़ के भारत में विलय का प्रार्थना पत्र भारत सरकार के पास भेजा। जिसे *9* नवम्बर, *1947 ई0* को भारत सरकार ने स्वीकारते हुए। जूनागढ़ रियासत का भारत में विलय कर लिया।

10.4.1.2 हैदराबाद राज्य का भारत में विलय

हैदराबाद भारत की सबसे बड़ा देशी राज्य था। यहाँ का मुस्लिम शासक निजाम स्वतंत्रता के सपने देखने लगा था। उसके इस सपने को हवा पाकिस्तान दे रहा था। *29* नवम्बर, *1947 ई0* को भारत सरकार के साथ एक वर्ष के लिए *''*यथास्थिति संधि*''* की। किन्तु हैदराबाद के निजाम ने संधि का पालन नहीं किया और पाकिस्तान सह पर स्वतंत्र अस्तित्व के लिए हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार करने प्रारंभ कर दिये। मजबूरन भारत सरकार को सैन्य कार्यवाही करके हैदराबाद को भारतीय संघ में मिला लिया।

10.4.1.3 कश्मीर राज्य का भारत में विलय

भारतीय देशी राज्यों के भारत में विलय के प्रश्न पर कश्मीर का प्रश्न सबसे पृथक था। यहाँ का शासक हिन्दू था और जनता मुस्लिम। हिन्दू शासक अपने राज्य का भारत में विलय चाहता था। किन्तु मुस्लिम जनता की आस्था और कहीं थी। पाकिस्तान के अत्यधिक दबाब के कारण एक समझौता कर लिया। किन्तु पाकिस्तान की मंशा और हरकतों से कश्मीर नरेश हरि सिंह डर गये और *22* अक्टूबर, *1947 ई0* को पाकिस्तान ने कबालियों की आड़ में कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। तब महाराजा कश्मीर नरेश हरि सिंह ने *26* अक्टूबर, *1947 ई0* को भारत में विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया। तभी से कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न:

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. के*0* केलप्पण आमरण अनशन पर कब बैठे थे *?*

   (क) *5* सितम्बर, *1932 ई0*को (ख) *10* सितम्बर, *1932 ई0* को

   (ग) *1* सितम्बर, *1932 ई0* को (घ) *21* सितम्बर, *1932 ई0*

2. भारतीय रियासत विभाग की स्थापना कब हुई *?*

(क) जुलाई, *1947* ई*0* को (ख) अगस्त, *1947* ई*0* को

(ग) सितम्बर, *1947* ई*0* को (घ) इनमें से कोई नहीं

3. देश का सबसे बड़ा देशी राज्य कौनसा था *?*

(क) हैदराबाद (ख) जूनागढ़

(ग) कश्मीर (घ) इनमें से कोई नहीं

4. कश्मीर का भारत में विलय हुआ *?*

(क) अक्टूबर, *1947* ई*0* (ख) जुलाई, *1947* ई*0* को

(ग) अगस्त, *1947* ई*0* को (घ) सितम्बर, *1947* ई*0* को

5. *'*ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेंस*' (*ए*0* आई*0* एस*0* पी*0* सी*0)* का गठन कब हुआ *?*

(क) सितम्बर, *1927* ई*0* को (ख) अक्टूबर, *1927* ई*0*

(ग) दिसंबर, *1927* ई*0* में (घ) इनमें से कोई नहीं

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) वायकोम सत्याग्रह।

(ख) गुरूवायूर सत्याग्रह।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) बिजौलियां कृषक आंदोलन के बारे में आप क्या जानते हो *?*

10.5 सारांश

देशी राज्यों में आन्दोलन ब्रिटिस भारत में हुए अंग्रेजों के विरूद्ध हुए आन्दोलनों का अभिन्न अंग था। देशी राज्यों में आन्दोलन प्रमुखतः अत्यधिक भू - राजस्व की दरों के कारण हुए जो बाद में आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन से अभिन्न से जुड़ गये। देशी राज्यों में आन्दोलन सामाजिक समानता एवं धार्मिक अधिकारों को लेकर भी हुए। इन्हीं देशी राज्यों के आन्दोलनों के फलस्वरूप देशी राज्यों की जनता में एकीकरण का भाव जगा और *1947* ई॰ में देश की आजादी के साथ ही, इन देशी राज्यों का भारत में विलय हो गया।

10.6 तकनीकी शब्दावली

देशी राज्य :- भारतीय रियासतें।

ब्रिटिस भारत :- भारत का वह भाग जो अंग्रेजों के अधीन था।

विलय करना :- मिला लेना।

उत्तरदायी शासन :- जनता के प्रति जवाव देह शासन।

निरंकुश शासक:- जिस पर कोई अंकुश नहीं हो। अर्थात् ऐसा शासक जिसके कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता हो।

स्वेच्छाचारी:- मनमाना आचरण करने वाला, नियम कानून को न मानने वाला निरंकुश शासक।

10.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर:

इकाई 10.*3* के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(1 *)* निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए **10**.*3.5* निरंकुश एवं विलासी शासक
2. देखिए **10**.*3.6* देशी राज्यों में अत्यधिक भू - राजस्व
3. देखिए **10**.*3.7* राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का प्रभाव
4. देखिए **10**.*3.2* प्रेस एवं समाचार पत्रों का प्रभाव
5. देखिए **10**.*3.2* प्रेस एवं समाचार पत्रों का प्रभाव

(2 *)* निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. *(*क) देखिए **10***3.7* राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का प्रभाव

   *(*ख) देखिए **10**.*3.6* देशी राज्यों में अत्यधिक भू - राजस्व

   नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

   *(*अ) देखिए **10**.*3.2* प्रेस एवं समाचार पत्रों का प्रभाव

इकाई 3.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(3*)* निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए **10**.*4* देशी राज्यों में आन्दोलन
2. देखिए **10**.*4.1* देशी राज्यों का भारत में विलय
3. देखिए **10**.*4.1.2* हैदराबाद राज्य का भारत में विलय
4. देखिए **10**.*4.1.3* कश्मीर राज्य का भारत में विलय
5. देखिए **10**.*4* देशी राज्यों में आन्दोलन

(4*)* निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. *(*क) देखिए **10**.*4* देशी राज्यों में आन्दोलन

   *(*ख) देखिए **10**.*4* देशी राज्यों में आन्दोलन

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

*(*अ) देखिए **10**.*4* देशी राज्यों में आन्दोलन

10.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Ashton, S.R. – British polish towarts the Indian States, 1905 – 1939, New Delhi, 1985
2. Menon, V. P. – The Story of the Integration of the Indian States, Madras, 1961
3. Phadnis, Urmila - Towarts the Integration of the Indian States, 1919-1947, Bombay, 1968
4. ग्रोवर, बी॰ एल॰ एवं यशपाल - आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, *1999*

5. शुक्ल, रामलखन (संपा०) - आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, *1998*

10.**9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री:**

1. बिपिन चन्द्र - आधुनिक भारत, नई दिल्ली, *1971*

2. बिपिन चन्द्र, त्रिपाठी, अमलेश, डे, बरूण - स्वतंत्रता संग्राम, नई दिल्ली,*1972*

3. बिपिन चन्द्र एवं अन्य - भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, नई दिल्ली, *1998*

4. पाठक, सुशील माधव - भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास (*1857 - 1947),* वाराणसी, *1993*

5. सरकार, सुमित - आधुनिक भारत (*1885 - 1947),* नई दिल्ली, *1992*

10.**10 निबंधात्मक प्रश्न**

प्रश्न *1.* देशी राज्यों में आन्दोलन की पृष्ठभूमि का सविस्तार वर्णन कीजिये *?*

प्रश्न *2.* देशी राज्यों में हैदराबाद, जूनागढ़ एवं कश्मीर रियासत की स्थिति का विवरण दीजिये *?*

प्रश्न *3.* देशी राज्यों में आन्दोलन के प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाओं का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये

इकाई ग्यारह

वेवल योजना और शिमला सम्मेलन

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 वेवल योजना की पृष्ठभूमि

11.3.1 भारत छोड़ो आन्दोलन और उसका प्रभाव

11.3.2 क्रिप्स मिशन और उसकी असफलता

11.3.3 भारत में भयानक अकाल

11.3.4 द्वितीय विश्व युद्ध और उसकी भयानकता

11.3.5 अंतर्राष्ट्रीय दबाव

11.3.6 वैधानिक गतिरोध समाप्त करना:

11.3.7 इंग्लैण्ड में होने वाले चुनाव

11.4 वेवल योजना

11.4.1 गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी का पुनर्गठन

11.4.2 प्रतिनिधत्व निर्धारण

11.4.3 स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स)

11.4.4 कार्यकारी परिषद् के संचालन का स्पष्टीकरण

11.4.5 भारतीय सदस्यों के विभाग

11.4.6 गवर्नर जनरल एवं भारत सचिव

11.4.7 हाई कमिश्नर की नियुक्ति

11.4.8 संविधान निर्माण

11.4.9 प्रांतीय सरकारें

11.4.10 वेवल योजना का मूल्यांकन

11.5 शिमला सम्मेलन

11.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता

11.5.2 शिमला सम्मेलन का मूल्यांकन

11.6 सारांश

11.7 तकनीकी शब्दावली

11.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ ही, प्रशासन के लिए अनेक विधिक नियमों का निर्माण किया। इनमें से अधिकांश विधिक नियमों का निर्माण अंग्रेजों ने अपनी आवश्यकता के अनुसार किया। किन्तु शनैः - शनैः भारत जागरूक हुआ और भारत ने अपने अधिकारों की मांग करनी प्रारंभ कर दी। भारत की जागरूकता के प्रतिफल स्वरूप अंग्रेजों ने भारतीयों के हितों के अनुरूप अनेक आयोग और योजना बनायीं। इनमें वेवल योजना भी एक थी। वेवल योजना को कार्यरूप प्रदान करने के लिए शिमला सम्मेलन आयोजित किया।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. विद्यार्थी गवर्नर - जनरल वेवल के बारे में जानेंगे।
2. विद्यार्थी भारत में पड़े भयानक अकाल के बारे में जान सकेंगे।
3. विद्यार्थी वैधानिक गतिरोध को समझ सकेगें।
4. विद्यार्थी इंग्लैण्ड में होने वाले चुनावों को समझ सकेगें।
5. विद्यार्थी गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के बारे में जान सकेंगे।
6. विद्यार्थी हाई कमिश्नर के बारे में जान सकेंगे।
7. विद्यार्थी वेवल योजना के बारे में जान सकेंगे।
8. विद्यार्थी वेवल योजना का समग्र मूल्यांकन कर सकेंगे।
9. विद्यार्थी शिमला सम्मेलन के बारे में जान सकेंगे।
10. विद्यार्थी शिमला सम्मेलन का मूल्यांकन कर सकेंगे।
11. विद्यार्थी वेवल योजना और शिमला सम्मेलन की प्रासंगिकता को समझ सकेगें।

11.3 वेवल योजना की पृष्ठभूमि

लॉर्ड वेवल अक्टूबर, 1943 ई0 में भारत के गवर्नर - जनरल बनकर भारत आये। आते ही, उन्होंने भारत के राजनैतिक एवं वैधानिक गतिरोध समाप्त करने के प्रयास करने प्रारंभ कर दिये। क्योंकि, तत्कालीन परिस्थितियाँ अंग्रेजों के विरूद्ध होती जा रहीं थी। भारत का राजनैतिक वातावरण अत्यधिक गर्माया हुआ था तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक दबाव भी इंग्लैण्ड पर अत्यधिक बना हुआ था।

11.3.1 भारत छोड़ो आन्दोलन और उसका प्रभाव

9 अगस्त, 1942 ई0 से भारत छोड़ो आंदोलन प्रारंभ हुआ। इस आंदोलन सारे देश को आंदोलित कर दिया था। भारत छोड़ो आंदोलन तीव्रता के साथ सारे देश में फैल गया था। देश में पहली बार महानगरों से लेकर गांवों तक राजनैतिक जागृति का अद्भुत दृश्य देखने को मिला। सारा देश तन कर आजादी के संघर्ष में कूद चुका था। आंदोलनकारियों ने सरकारी प्रतीकों और अंग्रेजी सत्ता के चिन्हों को जमींदोज कर दिया था। पुलिस थानों, डाकघरों, रेल्वे स्टेशनों, प्रशासनिक भवनों आदि आंदोलनकारियों के निशाने बने। साथ ही, रेल्वे लाईनों, पुलों, टेलीफोन एवं तार की लाइनों तथा यातायात के अन्य साधनों को ध्वस्त करने के प्रयास किये गये।

भारत की आम जनता की इस प्रतिक्रिया से अंग्रेजी सरकार सकते में आ गयी। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था, इस खुली बगावत को कुचलने के लिए अंग्रेजी सरकार ने कठोरतम् दमन चक्र चलाया और सारे देश में एक प्रकार से पुलिस राज्य की स्थापना कर दी गयी थी। स्वयं गवर्नर जनरल ने स्वीकार किया कि, हम 1857 की क्रांति के बाद सबसे महान् खुली जन बगावत का सामना कर रहे है। भारत छोड़ो आंदोलन ने सारे देश को राजनैतिक रूप से जागृत कर दिया था। अब अंग्रेजों को लगने लगा था कि, भारतीयों को शांत करने के लिए प्रयास करने पड़ेगे। इन्हीं प्रयासों के तारतम्य में वेवल योजना और शिमला सम्मेलन थे।

11.3.2 क्रिप्स मिशन और उसकी असफलता

वेवल योजना और शिमला सम्मेलन की पृष्ठभूमि में 'क्रिप्स मिशन' और उसकी असफलता भी थी। भारतीयों का द्वितीय विश्व युद्ध में सहयोग लेने और राजनैतिक गतिरोध को तोड़ने के उद्देश्य से भारत में एक संवैधानिक आयोग 23 मार्च, 1942 ई0 को भेजा। इस आयोग के अध्यक्ष प्रधानमंत्री चर्चिल के युद्ध मंत्रीमण्डल के सदस्य सर स्टेफर्ड क्रिप्स थे और उन्हीं के नाम से इसे 'क्रिप्स मिशन' के नाम से जाना गया। क्रिप्स मिशन के प्रमुख प्रावधानों में स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स), संवैधानिक सभा का गठन तथा कॉमनवेल्थ से पृथक होने का अधिकार सम्मिलित था।

क्रिप्स के प्रस्तावों पर लगातार 15 दिनों तक गंभीर चर्चा होती रही और अंत में प्रतिरक्षा संबंधी विषयों पर कांग्रेस से बात नहीं बनी और क्रिप्स मिशन के प्रस्तावों को भारतीयों ने ठुकरा दिया। बहुत से भारतीय नेताओं ने इन प्रस्तावों को देर से उठाया गया कदम बताया और गांधीजी ने तो क्रिप्स के प्रस्तावों को **'उत्तरतिथीय चैक'** की संज्ञा' तक दे डाली थी। इस प्रकार भारत का राजनैतिक गतिरोध को तोड़ने का एक और प्रयास असफल हो

गया। अब अंग्रेजी सरकार ने 'क्रिप्स मिशन' की असफलता के बाद राजनैतिक गतिरोध को तोड़ने के उद्देश्य से वेवेल योजना प्रस्तुत की और शिमला सम्मेलन के द्वारा राजनैतिक सहमति बनाने के प्रयास किये।

11.3.3 भारत में भयानक अकाल

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भारत में भयानक अकाल पड़ा। अकाल का यह दौर 1943 - 1944 ई0 तक चला। इस दौरान लाखों लोग मारे गये। अंग्रेजी सरकार ने अकाल की भयानकता को कम करने के कोई प्रयास नहीं किये। इससे भारतीयों में भारी असंतोष व्याप्त हो गया। उधर द्वितीय विश्व युद्ध के कारण मंहगाई भी अत्यधिक बढ़ गयी थी। इससे लोगों की परेशानियाँ और अधिक बढ़ गयीं थी। बढ़ते असंतोष को संतुलित करना आवश्यक था। अतः भारतीयों का ध्यान आकर्षित करने और उन्हें यह बताने की कि, हम उनके लिए आवश्यक कदम उठा रहे है को दिखाने के लिए वेवल योजना को जनता के समक्ष रखा।

11.3.4 द्वितीय विश्व युद्ध और उसकी भयानकता

वेवल योजना के मूल में द्वितीय विश्व युद्ध और उसकी भयानकता भी थी। 1 सितम्बर, 1939 ई0 से प्रारंभ द्वितीय विश्व युद्ध 1945 ई0 तक भयानक रूप के चुका था। द्वितीय विश्व युद्ध ने इंग्लैण्ड और उसके मित्र देशों की अर्थव्यवस्था को चकनाचूर कर दिया था। साथ ही, इंग्लैण्ड और उसके मित्र देशों की जनता भी युद्ध से त्रस्त हो चुकी थी। उधर सेना भी लगातार युद्ध करते - करते परेशान हो गयी थी। द्वितीय विश्व युद्ध का इतना अधिक वर्षों तक चलना निश्चित रूप से परेशानी का सबब बनने लगा था। हालाँकि, 1943 ई0 में इटली और 1945 ई0 में जर्मनी परास्त हो चुके थे। किन्तु, जापान अभी भी मैंदान में डटा हुआ था और वह अंग्रेजों के भारतीय सम्राज्य के लिए लगातार खतरा बनता जा रहा था। अंग्रेजों को लग रहा था कि, जापान से अभी एक - दो वर्षों तक और चलेगा। लॉर्ड वेवल, जो स्वयं सेनापति रह चुका था ने अंग्रेजी सरकार को समझाया कि, भारत की समस्या सुलझाना आवश्यक है नहीं तो गम्भीर समस्या खड़ी हो जायेगी।

वेवल ने इसी मंशा से भारत का राजनीतिक गतिरोध दूर करने का प्रयास करना प्रारंभ किया। इसके पीछे ब्रिटिश सरकार और वेवेल की सोची समझी रणनीति थी। वे द्वितीय विश्व युद्ध में भारतीय राजनीतिक दलों का सहयोग चाहते थे। उनका सोचना था कि, यदि किसी बिन्दु पर एक राय बन जाती है, तो भारत में चल रहा राजनीतिक गतिरोध समाप्त हो जायेगा और भारत में राजनीतिक शांति स्थापित हो जायेगी। इसका लाभ ब्रिटिश सरकार द्वितीय विश्व युद्ध में ले सकती थी। इसी कारण वेवेल ने अपनी योजना के अंतर्गत शिमला सम्मेलन आयोजित किया और राजनैतिक एकराय बनाने का प्रयास भी हुआ।

11.3.5 अंतर्राष्ट्रीय दबाव

अंग्रेजी सरकार पर लगातार अंतर्राष्ट्रीय दबाव बन रहा था कि, वह भारत की समस्या को सुलझाये। जापान के एशिया में बढ़ते कदमों से इंग्लैण्ड और उसके मित्र देशों में खलबली मची हुई थी कि, कहीं जापान भारत पर कब्जा न कर ले। इंग्लैण्ड के मित्र देश उस पर भारी दबाव बना रहे थे कि, वह भारतीयों से सकारात्मक वार्ता करे और कोई सकारात्मक कदम उठाये। जिससे विश्व युद्ध में भारतीयों का सक्रिय सहयोग मिल सके।

अमरीका, रूस, चीन आदि देशों ने इंग्लैण्ड पर भारी दबाव बना रखा था। इसी दबाव के चलते वेवल योजना प्रस्तुत की गयी।

11.3.6 वैधानिक गतिरोध समाप्त करना

लार्ड वेवल ने भारत का वायसराय (गवर्नर जनरल) बनने के बाद वैधानिक गतिरोध समाप्त करने की मंशा से नवीन रचनात्मक तथा सकारात्मक कदम उठाने का प्रयास किया। लार्ड वेवल की स्पष्ट धारणा थी कि, भारत में लगातार बढ़ता वैधानिक गतिरोध इंग्लैण्ड के भारतीय साम्राज्य के हित में नहीं है। साथ ही, वह यह भी जानता था कि, वैधानिक गतिरोध ब्रिटिश साम्राज्य के हित में भी नहीं है। क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियाँ लगातार ब्रिटिश साम्राज्य के लिए समस्या खड़ी करती जा रही थी। 1935 के अधिनियम के बाद से वैधानिक गतिरोधों ने नया रूप धारण कर लिया था। इसका प्रमुख कारण 1935 के अधिनियम के प्रावधान ही थे, संघीय योजना लागू होने से पहले ही खत्म हो गयी।

अंग्रेजों ने बड़े सोच - विचार के साथ संघीय योजना बनायी थी। उनका उद्देश्य सभी राजनीतिक इकाईयों को एक सूत्र में पिरोना था, किन्तु संघीय योजना के प्रारूप में ही इसकी असफलता छिपी हुई थी, देशी रियासतों को अत्यधिक महत्व देने के कारण योजना की अकाल मृत्यु हो गयी। इससे ब्रिटिश शासन की अत्यधिक किरकिरी हुई। 1935 के अधिनियम की प्रांतीय स्वायत्तता भी मात्र एक समझाइस ही थी, क्योंकि इसमें प्रांतीय गवर्नर को अत्यधिक शक्तियाँ प्रदान की गयी थी। 1935 के अधिनियम ने भारतीयों को अत्यधिक असंतुष्ट कर दिया था। इससे भारतीय संतुष्ट होने की अपेक्षा लगातार असंतुष्ट होने लगे थे। उसके बाद द्वितीय विश्व युद्ध तथा कांग्रेसी मंत्री मण्डल के त्याग पत्र ने वैधानिक गतिरोध को बड़ा दिया।

ब्रिटिश शासन वैधानिक गतिरोध को तोड़ने के प्रयास जारी रखे और इसी तारतम्य में वायसराय लिनलिथगों (1938 - 43 ई0) ने अगस्त 1940 ई0 से 'अगस्त प्रस्ताव' (ऑगस्ट ऑफर) द्वारा वैधानिक गतिरोध तोड़ने का प्रयास किया। भारतीयों को मनाने के लिए अनेक प्रावधान रखे। जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण भारत का संविधान भारतीयों द्वारा ही बनाना तथा प्रादेशिक स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स) का उल्लेख किया गया था। किन्तु, लिनलिथगों का अगस्त प्रस्ताव भी वैधानिक गतिरोध को नहीं तोड़ सका। फिर भी लगातार बढ़ते दवाब से मुक्त होने के लिए ब्रिटिश सरकार ने लगातार प्रयास करने जारी रखे। 1942 ई0 में क्रिप्स को वैधानिक गतिरोध तोड़ने के लिए भेजा गया किन्तु क्रिप्स मिशन भी असफल रहा।

1943 ई0 को ब्रिटिश सरकार ने लार्ड वेवल को भारत का वायसराय नियुक्त किया तथा ब्रिटिश सरकार ने वेवल को भारत का वैधानिक गतिरोध तोड़ने के उद्देश्य से भारत भेजा था। ब्रिटिश ने आशा की कि वेवल भारतीय नेताओं को समझाकर वैधानिक गतिरोध तोड़ने में सफल होंगे तथा लंबे समय से चली आ रही खींचतान अंततः समाप्त हो जायेगी। वेवल ने भी वायसराय बनते ही भारत में आते ही घोषणा की वे भारतीयों के लिए सौंगातों का समुन्दर लेकर आये हैं। वस्तुतः स्वयं वेवल भी वैधानिक गतिरोध को तोड़ने की इच्छा रखते थे। कार्यभार संभालते हुए ही वेवल ने ऐसे संकेत दिये कि वे भारत का वैधानिक गतिरोध समाप्त करने की इच्छा रखते है। अपनी इच्छा के अनुसार वेवल ने प्रयास किये और 1945 में एक योजना प्रस्तुत की। जिसे 'वेवल योजना' के

नाम से जाना जाता है। लॉर्ड वेवल भारत के विभिन्न विचारधारा वाले राजनीतिक दलों को एक मंच पर लाने का प्रयास कर रहे थे। उनकी मंशा थी कि, भारत के राजनीतिक दल विचार - विमर्श के लिए पहले एक मंत्र पर तो आये, तब कहीं जाकर कोई आमराय विकसित की जा सकती है।

11.3.7 इंग्लैण्ड में होने वाले चुनाव

ब्रिटेन में होने वाले चुनाव 'वेवल योजना' की पृष्ठभूमि का प्रमुख कारण था। ब्रिटेन में चुनाव होने वाले थे और चुनावों में 'श्रमिक दल' (लेबर पार्टी) की विजय की संभावनाएँ लगातार बनती जा रही थी। ब्रिटिश जनता का झुकाव लगातार श्रमिक दल की ओर बढ़ता जा रहा था, जिससे सत्तारूढ़ दल (अनुदार दल) में घबराहट पैंदा होने लगी थी। सत्तारूढ़ दल को लगने लगा था कि, भारत नीति के बारे में श्रमिक दल ब्रिटिश जनता को अधिक प्रभावित कर रहा है। उधर श्रमिक दल भी जोर शोर से चर्चिल की भारत नीति की अत्यधिक आलोचना कर रहा था तथा चर्चिल की भारतीय समस्याओं को सुलझाने वाले नीतियों की घोर निन्दा कर रही थी। ऐसे समय में जब ब्रिटेन का राजनीतिक वातावरण चर्चिल के विरूद्ध हो रहा था, तब चर्चिल और उनकी सरकार ने भारतीय समस्याओं का तर्कसंगत हल निकालने के लिए उपाय करना आवश्यक समझा।

ब्रिटेन में चुनाव अभियानों के दौरान श्रमिक दल के नेता लगातार यह कह रहे थे कि, वे भारतीयों के हित में काम करेगें। श्रमिक दल के नेता ग्रीनबुड, बैविन एवं लॉस्की ने चुनावों में ब्रिटेन की आम जनता के सामने कहा कि यदि हमारी सरकार बनती है तो, हम भारत में जारी राजनीतिक गतिरोध को समाप्त कर देंगे। श्रमिक दल के इन दावों से चर्चिल के अनुदारदल की स्थिति खराब होती जा रही थी। अनुदार दल के नेता आम जनता को उचित जबाव नहीं दे पा रहे थे। अनुदार दल के नेता चर्चिल अब यह बताना चाहते थे कि, हमारी सरकार भारतीयों के हित में काम करने का प्रयास कर रही है। हम भारतीयों की समरूाओं को सुलझाने में प्रयत्नशील है।

ब्रिटेन की जनता को चर्चिल यह बताना चाह रहे थे कि, हम भारतीयों की समस्यायें श्रमिक दल की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह सुलझा सकते हैं और हम इसके लिए लगातार प्रयास भी कर रहे है और इसी प्रयास में हम लगातार भारतीय नेताओं से वार्ताकर रहे हैं तथा उनके सामने नये - नये विकल्प भी प्रस्तुत कर रहे हैं हमारे प्रयास भारत और भारतीयों के हित में ही तो है। चर्चिल की इन बातों का विशेष प्रभाव ब्रिटेन की जनता पर नहीं पड़ा और ब्रिटिश जनता चर्चिल के प्रयासों को सार्थक नहीं मान रही थी। उधर श्रमिक दल के नेताओं के प्रभावशाली वक्तव्य ब्रिटेन की जनता को खासे प्रभावित कर रहे थे।

ब्रिटेन की जनता श्रमिक दल के भारत संबंधी भावी विचारों से बहुत अधिक प्रभावित हो रही थी। श्रमिक दल के नेता ऐटली भारत संबंधी अपने विचारों के कारण अधिक विश्वसनीय होते जा रहे थे। ऐटली ने घोषणा की कि, यदि उनकी सरकार सत्ता में आती है, तो शीघ्रातिशीघ्र हम भारत को आजाद कर देगें। ऐटली की इस प्रभावशाली घोषणा से अनुदार दल में हलचल मच गयी। अनुदार दल नही चाहता था कि, भारतीयों की समस्याओं को सुलझाने का श्रेय श्रमिक दल को जाये। इसी कारण चर्चिल ने बड़ी ही चपलता से वेवल को भारतीयों की समस्याओं को सुलझाने के लिए निर्देशित किया। वेवल ने भारत आते ही आशावादी वक्तव्य देने

प्रारंभ कर दिये तथा ऐसा वातावरण निर्मित करने का प्रयास किया कि, अंग्रेजी सरकार भारतीयों की सच्ची हितैषी तथा भारतीयों के हित में कार्य करना चाहती है।

11.4 वेवल योजना

लॉर्ड वेवल अक्टूबर, 1943 ई0 को गवर्नर - जनरल बनकर भारत आये। भारत में गवर्नर जनरल का पद संभालते ही, वेवल ने भारत में जारी संवैधानिक एवं राजनीति गतिरोध समाप्त करने के प्रयास करने प्रारंभ कर दिये। वेवल भारतीय राजनीति एवं भारत के बारे में अच्छी तरह से जानते थे। भारत के बारे में उनका ज्ञान पूर्ण था, क्योंकि वे भारत में ब्रिटिश सेना के सर्वोच्च सेनापति के पद पर रह चुके थे इसीलिए वेवल तत्कालीन परिस्थितियों का अच्छी तरह से आंकलन भी कर सकते थे। वेवल ने भारत में गवर्नर - जनरल के रूप में तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति का गहन अवलोकन किया और वैधानिक गतिरोध दूर करने के प्रयास प्रारंभ कर दिये।

भारत के गवर्नर जनरल का पद ग्रहण करने के बाद वेवल ने कहा कि, 'वह भारत के लिए अद्भुत भेटों से भरा थैला लेकर आये हैं।' वेवल ने बड़े सोच विचार कर एक मसौंदा तैयार किया और इस मसौदें पर विचार - विमर्श के लिए मार्च, 1945 में लॉर्ड वेवल लंदन गये। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से भारत की भावी संवैधानिक व्यवस्था पर गहन विचार - विमर्श किया। उधर विश्व युद्ध में नित नवीन घटनाएँ घट रही थी। ब्रिटेन कड़े संघर्ष में फंसा हुआ था। ऐसे समय में वेवल सामने यह समस्या भी थी कि, कहीं कुछ ऐसा न घट जाये जिससे स्थिति और खराब हो जाये। वेवल को ध्यान में रखना था कि, किसी भी प्रकार से ऐसा मसौंदा बन सके, जिस पर राजनीतिक गतिरोध थम सके और भारतीयों का द्वितीय विश्व युद्ध में सहयोग प्राप्त किया जा सके।

ज्ञातव्य रहे कि, इन सारी प्रक्रियाओं के मध्य वेवल को ब्रिटेन के हितों की भी रक्षा करनी थी, क्योंकि ब्रिटिश अपने साम्राज्य को खोना नहीं चाहते थे। वे साम्राज्य के अंदर ही समस्याओं का समाधान चाहते थे। 4 जून, 1945 ई0 को वेवल लंदन से विचार - विमर्श करके लौटे। भारत लौटने के बाद वेवल ने अपने संभावित मसौंदे को जारी करने में दस दिनों का समय लिया। इन दस दिनों में भी वेवल लगातार संभावित मसौंदे के प्रावधानों पर विचार - विमर्श करते रहे। ठीक दस दिनों के उपरांत 14 जून, 1945 को वेवल ने रेडियो प्रसारण द्वारा अपना प्रस्ताव जनता के सामने रखा। वेवल ने कहा कि, इन प्रस्तावों से भारत का राजनीति गतिरोध शनैः - शनैः कम होगा तथा भारत शनैः - शनैः पूर्ण स्वराज की ओर बढ़ेगा। चूंकि, ये प्रस्ताव वेवल द्वारा बनाये एवं तैयार किये गये थे, इसी कारण इन प्रस्तावों को वेवल के नाम पर ही 'वेवल योजना' का नाम दिया गया। 'वेवल योजना' में प्रावधान निम्नलिखित थे -

11.4.1 गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी का पुनर्गठन

गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी का पुनर्गठन वेवल योजना का प्रमुख प्रावधान गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी का पुनर्गठन करना था। वेवल अपनी योजना के अंतर्गत गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में भारतीयों को अधिक प्रतिनिधित्व दिया। उनका मानना था कि, गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में भारतीयों के अधिक प्रतिनिधित्व से भारतीय संतुष्ट होंगे तथा वैधानिक संकट को खत्म करने में सहायता मिलेगी। वेवल ने अपनी योजना में प्रावधान किया कि, गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में वायसराय (गवर्नर जनरल) और मुख्य सेनापति

को छोड़कर सभी सदस्य भारतीय होगें। वेवेल के इस प्रावधान का मतलब था कि, सर्वोच्च कार्यकारिणी (गवर्नर जनरल) में सभी सदस्य भारतीय होने थे, स्वयं गवर्नर जनरल एवं प्रधान सेनापति ही हो विदेशी सदस्य होने थे। वेवल योजना के इस प्रावधान से पहली बार गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में भारतीयों का दबदबा बड़ सकता था तथा भारतीय प्रशासनिक निर्णयों को प्रभावित करने एवं उन्हें भारतीयों के हित में लागू करने के लिए दबाव बना सकते थे।

11.4.2 प्रतिनिधत्व निर्धारण

वेवल योजना में गवर्नर जनरल की नई कार्यकारिणी में स्पष्ट रूप से भारतीयों के लिए किस प्रकार का प्रतिनिधित्व होगा निर्धारित कर दिया गयाथा। वेवल ने कार्यकारिणी में संगठित राजनैतिक दलों को अधिक महत्व दिया था। वेवल योजना में संगठित विचारों को अधिक महत्व दिया गया था। वेवल ने अपनी योजना में भारत के मुख्य समुदायों का प्रतिनिधित्व निर्धारित कर दिया था। भारत के मुख्य समुदाय हिन्दू और मुसलमान थे, वेवल ने अपनी योजना में गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में दोनों को बराबर - बराबर प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था। वेवल अपनी योजना के अंतर्गत गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में भारत के दोनों समुदायों बराबर प्रतिनिधित्व देकर गतिरोध समाप्त करना चाहता था। वेवल योजना में हिन्दू के लिए 'सवर्ण हिन्दू' (कॉस्ट हिन्दू) शब्द का प्रयोग किया गया था।

वेवल चाहता था कि, भारत में किसी भी प्रकार से राजनीतिक शांति स्थापित हो जाये। साथ ही, वेवल चाहता था कि, इससे हिन्दू और मुसलमान दोनों को संतुष्ट करने में सफलता मिलेगी। संगठित नवीन कार्यकारिणी को 1935 के अधिनियम के अंतर्गत ही कार्य करना था। अतः स्पष्ट है कि, नियम और कायदे 1935 के अधिनियम के अनुसार ही चलने थे तथा उन्हीं नियमों पर भारतीयों को कार्य करना था। इससे यह तो तय था कि, भारतीय सदस्य नियमों से बाहर कोई काम नहीं कर सकते थे और नियमों से बाहर काम रकने का समय भी नहीं था। वेवल की योजना में दोनों समुदायों को बराबर स्थान देकर 'चैक एण्ड बैलेन्स' की नीति भी अंतर्निहित थी। वेवल जानते थे कि, मुसलमान सदस्य साम्राज्य के हितों का ध्यान रखेगें और वे हिन्दुओं को शांति से कार्य नहीं करने देंगे।

11.4.3 स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स)

वेवल की योजना का उद्देश्य भारत को स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स) की ओर शनैः - शनैः ले जाना था। वेवल भारतीयों को यह बताना चाहते थे कि, वे भारत को स्वशासन की ओर ले जा रहे है। मेरी योजना भारत को स्वशासन प्रदान करेगी तथा भारतीय आंतरिक मामलों में पूर्ण स्वतंत्र रहकर अपने निर्णय ले सकेगें। भारतीयों को सत्ताधिकार प्रदान कर दिये जायेंगे तथा समस्त प्रमुख पदों पर भारतीय आसीन रहेगें। भारतीय अपने निर्णय स्वयं ले सकेंगे तथा उन्हें स्वयं लगू भी कर सकेगें। अन्य डोमिनियन स्टेटों की तरह ही ब्रिटेन का संबंध भारत से रहेगा। स्वशासन के इस प्रावधान में भारतीय आंतरिक मामलों में कुछ सीमाओं के सम्य लगभग पूर्ण स्वतंत्र रहना था तथा बाह्य मामले ब्रिटेन के अधीन रहेगें। कुल मिलकार स्वशासन में भारतीय सम्प्रभु नहीं होने थे, इंग्लैण्ड के उपनिवेश के रूप में आंतरिक स्वतंत्रता का प्रावधान था।

11.4.4 कार्यकारी परिषद् के संचालन का स्पष्टीकरण

वेवल योजना के प्रावधानों के अंतर्गत गवर्नर - जनरल की कार्यकारिणी परिषद के संचालन का खाका भी स्पष्ट कर दिया गया था। वेवल योजना के तहत गवर्नर - जनरल की कार्यकारिणी को युद्ध संचालन भारत सरकार का संचालन, ऐसा रास्ता निकालना जिससे गतिरोध दूर हो और नया संविधान बन सके। जो सभी की सहमति से बने जो स्थायी संविधान सिद्ध हो। भारत में चल रहे गतिरोध का शांतिपूर्वक हल निकालना। इस प्रकार वेवल ने अपनी योजना में गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के संचालन के तौर - तरीकों को स्पष्ट कर दिया था, ताकि किसी भी प्रकार का गतिरोध उत्पन्न न हो सके।

11.4.5 भारतीय सदस्यों के विभाग

वेवल ने अपनी योजना में गवर्नर जनरल के भारतीय सदस्यों के विभागों को स्पष्ट रूप अलिखित कर दिया गया था। वेवल ने अपनी योजनाओं में समस्त विभागों को भारतीयों के हाथों में सौंपने का प्रावधान किया था, वेवल ने मात्र सीमान्त एवं कबाइली मामलों को छोड़कर शेष सभी वैदेशिक विभाग भारतीयों के हाथों में रहेगें। इस प्रकार वेवल ने अपनी योजना में भारतीयों को बहुत अधिक अधिकार प्रदान किये थे, यहाँ तक कि विदेशी मामले भी भारतीयों के हाथों में सौंपने का प्रावधान कर दिया था।

11.4.6 गवर्नर जनरल एवं भारत सचिव

वेवल ने अपनी योजना में गवर्नर जनरल एवं भारत सचिव के निरंकुश अधिकारों एवं दिन - प्रतिदिन के हस्तक्षेपों को कम करने का प्रावधान किया था। वेवल योजना में गवर्नर जनरल से अपेक्षा की गयी थी कि वह कार्यकारिणी परिषद के निर्णयों पर अकारण वीटों का प्रयोग न ही करेगा। वेवल ने भारत सचिव के कम से कम नियंत्रण का भी प्रावधान किया था तथा अपेक्षा की कि, भारत सचिव भारत के हितों में कार्य करें।

11.4.7 हाई कमिश्नर की नियुक्ति

वेवल ने अपनी योजना में भारत में एक ब्रिटिश उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) की नियुक्ति प्रावधान किया था। ताकि वह भारत में ब्रिटेन के वाणिज्य तथा अन्य हितों की देखरेख करता रहे। यह नियुक्ति ब्रिटेन द्वारा अन्य डोमिनियन स्टेट्स वाले देशों के समान होनी थी। वेवल योजना में उच्चायुक्त की नियुक्ति महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होनी थी, यह ठीक वैसे ही होता जैसे किसी स्वतंत्र देश में उच्चायुक्त का होना। अतः वेवल की येाजना में भविष्य की आजादी के गुण अंतर्निहित थे।

11.4.8 संविधान निर्माण

वेवल ने अपनी योजना में भारत के भावी संविधान के निर्माण के बारे में उल्लेख किया था। वेवल ने स्पष्ट किया कि, युद्ध के बाद बनने वाले संविधान पर इन प्रस्तावों से कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। युद्ध के बाद भारतीय अपना संविधान स्वयं बनायेगें। इस प्रकार वेवेल ने अपने प्रस्तावों में स्पष्ट कर दिया था कि मेरे प्रस्तावों से भारत के बनने वाले संविधान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा तथा संविधान बनाना सिर्फ और सिर्फ भारतीयों द्वारा ही किया जायेगा।

11.4.9 प्रांतीय सरकारें

वेवल ने अपनी योजना में प्रांतीय सरकारों के शासन के बारें में उल्लेख किया था। वेवल ने अपनी योजना में कहा कि, यदि भारतीय इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लेते है तो 1935 के अधिनियम की धारा 93 को समाप्त कर दिया जायेगा और राज्यपाल का शासन समाप्त कर दिया जायेगा। प्रांतों में उत्तरदायी सरकारों की स्थापना की जायेगी तथा प्रांतों में सभी दलों की मिली - जुली सरकारों का गठन कर दिया जायेगा।

11.4.10 वेवल योजना का मूल्यांकन

वेवल योजना अब तक के संवैधानिक प्रयासों में सबसे उत्तम थी। पहली बार अंग्रेजों के प्रस्ताव ऐसे थे, जो भारतीयों के हित में अधिक झुके हुए थे। गवर्नर - जनरल और प्रधान सेनापति के पद को छोड़कर सभी पद भारतीयों को देने की बात की गयी थी। यहाँ तक कि, पहली बार किसी संवैधानिक प्रस्ताव में भारतीयों के हाथों में विदेशी मामलों का पद देने की पेशकश की गयी थी, जो अपने आप में विशिष्ट थी। संविधान बनाने की स्वतंत्रता भारतीयों को प्रदान की गयी थी। इस प्रकार वेवेल योजना में अनेक सकारात्मक तथ्य सम्मिलित थे। वेवल योजना में अनेक विसंगतियाँ भी विद्यान थी।

महात्मा गाँधी ने वायसराय वेवल से योजना के बारे में जानना चाहा कि, योजना में स्वतंत्रता का उल्लेख क्यों नहीं है? इसके जवाब में वेवल ने कहा कि, योजना में डोमिनियन स्टेट्स का उल्लेख है। साथ ही, भारत की इच्छा है कि वह चाहे राष्ट्रमण्डल में रहे न रहे और इसका मतलब स्वतंत्रता से ही है। महात्मा गाँधी ने योजना में 'सवर्ण हिन्दू' (कॉस्ट हिन्दू) शब्द के प्रयोग पर विरोध किया। उन्होंने वायसराय से कहा कि, इस प्रकार का विभाजन हमें किसी भी स्थिति में स्वीकार्य नहीं है। महात्मा गांधी ने अंग्रेजों की भारतीय समस्या को सुलझाने में धार्मिक एवं साम्प्रदायिकता के आधार पर सुलझाने पर ऐतराज व्यक्त किया। महात्मा गांधी ने हिन्दू और मुसलमानों के मध्य समानता को स्वीकार नहीं किया। गवर्नर - जनरल वेवेल ने महात्मा गांधी की चिंताओं का जबाव देने का प्रयास किया तथा कहा कि, सवर्ण हिन्दू से मतलब मात्र अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त हिन्दुओं से है। हिन्दू और मुसलमानों के बराबर प्रतिनिधित्व का प्रश्न है, तो यह केवल सुझाव मात्र है। कांग्रेस चाहे तो इसे अस्वीकार कर सकती है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. लॉर्ड वेवल कब गवर्नर - जनरल बनकर भारत आये ?
   (क) अगस्त, 1943 ई0को (ख) सितम्बर, 1943 ई0 को
   (ग) अक्टूबर, 1943 ई0 को (घ) नवम्बर, 1943 ई0 को
2. वेवल योजना के अंतर्गत प्रांतीय सरकारों को किस आधार पर शासन करना था?
   (क) 1935 के अधिनियम के आधार पर (ख) वेवल योजना के आधार पर
   (ग) संघीय योजना के आधार पर (घ) इनमें से कोई नहीं
3. लॉर्ड वेवल ने वेवल योजना को कब प्रस्तुत किया था ?

(क) 4 जून, 1945 ई0 को (ख) 14 जून, 1945 ई0 को

(ग) 24 जून, 1945 ई0 को (घ) इनमें से कोई नहीं

4. किस गवर्नर - जनरल ने कहा कि, 'वह भारत के लिए अद्भुत भेटों से भरा थैला लेकर आये हैं' ?

(क) लिनलिथगों ने (ख) लॉर्ड वेवल ने

(ग) ऐटली ने (घ) इनमें से कोई नहीं

5. किस योजना द्वारा भारत में एक ब्रिटिश उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) की नियुक्ति का प्रावधान किया गया था ?

(क) ऑगस्ट ऑफर द्वारा (ख) क्रिप्स मिशन द्वारा

(ग) वेवल योजना द्वारा (घ) इनमें से कोई नहीं

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) वेवल योजना के अंतर्गत प्रतिनिधित्व निर्धारण।

(ख) वेवल योजना के अंतर्गत प्रांतीय सरकारों का संचालन।

2. **नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:**

(अ) वेवल योजना का मूल्यांकन कीजिये ?

11.5 शिमला सम्मेलन

गवर्नर जनरल वेवल ने अपनी योजना (वेवल योजना) को कार्य रूप प्रदाय करने के लिए शिमला में भारत के विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों का 25 जून 1945 ई0 को सम्मेलन बुलाया। शिमला सम्मेलन वेवल योजना पर राजनैतिक दलों के विचार विमर्श और राजनैतिक गतिरोध को समाप्त करने तथा राजनैतिक सहमति बनाने के उद्देश्य से आयोजित किया गया था। वेवेल ने शिमला सम्मेलन में कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के अध्यक्षों, विधानसभाओं में कांग्रेस दल के नेता तथा मुस्लिम लीग दल के अपनेता, विधानमण्डलों के राष्ट्रीय दल तथा यूरोपियन गुट के नेता, कौंसिल ऑफ स्टेट के अंग्रेजी एवं लीगी नेता एक प्रतिनिधि अनुसूचित जातियों का तथा एक सिक्खों का तथा वे सभी भूतपूर्व मुख्यमंत्री, जिन्होंने 1939 में इस्तीफा दे दिया था को आमंत्रित किया।

इस प्रकार वेवल ने बड़े ही योजनाबद्ध तरीके से विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधियों की शिमला सम्मेलन में आमंत्रित किया था। शिमला सम्मेलन गवर्नर जनरल के भाषण से प्रारंभ हुआ। गवर्नर जनरल ने कहा कि, यह संवैधानिक हल नहीं है तथा न ही यह अंतिम अवसर। किन्तु यह प्रयास सफल रहा तो आगे रास्ता निकालने में सहयोगी रहेगा। शिमला सम्मेलन में कांग्रेस अध्यक्ष अबुल कलाम आजाद ने बहस प्रारंभ करते हुए कहा कि, कांग्रेस एक राष्ट्रीय संस्था है तथा सम्मेलन में यह किसी सम्प्रदाय की प्रतिनिधि नहीं है, अपितु सारे राष्ट्र की प्रतिनिधि के रूप सम्मिलित माना जाये। जिन्ना ने बड़े ही कड़े शब्दों में कहा कि, हमें ऐसी कोई योजना मंजूर नहीं है, जिसमें पाकिस्तान का उल्लेख न हो। मुस्लिम लीग ने स्पष्ट किया कि, काम चलाऊ सरकार के गठन में मुस्लिम लीग और कांग्रेस को बराबर माना जाये। जिन्ना का कहना था कि, कांग्रेस भारत के सभी सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व नहीं करती है, कांग्रेस 90 प्रतिशत हिन्दुओं की प्रतिनिधि और मुस्लिमलीग 90 प्रतिशत मुसलमानों की।

सम्मेलन में लगातार विभिन्न विषयों पर विचार - विमर्श चलता रहा। वेवेल ने कार्यकारिणी कौंसिल और उसकी शक्तियों और सदस्यता के बारे में विचार विमर्श किया। विविध चर्चाओं के सहमति और असहमति के दौर चलते रहे। अंत में वेवल ने सुझाव दिया कि, कांग्रेस और अन्य दल अपने सदस्यों की एक सूचियाँ प्रस्तुत करें। वेवल ने कार्यकारिणी परिषद् का निर्माण 14 सदस्यों से करने का प्रस्ताव दिया। जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग के 5 - 5 सदस्य तथा 4 सदस्यों के नाम वेवल अपनी स्वेच्छा देगें। कांग्रेस ने अबुल कलाम आजाद, सरदार बल्लभ भाई पटेल, जवाहर लाल नेहरू, एक पारसी और एक भारतीय ईसाई का नाम दिया। वेवल ने एक सिक्ख, दो अनुसूचित जातियों के सदस्य तथा पंजाब के मुख्यमंत्री खिजिर हयात का नाम दिया।

किन्तु, मोहम्मद अली जिन्ना का स्पष्ट वक्तव्य था कि, मुस्लिम लीग के अतिरिक्त मुसलमानों का प्रतिनिधि कोई और नहीं है तथा कौंसिल में सभी मुसलमानों के नाम मुस्लिम लीग देगी। मुस्लिम लीग को किसी और दल के मुस्लिम प्रतिनिधि स्वीकार नहीं है। जिन्ना के साथ वेवल ने चर्चा की, किन्तु जिन्ना नहीं माने उन्होंने कहा कि, मुसलमान प्रतिनिधि तो हमारी ही और से भेजे जायेगें। गवर्नर जनरल ने जिन्ना की बात मानने से इंकार कर दिया। इस प्रकार वार्ता टूट गयी और वेवल ने 14 जुलाई 1945 ई0 को योजना को असफल घोषित करके शिमला सम्मेलन भंग कर दिया।

11.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता

शिमला सम्मेलन की असफलता का प्रमुख कारण जिन्ना की हठधर्मिता तथा उसकी साम्प्रदायिक सोच थी। जिन्ना ने कहा कि, कांग्रेस और वेवल चाहते है कि, मुस्लिम लीग अपने सिद्धांत को छोड़कर आत्म समर्पण कर दे और अपनी मौत मर जाए। जिन्ना ने कहा कि, यदि हम इस योजना को मान लेते है, तो पाकिस्तान का प्रश्न सदा के लए दफन हो जायेगा। जिन्ना अपने रूख पर अत्यधिक अडिग रहे। उन्होंने किसी की नहीं सुनी इसी कारण सम्मेलन विफल हो गया। वस्तुतः मुस्लिम लीग और जिन्ना को सम्मेलन की सफलता और विफलता से कोई लेना देना नहीं था और न ही उन्हें भारत की आजादी से कोई मतलब था उनका एकमात्र उद्देश्य देश का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण करवाना था।

जिन्ना को कौंसिल के दो सदस्यों मौलाना आजाद तथा खिजिर हयात खाँ से शिकायत थी, वह चाहता था कि, मुस्लिम सदस्य सिर्फ मुस्लिम लीग से होगें। मौलाना आजाद ने शिमला सम्मेलन को एक दुर्घटना बताया और कहा कि, पहली बार कोई वार्ता भारत के सम्प्रदायों को विभाजित करने के प्रश्न पर टूटी। मौलाना आजाद ने सम्मेलन की असफलता का ठीकरा जिन्ना के सिर पर फोड़ते हुए कहा कि, चौदह सदस्यों की कार्यकारिणी परिषद् में सात सदस्य मुसलमान होते, वहीं भारत में मुसलमानों की जनसंख्या एक चौथाई ही थी, जबकि उन्हें आधे स्थान मिलने थे। यह कांग्रेस की महान् उदारता तथा मुस्लिम लीग की मूर्खता का परिचायक था।

शिमला सम्मेलन की असफलता में अंग्रेजों की सोची समझी रणनीति का भी हिस्सा था। वेवल की योजना से चर्चिल घृणा करते थे क्योंकि, इससे भारतीयों के हाथों में शक्ति आने वाली थी। चर्चिल को वेवल के प्रस्तावों का औचित्य ही समझ में नहीं आ रहा था, बड़ी मान मुनव्वल के बाद एमरी एवं क्रिप्स के आग्रह पर वह अनिच्छा से सम्मेलन के प्रश्न पर राजी हुआ था, वह भी तब जब एमरी और क्रिप्स ने उसे समझाया कि,

'आखिरकार हम कुछ दे थोड़ी ही रहे है।' इस प्रकार अंग्रेजों की मंशा पवित्र नही थी, वे भारतीयों को आपस में ही उलझाये रखना चाहते थे। उधर जब सम्मेलन चल रहा था, तब वायसराय की कार्यकारिणी का एक सदस्य जिन्ना को सलाह दे रहा था कि, अपनी बात पर डटे रहो। अतः अंग्रेज ही जिन्ना को हवा दे रहे थे। फिर सम्मेलन सफल कैसे होता? उसे तो असफल होना ही था।

11.5.2 शिमला सम्मेलन का मूल्यांकन

गवर्नर जनरल वेवल ने अपनी योजना (वेवल योजना) को कार्य रूप प्रदाय करने के लिए शिमला सम्मेलन बुलाया था। किन्तु, राजनैतिक खिंचाव के कारण सम्मेलन असफल हो गया। गवर्नर जनरल वेवल की योजना वस्तुतः भारत के राजनैतिक दलों को एक टेबल पर लाकर राजनैतिक सहमती बनाना था। ताकि, भारत के राजनैतिक गतिरोध को स्थायी रूप से समाधान करना था। किन्तु, वास्तविकता यह थी कि, स्वयं अंग्रेज भारतीयों को शक्ति हस्तांतरित नहीं करना चाहते थे, वे तो मात्र दिखावा कर रहे थे और भारतीय राजनैतिक दलों के मतभेद उभार रहे थे।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

2. शिमला सम्मेलन किस गवर्नर - जनरल ने कराया था ?
   (क) लिनलिथगों ने (ख) लॉर्ड वेवल ने
   (ग) ऐटली ने (घ) इनमें से कोई नहीं
3. शिमला सम्मेलन कब कराया गया था ?
   (क) 4 जून, 1945 ई0 को (ख) 14 जून, 1945 ई0 को
   (ग) 25 जून, 1945 ई0 को (घ) इनमें से कोई नहीं
3. शिमला सम्मेलन को कब असफल घोषित किया गया था ?
   (क) 4 जुलाई, 1945 ई0 को (ख) 10 जुलाई, 1945 ई0 को
   (ग) 14 जुलाई, 1945 ई0 को (घ) इनमें से कोई नहीं
4. शिमला सम्मेलन को किसने एक दुर्घटना बताया था ?
   (क) मौलाना आजाद ने (ख) पटेल ने
   (ग) पं॰ जवाहर लाल नेहरू ने (घ) जिन्ना ने
5. किसने कहा था कि, मुस्लिम लीग अपने सिद्धांत को छोड़कर आत्म समर्पण कर दे और अपनी मौत मर जाए ?
   ((क) मौलाना आजाद ने (ख) खिजिर हयात खाँ ने
   (ग) जिन्ना ने (घ) इनमें से कोई नहीं

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) शिमला सम्मेलन में जिन्ना की भूमिका।
   (ख) शिमला सम्मेलन और अंग्रेजों की मंशा।

2. **नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:**

(अ) शिमला सम्मेलन का मूल्यांकन कीजिये ?

11.6 सारांश

1945 में भारत का राजनैतिक वातावरण अत्यधिक गर्माया हुआ था। भारत में राजनैतिक और वैधानिक खिंचाव भारतीयों और अंग्रेजी साम्राज्य के बीच बना हुआ था। द्वितीय विश्व युद्ध और उसकी भयानकता ने विश्व युद्ध में भारतीयों का सहयोग लेना आवश्यक बना दिया था और इसी कारण अंग्रेजी साम्राज्य ने 14 जून, 1945 को वेवल योजना प्रस्तुत की। वेवल योजना अब तक के संवैधानिक प्रयासों में सबसे उत्तम थी। निश्चित रूप से पहली बार अंग्रेजों के प्रस्ताव ऐसे थे, जो भारतीयों के हित में अधिक झुके हुए थे। वेवल योजना को कार्य रूप प्रदाय करने के लिए शिमला सम्मेलन बुलाया गया था। किन्तु, भारत के राजनैतिक दलों के आपसी मतभेद और अंग्रेजों की कूटनीति के कारण वेवल योजना और शिमला सम्मेलन असफल हो गया।

11.7 तकनीकी शब्दावली

डोमिनियन स्टेट्स :- ऐसा राज्य जिसमें आंतरिक स्वतंत्रता हो, किन्तु बाह्य परतंत्रता हो।

द्वितीय विश्व युद्ध :- द्वितीय विश्व युद्ध 1939 से 1945 ई० तक चला। इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि मित्र देश तथा जर्मनी, जापान आदि धुरी देश सम्मिलित थे।

वैधानिक:- कानूनी

लॉर्ड वेवल:- लॉर्ड वेवल 1943 - 1947 ई0 तक भारत के गवर्नर - जनरल रहे। लॉर्ड वेवल ने ही शिमला सम्मेलन कराया था

मौलाना आजाद:- प्रख्यात स्वतंत्रता सेनानी मौलाना अबुल कलाम आजाद (1888 - 1958 ई०) कांग्रेस पार्टी के 1940 - 1946 तक अध्यक्ष रहे।

जिन्ना:- बम्बई में जन्मे मोहम्मद अली जिन्ना (1876 - 1948 ई०)मुस्लिम लीग के सबसे बड़े नेता थे। जिन्ना मुस्लिम लीग के 1916, 1920तथा 1934 - 48 ई० तक अध्यक्ष रहे। ये पाकिस्तान के जनक थे।

शिमला:- भारत का प्रसिद्ध पर्यटक शहर, वर्तमान में हिमाचल प्रदेश की राजधानी।

11.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 4.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 11.4 वेवल योजना
2. देखिए 11.4.9 प्रांतीय सरकारें
3. देखिए 11.4 वेवल योजना
4. देखिए 11.4 वेवल योजना
5. देखिए 11.4.7 हाई कमिश्नर की नियुक्ति

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 11.4.2 प्रतिनिधत्व निर्धारण

(ख) देखिए 11.4.9 प्रांतीय सरकारें

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 11.4.10 वेवल योजना का मूल्यांकन

इकाई 4.5 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 11.5 शिमला सम्मेलन

2.देखिए 11.5 शिमला सम्मेलन

3. देखिए 11.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता

4.देखिए 11.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता

5.देखिए 11.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 11.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता

(ख) देखिए 11.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता

2.नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए 11.5.2 शिमला सम्मेलन का मूल्यांकन

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, आर॰ सी॰ - भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, संवैधानिक विकास तथा आधुनिक संविधान का तुल्नात्मक अध्ययन, नई दिल्ली, 1965

2. बसु, डी॰ डी॰ - भारत का संविधान, नागपुर, 2001

3. परांजपे, एन॰ वी॰ - भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, इलाहाबाद, 2003

4. पाण्डेय, जय नारायण - भारत का संविधान, इलाहाबाद, 1996

5. ताराचंद - भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, चतुर्थ खण्ड, नई दिल्ली, 2007

6. त्रिपाठी, जी॰ पी॰ - भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, इलाहाबाद, 2001

11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बिपिन चन्द्र - आधुनिक भारत, नई दिल्ली, 1971

2. फड़िया, बी॰ एल॰ - भारत का राष्ट्रीय आंदोलन तथा सांविधानिक विकास, जयपुर,1991

3. ग्रोवर, बी॰ एल॰ एवं यशपाल - आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1999

4. पाठक, सुशील माधव - भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास (1857 -1947), वाराणसी, 1993

5. राय, सत्या एम॰ (संपा॰) - भारत में उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवाद, नई दिल्ली, 1990

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. वेवल योजना की पृष्ठभूमि और वेवल योजना के प्रमुख प्रावधानों कासविस्तार वर्णन कीजिये ?

प्रश्न 2. शिमला सम्मेलन और उसकी असफलता पर प्रकाश डालिये ?

इकाई बारह

किसान एवं श्रमिक वर्ग

12.1 **प्रस्तावना**

12.2 **उद्देश्य**

12.3 **पुनर्स्थापनात्मक व्यवस्था**

12.4 **परिवर्तनवादी व्यवस्था**

12..5 **महत्वपूर्ण कृषक आन्दोलन**

12.5.**1** **सन्यासी विद्रोह**

12.5.**2** **पागलपंथी विद्रोह**

12.5.**3** **फरायजी विद्रोह**

12.5.**4** **वहाबी आन्दोलन**

12.5.**5** **मोपला आन्दोलन**

12.5.**6** **रामोशी विद्रोह**

12.5.**7** **पाबना आन्दोलन**

12.5.**8** **नील विद्रोह**

12.5.**9** **दिरांग आन्दोलन**

12.6 **20वीं सदी के किसान आन्दोलन**

12.6.**1** **चम्पारण सत्याग्रह (**1917**)**

12.6.**2** **खेडा किसान आन्दोलन (**1918**)**

12.6.**3** **एका आन्दोलन**

12.6.**4** **तेभांगा आन्दोलन**

12.6.**5** **मोपला विद्रोह (**20**वीं सदी)**

12.6.**6** **बारदोली सत्याग्रह**

12.7 **श्रमिक वर्ग (मजदूर)**

12.7.**1** **आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस**

12.7.**2** **इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस**

12.8 **प्रमुख श्रमिक आयोग**

12.8.**1** **प्रथम कारखाना कानून (**1881 **ई0)**

12.8.**2** **द्वितीय कारखाना कानून (**1891 **ई0)**

12.8.3 त्रितीय कारखाना कानून (1911 ई0)

12.8. चतुर्थ कारखाना कानून (1922 ई0)

12.9 सारांश

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची:

12.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.13 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

किसान वर्ग (19वीं-20वीं सदी)

राजनीतिक एवं आर्थिक प्रभुत्व की औपनिवेशिक संरचना ने साम्राज्यवादी एवं भारतीय नागरिकों के विभिन्न घटकों के मध्य निरन्तर संघर्ष को जन्म दिया। भारतीय नागरिकों द्वारा किये गये विद्रोह को आधारभूत कारण शोषण की वह प्रणाली थी जिसके कारण ब्रिटिश उपनिवेशवाद पोषण पा रहा था।

ब्रिटिश सम्राज्यवादी प्रसार के कारण विभिन्न सामाजिक समूह ब्रिटिश शासन के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आए और फिर ब्रिटिश औपनिवेशिक शोषण के विरूद्ध उन्होंने प्रतिक्रिया दिखाई। 19वीं सदी के प्रारम्भ में ब्रिटिश शासन के विरूद्ध होने वाले प्रतिरोध का स्वरूप आद्य राष्ट्रवादी था।

भारत में ब्रिटिश शासनकाल म**sa** कृषक असन्तोष के विभिन्न कारण थे, जिनमें सर्वप्रमुख आर्थिक कारण था। प्रारम्भ में जब ईस्ट इंड़िया कम्पनी भारत आयी तो उसका मुख्य लक्ष्य था, भारत से अधिकाधिक मुनाफा कमाना। बंगाल विजय के पश्चात् उसने स्थानीय धन से अपने निर्यात के लिए सामान खरीदना प्रारम्भ किया। इस समय भू-राजस्व ही आमदनी का मुख्य स्त्रोत था, अतः कम्पनी ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। ब्रिटिश शासको ने

अधिकाधिक भू-राजस्व प्राप्त करने के लिए भूमिकर इकट्ठा करने का अधिकार नीलामी के माध्यम से बेचा। वह चाहे स्थायी बन्दोबस्त हो, रैयतवाड़ी व्यवस्था हो अथवा महालवाड़ी व्यवस्था, किसानों से भूमि उत्पादन का अधिकाधिक वसूल किया गया। जमींदारी क्षेत्रों में रैयतों का शोषण एवं अनुपस्थित भू-स्थायित्व महत्वपूर्ण समस्या हो गयी। रैयतवाड़ी क्षेत्रों में महाजनों की उपस्थिति के कारण कृतिम रूप से जमींदार स्थापित होने लगे। रेलवे तथा यातायात के विकास ने ग्रामीण शोषण को और भी सवल बना दिया।

एक तरफ ब्रिटिश आर्थिक नीतियों की वजह से कृषि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ा और भारतीय कृषि व्यवस्था विनाश के कगार पर पहुंच गयी, वही दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार ने कृषक असन्तोष को नजरअन्दाज कर दिया। ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित कानून तथा न्यायालय भी किसानों के हक में नही थे। ये सरकार और उनके सहयोगियों मसलन भूमिधर, व्यापारियों तथा महाजनों का पक्ष लेते थे। इस प्रकार औपनिवेशिक शोषण से तंग आकर तथा न्याय से निराश होकर किसानों ने विद्रोह का झण्डा बुलन्द किया। ब्रिटिश शासन के खिलाफ प्रारम्भ हुए इन विद्रोहों को विचार एवं अपनाए गए साधनों एवं उद्देश्यों की दृष्टि से दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है जैसे पुनर्संस्थानात्मक तथा परिवर्तनवादी व्यवस्था।

12.2 उद्देश्य

इस ईकाई को पढने के पश्चात आप निम्नलिखित बिन्दुओं को आसानी से समझ सकते है -

- पुनर्स्थापनात्मक व्यवस्था
- परिवर्तनवादी व्यवस्था
- चरणबद्ध कृषक विद्रोह विद्रोह
- कृषक विद्रोह के कारण
- कृषक विद्रोह के क्षेत्र तथा इसका प्रसार
- कृषक विद्रोह के मुख्य नेता
- प्रमुख कृषक विद्रोह जैसे – सन्यासी, पागलपंथी, फरायजी, वहाबी, मोपला, रामोसी, पाबना तथा नील विद्रोह आदि।
- **20**वीं सदी के प्रमुख कृषक विद्रोह जैसे - चम्पारण सत्याग्रह, खेड़ा, एका, बारदोली तथा अन्य।
- श्रमिक आन्दोलन , कारण, क्षेत्र तथा प्रमुख नेता
- प्रमुख श्रमिक आयोग

12.3 पुनर्स्थापनात्मक व्यवस्था

1765- 1857 के मध्य छोटे राजाओं, पुराने राजस्व मध्यस्थों, जमींदारों एवं पोलीगरों के द्वारा अनेक विद्रोह किये गये। इस विद्रोह को सैनिकों एवं किसानों का भी समर्थन प्राप्त हुआ। इनका लक्ष्य ब्रिटिश शक्ति को बाहर खदेडना

तथा पुरानी व्यवस्था की स्थापना करना था। इन्होंने कृषि सम्बन्धों की समस्या पर भी विद्रोह किये। इनमें महत्त्वपूर्ण विद्रोह हैं **1780- 81** में बनारस के राजा चैत सिंह का विद्रोह, **1801- 05** में उत्तरी अर्काट का पोलीगरों का विद्रोह साथ ही श्रावणकोर एवं कोचीन में वेलाथम्पी का विद्रोह। **1857** के विद्रोह को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है क्योंकि यह भी स्वरूप की दृष्टि से पुनर्स्थापनावादी ही था।

12.4 परिवर्तनवादी व्यवस्था

1857 ई0 के पश्चात् कृषक आन्दोलन के स्वरूप परिवर्तन हो गया। अब इन विद्रोहों ने पुनर्रस्थापना नही बल्कि परिवर्तनवादी रूप ले लिया, किन्तु इन विद्रोहों में भी नेतृत्व क्षेत्रीय ही बना रहा तथा इनकी दृष्टि मसीहावादी बनी रही। इन श्रेणियों में **1836- 1854** के मध्य का भोपाल विद्रोह, **1824- 37** के मध्य का पागलपंथी विद्रोह तथा **1837- 57** के मध्य का फरायजी आन्दोलन प्रमुख है।

जब बिद्रोह के चरण का स्वरूप पृथक था, यह स्वतः स्फूर्त होता था तथा इसमें धार्मिक विचारधारा एवं धार्मिक नेतृत्व उपस्थिति था। इन आन्दोलनों में कुछ विशेष कष्टों के निवारण की चेष्टा थी तथा इनका स्वर सुधारवादी था। ये आन्दोलन अपेक्षाकृत शान्त होते थे एवं इसमें बहिष्कार जैसी पद्धति अपनाई जाती थी। ये आन्दोलन तभी उग्र होते थे जब इनकी माँगों को दबाने के लिए बल प्रयोग का सहारा लिया जाता था। जैसे - **1852 ई0** का खानदेश के किसानों का विद्रोह, **1789 ई0** में बिसनपुर के किसानों का विद्रोह, **1809 ई0** में हरियाणा के जाटों का विद्रोह एवं **1921 ई0** का मोपला विद्रोह।

ब्रिटिश शासन काल में चले किसान आन्दोलनों को निम्नांकित चरणों में विभाजित किया जा सकता है -

1. **1857 ई0** तक इसका प्रथम चरण माना जा सकता है एवं इस चरण में जमींदारों, क्षेत्रीय सरदारों अधिकारयक्त जमींदारों आदि के द्वारा नेतृत्व प्रदान किया गया।

2. **1857** के पश्चात् जमींदारों का प्रबल विरोध शान्त हुआ एवं **1870-90** के बीच स्थायी बन्दोबस्त वाले क्षेत्रों में धनी किसानों द्वारा जमींदार विरोधी आन्दोलन हुए, जबकि रैयतवाड़ी क्षेत्रों में महाजनों के विरूद्ध विद्रोह होते रहे। इस चरण में ब्रिटिशों के बिरूद्ध विद्रोह नही हुआ क्योंकि विद्रोह का निशाना तात्कालिक शोषक बने।

3. **1890** से प्रथम विश्वयुद्ध तक कृषक विद्रोह अपेक्षाकृत शान्त ही रहे किन्तु जब **1885 ई0** में रैयतवाड़ी कानून बना तो कृषकों की अपेक्षाएं जागी और वे इन अधिकारों की रक्षा के लिए सजग हुए किन्तु आन्दोंलन के किसी चरण में भी रैयतों ने ब्रिटिश सर्वोच्चता को चुनौती नहीं दी। वस्तुतः बडे पैमाने पर बेदखली के विरूद्ध किसानों का यह स्वतः स्फूर्त एवं भावनात्मक प्रतिरोध था। एवं उनका आक्रोश तात्कलिक शोषकों के विरूद्ध की व्यक्त हुआ जो कि नील उत्पादक, जमींदार, महाजन आदि हो सकते थे। इन विद्रोह के उद्देश्य तात्कालिक थे और जब ये उद्देश्य पूरे हो जाते थे तो ये आन्दोलन स्वयं शान्त पड़ जाते थे। इस समय के आन्दोलनों को आधुनिक विचारधारा का आधार प्राप्त नहीं था, यही वजह है कि ये औपनिवेशशिक व्यवस्था के विरूद्ध वास्तविक चुनौती उपस्थित नहीं कर सकें।

12.5 महत्वपूर्ण कृषक आन्दोलन

12.5.1 सन्यासी विद्रोह

बंगाल में अंग्रेजी राज्य स्थापित होने तथा उसके कारण नयी अर्थव्यवस्था के स्थापित होने से जमींदार कृषक तथा शिल्पियों का व्यवस्था नष्ट हो गया। इनमें से कुछ लोगों ने सन्यासी का रूप धारण कर लिया तथा धार्मिक भिक्षावृत्ति का सहारा लेकर अपना जीवन यापन करने लगे, मूलतः ये लोग कृषक थे। **1770** के दशक में क्लाइव के द्वैध शासन के फलस्वरूप पड़े भीषण आकाल से उत्पन्न संकट के कारण इनका जीवन और दूभर हो गया। अब ये हिन्दु मुस्लिम साधुओं के दल एक जगह से दूसरे जगह टोली बनाकर घूमते तथा मौका पडनें पर धनाढ्य लोगों तथा सरकारी अफसरों के घर को लूट लिया करते थे। किसानों की बढ़ती दिक्कतों, बढ़तें भू-राजस्व और **1770** के बंगाल के अकाल के कारण कई पदच्यूत जमींदार सेवानिवृत्त सैनिक तथा गाँव के गरीब लोग भी इन सन्यासियों और फकीरों के दल में शामिल हो गये। ये बिहार तथा बंगाल में **5-7** हजार लोगों का जत्था बनाकर घुमते थे। तथा आक्रमण की गुरिल्ला तकनीक अपनाते थे।

आरम्भ में ये मात्र धानढ्य व्यक्तियों के खाद्यान्न भण्डारों को लूटते थे परन्तु बाद में सरकारी पदाधिकारियों पर भी आक्रमण करने लगे। मौका पडने पर सरकारी खजाने को भी लूटा करते थे। कभी-कभी लूटा हुआ धन गरीबों में वितरित भी कर देते थे। बोगरा तथा मैमन सिंह जिलों में इन्होंने स्वतन्त्र सरकार बनाई। इस विद्रोह की खासियत रही कि इसमें हिन्दु तथा मुसलमानों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर संघर्ष किया। इस आन्दोंलन के प्रमुख नेताओं में मंजर शाह, मूसा शाह, भवानी पाठक तथा देवी चौधरानी उल्लेखनीय है। बंकिम चन्द्र चटर्जी की पुस्तक आनन्द मठ में इस सन्यासी विद्रोह का सजीव चित्रण हुआ है। लगभग **1800** ई0 तक बंगाल तथा बिहार में अंग्रेजों के साथ सन्यासियों तथा फकीरों का संघर्ष होता रहा।

12.5.2 पागलपंथी विद्रोह

इस विद्रोह का प्रेरक करम शाह था। **1824** में ब्रिटिश सरकार ने जमींदारों से कहा कि वे अपने क्षेत्रों में सड़को के निर्माण करें ताकि वर्मा युद्ध के लिए सेना को सुगमतापूर्वक भेजा जा सके। जमींदारों ने रैयतों से मुफ्त मजदूरी कराकर इन सड़कों का निर्माण करना चाहा जिसका रैयतों ने विरोध किया। युवा किसानों ने टीपू नामक एक फकीर को अपना नेता बनाया जो कि करमशाह पठान का पुत्र था। करमशाह के कुछ हिन्दू-मुस्लिम अनुयायी थे जो स्वंय को पागलपंथी कहते थे। लोगों में यह अफवाह फैल गयी कि अब जमींदारों तथा अंग्रेजों का शासन समाप्त होने वाला है और टीपू का शासन शुरू होने वाला है। ब्रिटिश सेना के वहाँ पहुँचने पर सशस्त्र किसानों ने उसका विरोध किया। इन किसानों का आदेश था कि जमींदारों को राजस्व न दिया जाए। उन्होंने जमींदारो के मकानों पर आक्रमण किया तथा उनके जुल्मों के विरूद्ध अंग्रेजों से मदद माँगी। **1825** के प्रारम्भ में ही घमासान युद्ध हुए परन्तु वर्मा युद्ध के समाप्त होने पर सकड़ निर्माण का कार्य रूक गया और अंग्रेजों ने लगान वसूली पर फिर से विचार करने का वायदा किया फलतः विद्रोह शान्त हो गया। **1827** में टीपू को गिरफ्तार कर लिया गया किन्तु **1833** में जब देखा गया कि वसूली में कोई रियासत नही दी गयी है तो सशस्त्र विद्रोह पुनः भड़क उठा तथा बाद में इस विद्रोह ने

कानूनी रूप ले लिया। रैयतों ने मैमन सिंह जिले में अपना एक कानूनी प्रतिनिधि तथा स्थाई प्रतिनिधि मण्ड़ल नियुक्त कर दिया।

12.5.3 फरायजी विद्रोह

फरायजी एक सम्प्रदाय था जिसकी स्थापना हाजी शरियतुल्ला ने की थी। आरम्भ में फैराजी आन्दोलन अधिक राजस्व निर्धारण तथ बेदखल किये गये किसानों के असन्तोष के कारण आरम्भ हुआ परन्तु आगे दूदू मियाँ के नेतृत्व में इस आन्दोलन ने रेड़िकल धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों की वकालत की। दूदू मियाँ ने किसानों की दयनीय स्थिति को आन्दोलन का मुख्य मुद्दा बनाया। इससे उनके अनुयायियों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। उसने किसानों को अपने अधिकारों के लिए लडने को प्रेरित किया।

उन्होंने घोषणा की कि सरकार को जमीन पर कर लगाने का अधिकार नहीं है। उन्होंने अंग्रेजी द्वारा स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था को बदलने का प्रयास किया। अपने विचारों का प्रचार करने के लिए दूदू मियाँ ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिनिधि नियुक्त किये तथा गाँवों में स्वतन्त्र न्यायालय स्थापित किये जिसका प्रधान बुजुर्ग एवं साफ-सुथरे चरित्र वाले व्यक्ति को बनाया गया। गाँव के लोगों को ब्रिटिश न्यायालय में जाने से रोक दिया गया तथा उन्हें अपने झगड़ों का निपटारा इन स्वतन्त्र न्यायालयों से करवाने को कहा गया। इस आज्ञा के उल्लंघन पर जुर्माने व्यवस्था की गई। जमींदारों के विरूद्ध आन्दोलन करने के मुद्दे पर कोई धार्मिक भेदभाव नही बरता गया। फैराजियों ने सामन्ती उत्पीडन तथा निलहों के अत्याचार से किसानों की रक्षा की। **1857** से पूर्व तक यह आन्दोलन फरीदपुर के अतिरिक्त **24** परगना, नदियाँ आदि तक फैल गया।

फैराजियों की कार्यवाही का देशी जमींदारों, धनी वर्गों, निलहों आदि ने विरोध किया। सरकार पर दबाव डाला गया कि वे फैराजियों के विरूद्ध कार्यवाही करें। सरकार ने भी जमींदारों का साथ देते हुए सेना भेजकर फैराजियों का दमन प्रारम्भ कर दिया तथा दूदू मियाँ को गिरफ्तार कर लिया गया जिससे आन्दोलन धीमा पड़ गया। इस आन्दोलन का महत्व इस बात में है कि इसने पहली बार बंगाल के किसानों की संगठित होकर सामन्ती अत्याचारों का सामना करने के अवसर प्रदान किया। यह आन्दोलन एक प्रकार से निम्न वर्ग तथा बुर्जुवा वर्ग के मध्य संघर्ष बन गया।

12.5.4 वहाबी आन्दोलन

यह आन्दोलन **1830** के दशक से **1860** के दशक तक चलता रहा। इस आन्दोलन के जन्मदाता रायबरेली के सैयद अहमद थे। वे अब्दुल वहाब तथा शाह वलीउल्ला की शिक्षा से प्रभावित थे। यह आन्दोलन पुनरूत्थानवादी था।

इस आन्दोलन की एक मुख्य विशेषता यह थी कि बंगाल में किसानों की समस्या को उठाया तथा उसके समर्थन से व्यापक रूप धारण कर लिया। बंगाल में इस आन्दोलन का नेता टीटू मीर था जो कि स्वयं एक जुलाहा था तथा जमींदार का लठैत रह चुका था। टीटू मीर ने किसानों पर जमींदारों के अत्याचार उनके द्वारा लगाये गए दाढ़ी कर तथा ब्रिटिश प्रभुत्व का प्रतिकर किया। जब नादियाँ के जमींदार कृष्णराय ने लगान की राशि बढ़ा दी तो टीटू मीर ने

उस पर आक्रमण कर दिया। परन्तु अंग्रेजों ने अन्ततः टीटू मीर को मारने में सफलता पाई जिससे यह विद्रोह कमजोर हो गया।

12.5.5 मोपला आन्दोलन

जिस प्रकार बंगाल के किसानों को स्थायी बन्दोबस्त से कठिनाई हुई थी तथा कानून से उन्हें कोई संरक्षण नही मिला था, उसी प्रकार मालबार में भी अंग्रेजों की भू-राजस्व व्यवस्था से किसान असन्तुष्ट थे। ब्रिटिश शासन भू-स्वामियों के अधिकारों पर बल देता था। अतः उसने भू-बन्दोबस्ती के क्रम में वर्ग के हिन्दुओं, नंबूदरी तथा नायर जेन्मियों की शक्ति को पुनः अधिकाधिक अधिकार के साथ स्थापित कर दिया। इनमें से अधिकांश को पहले टीपू ने दक्षिण की ओर खदेड़ दिया था तथा उसकी भूमि मुसलमान कृषक जो मोपल कहलाते थे को आबंटित कर दी थी। ब्रिटिश व्यवस्था के तहत मोपलाओं का सामूहिक रूप से भूमि से बेदखली का एक परिणाम तो यह हुआ कि मुसलमानों में सामुदायिक एक जुटता बढी।

नई व्यवस्था में इन मोपला रैयतों को रेहनदार बना दिया गया। जिससे जमीन के मालिक अपनी इच्छानुसार इनको बेदखल कर सकते थे। मैसूर के राजाओं के शासन काल से पूर्व मालावार में लगान की दर बहुत कम थी और जेनमियों ने काश्तकारों को जमीन का पूरा अधिकार दे रखा था किन्तु अब लगान की दर मनमानें ढंग से निश्चित कर दी गयी थी। काश्तकारों को बेदखल करने का अधिकार जेन्मी को दे दिया गया था। एक अनुमान के अनुसार **1862-1880** के मध्य मालाबार में लगान और बेदखली सम्बन्धी मुकदमों में क्रमशः **244** और **441** प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई थी।

इस शोषण के परिणामस्वरूप काश्तकारों ने जेनमियों के खिलाफ हिंसा प्रारम्भ कर दी जिसकी पराकाष्ठ **1840** में हुई जबकि **1836** और **1840** के मध्य इन पर सोलह **(16)** बार आक्रमण हुए। जिन लोगों ने इस हमले में भाग लिया उनमें से अनेक धार्मिक उन्माद में ग्रस्त थे और उलेमा वर्ग विशेषकर सैयद अली तथा उसके पुत्र सैयद फजल से प्रभावित थे। **1851** के प्रमुख मोपला विद्रोह के पश्चात् सैयद फजल मालाबार में चला गया और अंग्रेजों ने **1854** में अपराधियों के विरूद्ध कठोर कानून बना दिया।

1882- 85 तथा पुनः **1896** में और भी विद्रोह हुए। इस विद्रोह ने जेनमियों की सम्पत्ति पर आक्रमण और उनके मन्दिरों की नष्ट करने का स्वरुप धारण कर लिया परन्तु मोपला असन्तोष की जड़े स्पष्टतः कृषि व्यवस्था में थी।

12.5.6 रामोशी विद्रोह

1822 ई0 में पश्चिम घाट पर इस आन्दोलन की पहली अभिव्यक्ति हुई। इसके नेता चित्तूर सिंह थे। इन्होंने सतारा के आस-पास के क्षेत्रों में विद्रोह किया और क्षेत्रों को लूटा। **1825-26** में पुनः विद्रोह हुआ। **1829** ई0 तक यह क्षेत्र अशान्त रहा। **1879** ई0 में रामोशी के नेता के रूप में बलवन्त फड़के का उदय हुआ। पुलिस से छिपकर मन्दिर में शरण लेने के वक्त लिखी गई अपनी आत्माकथा में उन्होंने गुप्त दल बनाने तथा उसके माध्यम से डकैती कर धन जमा करने, संचार व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करके सशस्त्र विद्रोह कराने तथा हिन्दू राज्य की स्थापना करने की

बात रखी थी। परन्तु इन्हें जल्द ही गिरफ्तार कर लिया गया तथा आजीवन कारावास की सजा दी गयी फिर भी दौलता रामोशी के नेतृत्व में एक दल **1883** तक सक्रिय रहा।

12.**5.7 पाबना आन्दोलन**

19वीं सदी के उत्तरार्ध में बंगाल के पाबना में किसानों ने जमींदारों के शोषण के विरूद्ध विद्रोह किया। यह विद्रोह जितना अधिक जमीदारों के विरूद्ध था उतना अधिक साहूकारों तथा महाजनों के विरूद्ध नही था क्योकि यहाँ भी महाजन प्रायः स्थानीय धनी किसान या जोतेदार होते थे जिनसे मिलने वाले कर्ज की उत्पादन में अपरिहार्य भूमिका होती थी। अपने दोहरे फसल और पटसन के फलते-फूलते व्यापार के कारण पाबना अपेक्षाकृत समृद्ध जनपद था। यहाँ पर 50 प्रतिशत से अधिक काश्तकारों ने **1859** के एक्ट **10** द्वारा दखली अधिकार प्राप्त कर लिया था फिर भी **1793** से **1773** तक के मध्य जमींदारों के लगान में सात गुना वृद्धि हो गयी थी। भू-स्वामियों ने अनेक प्रकार के आबवाब लगाकर, पैमाइश के लिए मनमाने तौर पर छोटे मापों का प्रयोग करके तथा बल प्रयोग के माध्यम से लगान को मनमाना बढाने का अभियान चला रखा था। इन सभी बातों से रैयत को हाल में प्राप्त पट्टे की सुरक्षा पर आघात होता था।

1873 ई**0** में युसुफशाही परगने के किसानों ने एक कृषक संघ बनाया जो मुकदमें लड़ने के लिए धनराशि जुटाता था तथा सभाएं करता था। कभी-कभी ये संघ लगान की अदायगी रोक लेते थे। धीरे-धीरे पाबना के किसानों की प्रेरणा से ढाका, मैमन सिंह, त्रिपुरा, फरीदपुर, राजशाही इलाकों में भी किसानों ने जमीदारों का विरोध प्रारम्भ किया परन्तु यह आन्दोलन अपेक्षाकृत कम हिंसक रहा क्योंकि यह समीपस्थ अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष था। **1873** ई**0** में बंगाल के लेफ्टिनेंट कैंपबेल ने किसान संगठनों को जायज ठहराया। हाँलाकि बंगाल के जमींदारों ने इस आन्दोलन को साम्प्रदायिक रंग देना चाहा। जमींदारों के वचेस्व वाले ब्रिटिश इंण्ड़ियन एसोसिएशन ने इसका कडा विरोध किया और इसके मुख्य पत्र हिन्दू पैट्रियाट ने पाबना आन्दोलन को हिन्दू भू-स्वामियों के विरूद्ध मुसलमान किसानों के साम्प्रदायिक आन्दोलन के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया परन्तु इस आन्दोलन में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों सम्मिलित थे। आन्दोलन के नेता भी दोनों वर्गों से आते थे जैसे ईशान चन्द्र राय सम्भू पाल, खुदी मुल्ला। इसी आन्दोलन के परिणामस्वारूप **1885** का बंगाल काश्तकारी कानून पारित हुआ जिसमें किसानों को राहत पहुँचाने की व्यवस्था थी।

12.**5.8 नील विद्रोह**

मोपला आन्दोलन की अपवाद में रखा जाए तो सबसे अधिक उक्त और विस्तृत किसान आन्दोलन **1859-60** का नील आन्दोलन था। शोषण के खिलाफ किसानों की यह सीधी लड़ाई थी। यह विद्रोह नील उत्पादकों के अत्याचार तथा अमानवीय व्यवहार के कारण प्रारम्भ हुआ। दरअसल नील का प्रयोग रंग बनाने में किया जाता था तथा इसकी यूरोपीय देशों में भारी माँग थी, यह ईस्ट इंण्डिया कम्पनी का प्रमुख व्यापारिक माल था। नील उत्पादन के क्षेत्र में अधिकतर यूरोपीय लोग जुड़े थे उन्होंने रैयतों को इस बात के लिए दबाव डाला कि वे अपने खेत के कुछ अच्छे हिस्सों में अनिवार्य रूप से नील की खेती करें जिससे नील की आपूर्ति सुनिश्चित हो सके परन्तु नील के बागान मालिक इन कृषको को उचित पारिश्रमिक नहीं देते थे। किसानों के शोषण के लिए नील उत्पादक मामूली

सी रकम अग्रिम करार लिखवा कर देते थे। इस करार में धोखे से नील की ऐसी कीमत दर्ज करा दी जाती थी जो बाजार भाव से काफी कम होती थी। इतना ही नहीं किसानों को कम कीमत पर भी पैसा नहीं दिया जाता था और प्रायः उन्हें ठग लिया जाता था। नील उत्पादानों के नुमाइन्दे भी किसानों से नियमित रूप से रिश्वत लेते थे। करार के वक्त जो पैसा किसानों को अग्रिम दिया जाता था अगर किसान उसे वापस भी लौटाना चाहता था तो उसे ऐसे नही करने दिया जाता था। इन बागान मालिकों को विधि का समर्थन भी प्राप्त होता था क्योकि अधिकांश मजिस्ट्रेट या तो यूरोपीय थे अथवा स्वयं नील उत्पादक अथवा स्वयं जमींदार।

आगे नील उत्पादकों ने करार करने के तरीकों को भी छोड़ दिया क्योकि इससे अदालती झंझट हो सकते थे। वे अब किसानों को आतंकित कर अपना काम करने लगे। वे अपने लठैतों द्वारा किसानों के अपहरण कर, उनकी पिटाई कर अथवा उनके परिवार को परेशान करके उन्हें नील उगाने को मजबूर करने लगे। इन सभी बातों से किसानों में भारी असन्तोष व्याप्त हो रहा था। **1859** में कलारोवा के मजिस्ट्रेट हेमचन्द्राकर ने किसानों के पक्ष में निर्णय दे दिया कि यह पुलिस की जिम्मेदारी है कि कोई नील उत्पादक या अन्य कोई व्यक्ति रैयतों के मामले में हस्तक्षेप न करने पाये। चन्द्राकर की इस घोषणा से किसानों में दुर्दशा से मुक्ति का ख्याव जगा। उन्हें लगा कि बरसों से चला आ रहा शोषण बन्द होने का समय आ गया है परन्तु नील उत्पादाकों का रवैया नही बदला। प्रारम्भ में किसानों ने शान्तिपूर्ण ढंग से संघर्ष चलाया, अधिकारियों के पास अर्जियाँ भेजी गयी तथा प्रदर्शन किये गये परन्तु इसमें सफलता नही मिलने पर किसानों ने विद्रोहात्मक रवैया अपना लिया। गाँव-गाँव में किसानों ने स्वयं को संगठित किया। जैसे ही निलहों के आदमी गाँव में आते किसानों के हथियारबन्द दस्ते उन्हें वहाँ से खदेड़ देते। एक किसान दूसरे किसान की जमीन नीलामी में नही खरीदता और उसके विरूद्ध हुए मुकदमें में गवाही भी नहीं देता।

1860 में अपेक्षित सफलता नही मिलते देखकर किसान सशस्त्र संघर्ष पर उतारू हो गए, शुरूआत नदिया जिले के गोविन्दपुर गाँव से हुई। एक नील उत्पादक के दो भूतपूर्व कर्मचारी दिगम्बर और विष्णु विश्वास तथा मालदा के रफीक मंड़ल के नेतृत्व में वहाँ के किसान एकजुट हुए तथा नील की खेती बन्द कर दी। जल्द ही यह विद्रोह अन्य जगहों पर भी फैल गया तथा किसानों ने अग्रिम राशि लेने, करार करने आदि से मना कर दिया। इसके जबाव में नील उत्पादकों ने अपने लठैतों के माध्यम से कार्यवाही की परन्तु किसानों की एकजुटता के आगे उनकी एक ना चली। कई बार तो संघर्ष रोकने या आन्दोलनकारी नेताओं की गिरफ्तार करने गयी पुलिस भी ग्रामीणों ने हमला किया। इस दौरान कई पुलिस चौकियों पर भी हमला किया गया। नील उत्पादकों ने किसानों को धमकी दी कि वे अपने जमींदारों अधिकारों को इस्तेमाल कर विद्रोही किसानों से जमीन छीन लेंगे या उसका लगान बढा देंगे। इसके जबाव में किसानों ने लगान चुकाना ही बन्द कर दिया। अब तक रैयतों ने अधिकारों के लिए कानूनी ढंग से लडना भी सीख लिया था। अपने खिलाफ दायर किये गये मुकदमें को लड़ने के लिए उन्होंने पैसे जुटाए तथा उन्होंने उत्पादकों के खिलाफ मुकदमें भी दायर किये। उत्पादकों के सहायको का सामाजिक बहिष्कार भी प्रारम्भ किया गया।

किसानों के एकजुट प्रतिरोध को नील उत्पादकों के लिए झेलना मुश्किल था। अतः धीरे-धीरे उन्होनें नील कारखाने बन्द करने शुरू कर दिये। **1860** तक बंगाल में नील की खेती बन्द हो गयी। दीनबंधु मित्र ने नील दर्पण में किसानों की इसी विजय गाथा का वर्णन किया है।

नील आन्दोलन की सफलता का सबसे बडा कारण यह रहा कि रैयतों ने पूरे अनुशासन, एकजुटता, संगठन एवं सहयोग के बल पर यह लडाई लडी थी। आन्दोलन के नेतृत्व एवं भागीदारी के सभी स्तरों पर हिन्दू-मुस्लिम एकता अक्षुण्ण रही। इस आन्दोलन को थोडी अच्छी आर्थिक स्थिति वाले रैयतों का भी सहयोग मिला। कुछ मामलो में तो छोटे जमींदारों, महाजनों तथा नील उत्पादाकों के भूतपूर्व कर्मचारियों ने भी आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया। इस आन्दोलन को बंगाल के बुद्धिजीवियों का भी सहयोग मिला। अखबारों में लेख लिखकर, जन सभाऐं आयोजित कर तथा किसानों के समर्थन में ज्ञापन जारी कर बुद्धिजीवियों ने संघर्ष के समर्थन में माहौल बनाया। इसके अलावा मिशनरियों ने भी नील आन्दोलन के समर्थन में सक्रिय भूमिका निभायी। इस आन्दोलन के प्रति सरकारी रवैया भी सन्तुलित रहा और ऐसा कडा रूख नही अपनाया जैसा अन्य विद्रोह के समय देखने को मिलता है।

12.5.9 दिरांग आन्दोलन

यह आन्दोलन असम क्षेत्र में फैला था। इसकी जडे भी औपनिवेशिक शोषण में ही निहित थी। असम प्रान्त अस्थायी बन्दोबस्त वाले रैयतवाडी क्षेत्र में आता था। ऐसे क्षेत्रों में लगान बढाने के ब्रिटिश सरकार के प्रयासों ने कभी-कभी एक अन्य प्रकार के ग्रामीण प्रतिरोध को भडकाया जिसकी विशेषता थी अत्यधिक भतैक्थ, स्थानीय बडे लोगों का नेतृत्व तथा बुद्धिजीवियों का कहीं अधिक स्पष्ट समर्थन असम के कामरूप एवं विरांग क्षेत्रों में **1893-94** में एक नया राजस्व बन्दोबस्त जारी किया गया जिससे लगान की दर में **50** से **70** प्रतिशत तक बढोतरी हो गई।

12.6 20वीं सदी के किसान आन्दोलन

इस काल में भी आन्दोलन के मूल कारण कमोवेश वही बने रहे जो **19**वीं सदी में थे, हाँ इसके स्वरूप में जरूर अन्तर आ गया। अब कृषक आन्दोलन का उद्देश्य भी व्यापक हो गया। **19**वीं सदी के कृषक आन्दोलन का स्वरूप क्षेत्रीय तथा मसीहावादी था। इस समय आन्दोलन का दृष्टिकोण भी संकीर्ण होता था तथा इसका मुख्य निशाना तत्कालीन शोषक वर्ष होते थे। जैसे पांबना के किसानों ने घोषणा की कि वें महारानी के रैयत हैं तथा उन्हीं के बनकर रहना चाहेगें। इसके उद्देश्य भी तत्कालिक होते थे। जब ये उद्देश्य पूरे हो जाते थे तो ये आन्दोलन स्वयमेय शान्त पड़ जाते इन आन्दोलनों को आधुनिक विचारधारा प्राप्त नहीं था यही वजह है कि औपनिवेशिक शासन के समक्ष ये वास्तविक चुनौती प्रस्तुत नहीं कर सके।

परन्तु **20**वीं सदी के कृषक आन्दोलनों का स्वरूप अलग था। इस अवधि के कृषक आन्दोलनों को स्पष्ट राजनीतिक विचारधारा का आधार प्राप्त था। **20**वीं सदी के कृषक आन्दोलनों का राष्ट्रीष्य आन्दोलन से जुडाव था। कृषक आन्दोलन पर बुर्जुआवादी प्रभाव, विभिन्न क्षेत्रों में किसान सभाओं का गठन होना तथा उनमें किसान

नेताओं के साथ राष्ट्रीय नेताओं का भाग लेना इसका उदाहरण है। किसान सभा के नेता भी सक्रिय रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेते थे।

12.6.1 चम्पारण सत्याग्रह (1917)

20वीं सदी के आरम्भिक दशकों में चम्पारण में किसान आन्दोलन हुआ जिसकी गूँज पूरे भारत में हुई। इस आन्दोलन का महत्त्व इसलिए भी ज्यादा है कि यहीं से महात्मा गाँधी का राजनीति में सक्रिय रूप में प्रवेश हुआ तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के मुख्य अस्त्र सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग यहीं पर हुआ।

उत्तर बिहार में नेपाल की सीमा पर स्थित चम्पारण में बहुत दिनों से नील की खेती होती थी। इस क्षेत्र में अंग्रेजी बगान मालिको को रामनगर तथा बेतिया राज में जमीन की ठेकेदारी दी गई थी। इन लोगों ने इस क्षेत्र में कृषि की तिन कठिया पद्धति विकसित कर ली थी जिसके अनुसार प्रत्येक किसान को अपनी खेती योग्य जमीन के **15** प्रतिशत भाग में नील की अनिवार्य खेती करनी होती थी। इसके अलावा किसान अपना नील बाहर नहीं बेच सकते थे, उन्हें बाजार से कम मूल्य पर बागान मालिक को ही नील बेचना पड़ता था, इससे किसानों का आर्थिक शोषण होता था। **1900** ई0 के पश्चात जब यूरोपीय देशों में नील की माँग कम होने लगी तथा इसका मूल्य घटने लगा तब भी नील उत्पादकों ने इसकी क्षतिपूर्ति किसानों से ही करनी चाही, उन पर अनेक प्रकार के नए कर लगा दिए गए। अगर कोई किसान नील की खेती से मुक्त होना चाहता था तो उसके लिए आवश्यक था कि वह बागान मालिक को एक बडी राशि तवान के रूप में दें। किसानों से बेगार भी लिया जाता था तथा उन्हें उन्य शारीरिक कष्ट भी भोगना पडता था। वस्तुतः यहाँ के किसानों की स्थिति बंगाल के किसानों से भी बदतर थी।

निलहों के अत्याचार के विरूद्ध किसान समय-समय पर विरोध प्रकट करते रहते थे। **1905-1908** के मध्य मोतीहारी एवं बेतिया के निकटवर्ती इलाकों में किसानों ने पहली बार व्यापक तौर पर आन्दोलन का सहारा लिया जिसमें हिंसा भी हुआ परन्तु सरकार तथा निलहों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

1916 में चम्पारण के अपेक्षाकृत सम्पन्न किसान राजकुमार शुक्ल ने गाँधी जी की सत्याग्राह पद्धति से प्रभावित होकर उनसे स्वयं चम्पारण आने का अनुरोध किया। अन्ततः गाँधी जी **1917** के कलकत्ता अधिवेशन के पश्चात स्वयं चम्पारण आए। राजेन्द्र प्रसाद, ब्रज किशोर आचार्य कृपलानी आदि कांग्रेसी नेताओं के साथ मिलकर उन्होंने किसानों के शिकायत की जाँच की जो प्रायः सत्य ही पायी गयी। बडी संख्या में किसान अपने अत्याचार की शिकायत लेकर उनके पास आए। गाँधी जी के कार्य का स्थानीय प्रशासन का विरोध किया, स्थानीय प्रशासन ने तुरन्त बाद गाँधी जी को उस स्थान से निकल जाने की सलाह दी। बेतिया प्रशासन ने तो उन्हें गिरफ्तार भी कर लिया परन्तु गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि मैं तब तक यह क्षेत्र नहीं छोडूँगा जब तक किसानों की शिकायत पूरी न हो जाए। अन्ततः बिहार के गवर्नर ने किसानों की शिकायतों की जाँच करने के लिए एक आयोग बनाया जिसमें सदस्य के रूप में गाँधी जी को भी शामिल किया गया। समिति ने किसानों की शिकायतों को उचित बताया तथा उसकी सिफारिशों के आधार पर चम्पारण कृषि अधिनियम पारित किया गया। इसके अनुसार तीन कठिया प्रणाली समाप्त कर दी गयी। गाँधी जी ने बागान मालिकों को इस बात के लिए भी बाध्य किया कि वह किसानों को उस

राशि का भी भुगतान करें जो कि उन्होंने अवैध वसूली से प्राप्त किये हैं। अन्ततः बागान मालिक उस राशि का **25** प्रतिशत वापिस करने को तैयार हो गए।

12.6.2 खेडा किसान आन्दोलन (1918)

यह आन्दोलन **1918** में गुजरात राज्य के खेड़ा नामक स्थान में चलाया गया। वस्तुतः खेडा जिले के छोटे पाटीदार **1899** के बाद से ही विभिन्न महामारियों तथा अकालों से जूझ रहे थे। **1917-18** में इनकी फसल खराब हो गई थी तथा साथ ही मिट्टी के तेल, लोहे के सामान, कपड़े तथा नमक की कीमतें बढ़ गई थी, इसकी वजह से ये छोटे पाटीदार मालगुजारी देने में असमर्थ थे परन्तु सरकार ऐसा मानने को तैयार नहीं थी। भूमिकर नियमों के यदि किसी वर्ष फसल साधारण से **25**प्रतिशत कम हो तो वैसी स्थिति में किसानों को भूमिकर में पूरी छूट मिलनी थी परन्तु बम्बई सरकार ऐसा मानने को तैयार नहीं थी कि उपज कम हुई थी। नवम्बर, **1917** में कपड़गंज तालूके के मोहन लाल पांड्य ने खड़ाव फसल के कारण मालगुजारी की नाअदायगी का आन्दोलन प्रारम्भ किया, आगे गाँधी जी भी इस आन्दोलन से जुड़ गए। उन्होने तथा विट्ठल भाई पटेल ने पूरी जाँच पड़ताल के पश्चात् निष्कर्ष निकाल कि किसानों की माँग जायज है तथा राजस्व संहिता के अनुसार पूरा राजस्व माफ किया जाना चाहिए।

परन्तु जब सरकार पर अपील एवं याचिकाओं का असर नही पड़ा तो गाँधी जी ने किसानों को इस हेतु शपथ दिलाई कि वे किसी भी कीमत पर तब तक लगान की अदायगी नहीं करेंगे जब तक सरकार उनकी माँग नही मान लेती। वे अपने सहयोगियों के साथ गाँव-गाँव का दौरा करते तथा लोगों के मध्य जागृति फैलाते। उन्होंने यह भी प्रस्ताव रखा कि अगर सरकार गरीब किसानों का लगान माफ कर देती है तो जो लोग स्वेच्छा से लगान दे सकते हैं वे पूरा लगान चुका देंगे। आगे सरकार ने ऐसा ही आदेश दिया। इसके पश्चात् यह आन्दोलन वापस ले लिया गया।

12.6.3 एका आन्दोलन

एका आन्दोलन जमींदारों के शोषण के खिलाफ हरदोंई, बहराइच तथा सीतापुर आदि क्षेत्रों में चलाया गया। इस आन्दोलन में किसान गंगाजल की शपथ लेकर संकल्प लेते कि वे समय पर ही तथा उचित लगान देंगे तथा बेदखली को स्वीकार नही करेंगे। इसके अलावा वें जबरन मजदूरी नहीं करने, अपराधियों की मदद नहीं करने तथा पंचायतों के फैसले को मानने का भी संकल्प लेते थे।

इस आन्दोलन का नेतृत्व पिछड़ी जाति के मदारी पासी जैसे नेताओं के हाथों में था। मदारी पासी के नेतृत्व की खास बात थी कि वे काँग्रेस तथा खिलाफत नेताओं अनुशासित तथा अहिंसक सिद्धान्तों के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध नहीं थे। इस वजह से यह आन्दोलन पूरी तरह से राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा के साथ कदमताल नहीं कर सका। यह आन्दोलन पहले के किसान आन्दोलन से इस मायने में भिन्न था क्योकि इसके साथ छोटे-मोटे जमींदारों भी शामिल थे। ये ऐसे जमींदार थे जो वड़े हुए लगान के बोझ से परेशान एवं सरकार से नाराज थे। लेकिन सरकार ने दमन के बल पर मार्च, **1922** तक आत-आते इस आन्दोलन को खत्म कर दिया तथा कृषकों को राहत के लिए **1926** में आगरा काश्तकारी अधिनियम तथा **1939** में एक काश्तकारी अधिनियम पारित किया।

20वीं सदी के किसान आन्दोलन की मुख्य विशेषता थी किसानों की समस्या रखने के लिए विभिन्न सभाओं का गठन होना। इसी क्रम में **1936** में अखिल भारतीय किसान सभा का गठन हुआ। इसकी पहली बैठक लखनऊ में हुई जिसकी अध्यक्षता स्वामी सहजानन्द ने की। सितम्बर का दिन किसान दिवस घोषित किया गया। इस किसान सभा ने किसान घोषणा-पत्र जारी किया जिसमें आर्थिक शोषण से किसानों की मुक्ति की बात की गई। किसान सभा ने जमींदारी प्रथा की समाप्ति की भी माँग रखी।

12.**6.4 तेभांगा आन्दोलन**

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का सबसे व्यापक खेतिहर आन्दोलन तेभांगा आन्दोलन था जो बंगाल के **19** जिलों में फैला तथा **60** लाख किसान इसके सहभागी बने। संघर्ष का सूत्रपात उस बटाईदारी व्यवस्था से हुआ जो बंगाल के अधिकांश हिस्सों में प्रचलित थी। **1946** में उत्तराद्धि में बंगाल में बटाईदारों ने ऐलान करना शुरू कर दिया कि वे अब जोतेदारों यानि भू-स्वामियों को उपज का आधा हिस्सा नहीं बल्कि एक तिहाई हिस्सा देंगे और हिस्सा बंटने तक उसके अपने खलिहानों में रहेगी। बंटाईदारों को ऐसी माँग रखने की प्रेरणा फ्लाउड़ कमीशन की रिर्पोट से मिली थी**,** जिसमें आधे की जगह एक तिहाई भाग लेने की सिफारिश सरकार से की गई थी। तेभागा आन्दोलन का नेतृत्व बंगाल प्रान्तीय सभा कर रही थी। आन्दोलन शीघ्र ही जोतेदारों तथा बटाईदारों के मध्य हिंसक संघर्ष में बदल गयी। आन्दोलन को और तब मिला जब सुहरावर्दी की मुस्लिम लीग मन्त्रिमण्डल ने **22** जनवरी **1947** को कलकत्ता गजट में बंगाल बटाईदार अस्थाई नियमन विधेयक पारित किया।

यह एहसास होते ही कि तेभांगा की उनकी माँग गैर-कानूनी नहीं हैं**,** उन गाँवों के किसान भी इस संघर्ष में शामिल हो गये जहाँ अब तक इस आन्दोलन की आहट तक नहीं पहुँची थी। बहुत सी गजहों पर किसान ने जमींदारों के खलिहानों में रखा अनाज अपने खभारों तक ले जाने की कोशिश की जिसके दौरान काफी हिंसा हुई। आन्दोलन जब उग्र होने लगा तो जोतेदारों ने सरकार से अपील की और पुलिस किसानों का दमन करने पर उतारू हो गयी। कई जगाहों पर हिंसक संघर्ष हुए। यह सब तब रो रहा था जब नोआखाती पर भंयकर सम्प्रादायिक दंगे हो रहे थे। इस आन्दोलन में मुस्लिम किसानों के साथ महिलाओं की भी व्यापक भागीदारी रही। सरकारी दमन**,** काँग्रेस तथा लीग की उदासीनता तथा किराए पर जमीन उठाने वाले बंगाली मध्यम वर्ग के कारण तथा मार्च**, 1947** के अन्त में कलकत्ता में दुबारा दंगों की शुरूआत तथा इसके परिणाम ने आन्दोलन को स्थागित करने पर मजबूर कर दिया।

12.**6.5 मोपला विद्रोह (20वीं सदी)**

अगस्त **1921** में मालाबार तट पर मोपला किसानों ने एक बार पुनः विद्रोह कर दिया। मालाबार जिले के इन मोपलाओं का विद्रोह कई अन्य किसान संघर्षों के मुकाबले कही अधिक व्यापक तथा जुझारू था। इसकी समस्या भी देश के अन्य किसानों जैसी ही थी। जमींदारों जब चाहते उन्हें बेदखल कर देते**,** मनमाना लगान बसूलते तथा तरह-तरह के अत्याचार करते। यद्यपि **19**वीं सदी में भी मोपलाओं ने इन्हीं कारणों से विद्रोह किया था परन्तु **1921** के विद्रोह का स्वरूप थोड़ा भिन्न था।

माना जाता है कि **1920** में मंजेरी में मालाबार जिला काँग्रेस के सम्मेलन में जहाँ खिलाफत आन्दोलन का समर्थन किया गया वहीं किसानों की वाजिब माँगों का समर्थन करते हुए एक ऐसा कानून बनाने की माँग की गई जो

जमीदार काश्तकार सम्बन्धों को तय करें। इसके आलोक में कोझीकोड़ में काश्तकारों का एक संगठन बनाया गया। इसके फौरन बाद जिले के अन्य भागों में भी ऐसे ही संगठन का निर्माण हूआ। ये संगठन काश्ताकरों की बैठकों को आयोजित करते जिनमें काश्तकारों की वाजिब माँगें उठाई जाती थी। इधर खिलाफत आन्दोलन ने भी जोर पकड़ लिया था।

खिलाफत तथा काश्तकारों के आन्दोलन के आगे बढ़ने से औपनिवेशिक सरकार घबरा गई क्योंकि गाँधी जी, शौकत अली तथा मौलाना आजाद जैसे नेताओं ने इन क्षेत्रों का दौरा कर आन्दोलन का समर्थन किया। **15** फरवरी **1921** को सरकार ने निषेधाज्ञा लागू कर सभी प्रकार की बैठकों पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा सभी महत्वपूर्ण नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। सरकार के इस कदम का सबसे बडा परिणाम हुआ कि आन्दोलन का नेतृत्व स्थानीय मोपला नेताओं के हाथों में चला गया।

सरकारी दमन से क्रुद्ध होकर तथा प्रथम विश्व युद्ध में आंग्रेजों की हार की अफवाह से प्रेरित होकर मोपला काश्तकारों ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। सरकारी आदेश की अवहेलना की जाने लगी। एरनाड़ तालुके के मजिस्ट्रेट ने एक जमींदार के उकसाने पर जब बिना वारन्ट के खिलाफत आन्दोलन के एक नेता को गिरफ्तार करना चाहा तो मोपलाओं ने इसका विरोध किया। इससे मजिस्ट्रेट ने और सख़्त रूख अपनाया तथा सेना एवं पुलिस के जवानों को लेकर अली मुसलियार को गिरफ्तार करने के लिए निरूरागंड़ी मस्जिद पर छापा मारा। अली मुसलियार के नही मिलने पर खिलाफत आन्दोलन के तीन अन्य नेता को गिरफ्तार कर लिया गया। इस घटना के पश्चात् अफवाह फैल गयी की अंग्रेजी सेना ने पवित्र मस्जिद का नष्ट कर दिया है। बहुत से मोपला एकत्रित हो गए परन्तु पुलिस के द्वारा इन पर गोलियाँ चला देने से ये लोग हिंसक विद्रोह पर उतारू हो गये। सरकारी कार्यालयों को तहस-नहस कर दिया गया, दस्तावेज जला दिये गये, खजाने को लूट लिया गया। इस प्रकार विद्रोह की आग पूरे एरनाड़ में फैल गयी।

पूरा विद्रोह दो चरणों में चला। प्रथम चरण में विद्रोहियों ने बदनाम जमींदारों, विदेशी बागान मालिकों तथा सरकारी प्रतिष्ठानों को निशाना बनाया। उदार जमींदारों तथा गरीब हिन्दुओं को छोड़ दिया गया। विद्रोही गाँव-गाँव घूमते तथा वैसे जमींदारों को लूटते तथा घरों में आग लगाते। कुछ विद्रोही नेता जैसे कुनहमद हाजी इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे कि हिन्दुओं को न सताया जाए। लेकिन आन्दोलन के दूसरे चरण में हिन्दू विरोधी भावना भी देखने को मिली। दूसरे चरण में सरकार ने माशील लां की घोषणा की तथा हिन्दुओं को प्रशासन का साथ देने को कहा। इसका परिणाम हुआ कि मोपलाओं में पहले से ही सुलगती हिन्दू विरोधी भावना भड़क उठी। जैसे-जैसे सत्ता का दमन बढ़ता गया हिन्दुओं पर हमला, उनकी हत्या तथा जबरन धर्म परिवर्तन की घटना भी आगे बढने लगी। मोपला आन्दोलन के साम्प्रादायिक होने से राष्ट्रीय काँग्रेस ने इससे अपना समर्थन वापस ले लिया जिसका फायदा उठाते हुए **1921** के अन्त तक मोपलाओं के विद्रोह का सरकार ने भारी दमन कर उसे शान्त कर दिया।

12.**6.6 बारदोली सत्याग्रह**

यह सत्यग्रह सूरत ज़िले के बारदोली तालूके में किसानों द्वारा संगठित किया गया। इस आन्दोलन को कल्याण जी तथा कुंवर जी मेहता ने संगठित किया। **1927** में कपास की गिरती हुई कीमतों के बावजूद बम्बई के गवर्नर ने यहाँ

के मालगुजारी में **30** प्रतिशत वृद्धि की घोषणा कर दी थी। इस मुद्दे पर काँग्रेस के नेताओं ने विरोध करने का निश्चय किया तथा इस मामले की जाँच के लिए बारदोली जाँच समिति का गठन किया गया जिसने अपनी जाँच में लगान बढ़ोतरी को अनुचित बताया। इसके पश्चात् अखबारों में लगान बढ़ोतरी के खिलाफ मुहिम छेड़ दी गयी। संवैधानिक संघर्ष में आस्था रखने वाले क्षेत्रीय नेताओं ने जिसमें विधान परिषद के सदस्य भी शामिल थे**,** ने इस मुद्दे को जोरदार ढंग से उठाया। खेदूत मंड़ल के माध्यम से किसानों की बैठके आयोजित की गयी तथा जिले के कलक्टर को याचिका भेजने की सलाह दी। जुलाई **1927** में सरकार ने **30** प्रतिशत लगान वृद्धि को घटाकर **21-.97** प्रतिशत कर दिया। लेकिन यह रियायत मामूली थी तथा इतनी देर से घोषित की गई थी कि इससे कोई भी सन्तुष्ट नही हुआ।

अन्ततः जनवरी **1928** के पश्चात् वल्लभ भाई पटेल ने इस आन्दोलन का नेतृत्व सम्भाल लिया। प्रारम्भ में उन्होंने पत्र लिखकर सरकार से माँग की कि बढ़े हुए लगान को वापस ले लिया जाए अन्यथा किसान लगान नहीं देंगे**,** परन्तु सरकार का जबाव अत्यन्त ठण्ड़ा रहा। अन्ततः बारदोली तालूके में किसानों की एक बैठक हुई तथा प्रस्ताव पारित कर लगान की अदायगी तब तक न करने का निर्णय लिया गया जब तक कि सरकार किसी निष्पक्ष ट्रिब्यूनल का गठन नहीं करती अथवा पहले से ही दिये जा रहे लगान को पूरी अदायगी के रूप में स्वीकार नहीं करती। संघर्ष के लिए जागरूकता पैदा करने का काम मुख्य रूप से बैठकों**,** भाषणों**,** पत्रों के माध्यम से तथा घर-घर जाकर किया गया। आन्दोलन के नेताओं द्वारा उन लोगों के सामाजिक बहिष्कार का आह्वान किया गया जो चुपके से लगान भरने की तैयारी कर रहे थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जाति और ग्राम पंचायतों का भरपूर प्रयोग किया गया। सरकारी अधिकारियों के खिलाफ सामाजिक बहिष्कार के अस्त्र का पूरी तरह प्रयोग किया गया। उन्हें खाद्य सामग्री तथा अन्य जरूरत की वस्तुओं से महरूम किया गया।

बारदोली सत्याग्रह शीघ्र ही एक राष्ट्रीय मुद्दा बन गया। अहमदाबाद के कामगारों ने एक-एक आना चन्दा करके लगभग **1300** रूपये इस आन्दोलन को भेजे। देश का जनमत लगातार इस आन्दोलन के पक्ष में बन रहा था। बम्बई प्रेसीड़ेसी के कई अन्य हिस्सों में भी किसान अपने लगान के पुनर्निधारण पर बल देने लगे। बम्बई के कपड़ा मिलो के मजदूर हड़ताल पर थे तथा सरकार का ड़र था कि पटेल तथा बम्बई के कम्यूनिस्ट नेता मिलकर रेल हड़ताल न करा दे**,** इससे सेना तथा उसका रसद बम्बई नहीं पहुँच पाता। अगस्त **1928** में स्वयं गाँधी जी भी बारदोली पहुंच गये**,** अब सरकार के पास झुकने के अलावा कोई चारा नहीं था।

अन्ततः एक न्यायिक अधिकारी ब्रमफील्ड तथा एक राजस्व अधिकारी मैक्सवेल ने सारे मामले की जाँच की तथा निष्कर्ष निकाला कि **30** लगान बढ़ोतरी गलत थी तथा इसे घटा दिया गया।

12.**7 श्रमिक वर्ग (मजदूर)**

श्रमिक वर्ग भारतीय इतिहास के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण पहलू है। श्रमिक प्रायः अनपढ़ होते थे। यही कारण है कि इन्हें अपने सुधार हेतु प्राथमिक कदमों पर अधिक ज्ञान नहीं हो सकी। जबकि **19**वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ही भारत में आधुनिक मजदूर (श्रमिक) वर्ग का उदय हो गया था। टे*ड यूनियन श्रमिकों का एक ऐसा संघ आया जिसका गठन मिलों और कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों की अवस्था एवं स्थिति की सुधार करने के उद्देश्य

से किया गया। यूनियनवाद श्रमिक संघ क्रमिक विचारधारा पर केन्द्रित था। अतः पहले टे*ड यूनियन का विचार नहीं आया। बुद्धिजीवियों के प्रयास से ट्रेड यूनियन के गठन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

1877 ई0 में अपने नियोजकों के विरूद्ध हड़ताल के रूप में मजदूरों की कार्रवाई का पहला उदाहरण नागपुर एम्प्रेस मिल में हड़ताल के रूप में मिलता है। इसका कारण मजदूरी की दर को लेकर था। एन0एम0 लोखंडी ने **1890** ई0 में बाम्बे मिल हैन्ड्स एसोसिऐशन की स्थापना की जिसे प्रायः भारत में गठित प्रथम मजदूर संगठन कहा जाता है। यद्यपि यह ट्रेड यूनियन नहीं था। **1897** ई0 में कोष स्थायी सदस्यता तथा स्पष्ट नियमों के साथ पहली बार एक मजदूर संगठन अमलगमेटेड सोसाइटी ऑफ रेलवे सर्वेण्ट्स ऑफ इण्डिया एण्ड बर्मा का गठन हुआ। मजदूर वर्ग के किसी तबके की पहली संगठित हड़ताल ब्रिटिश स्वामित्व और प्रबन्ध में चलने वाली रेलों में हुई। जिसका नाम ग्रेट इण्डियन पेनन्सुला रेलवे था। यह हड़ताल **1899** ई0 में मजदूरी काम के घण्टों तथा अन्य सेवा शर्तो में सुधार के कारण हुई थी। लगभग सभी राष्ट्रवादी अखबारों ने खुलकर इस हड़ताल का समर्थन किया। **1905** ई0 में कलकत्ता की प्रिंटर्स यूनियन की स्थापना हुई जबकि **1907** ई0 में बम्बई की पोस्टल यूनियन की स्थापना हुई। **1908** ई0 में तिलक की गिरफ्तारी के विरोध में बम्बई की कपडा मिलों ने हड़ताल किया। यह मजदूरों की पहली राजनीतिक हड़ताल थी।

प्रथम विश्व युद्ध एवं उसी के दौरान रूस की समाजवादी क्रान्ति ने मिलकर भारत के मजदूर वर्ग एवं उनके आन्दोलन में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया। प्रथम विश्व युद्ध का परिणाम यह हुआ कि भारत के कल-कारखानों का उत्पादन बढ़ गया और औद्योगिक प्रगति हुई। मिल मालिकों ने युद्ध के दौरान अत्याधिक लाभ कमाया किन्तु मजदूरों का वास्तविक वेतन बढ़ने के बजाय औसतन कम हो गया। नियमित सदस्यता और शुल्क के साथ पहला व्यवस्थित श्रमिक संघ 'मद्रास श्रमिक संघ था जिसकी स्थापना वी0पी0 वाडिया ने **1918** ई0 में मद्रास में की थी। यह कपड़ा उद्योग से सम्बन्धित था। यही भारत का पहला वास्तविक टे*ड यूनियन माना जाता है। गाँधी जी द्वारा **1918** ई0 में 'अहमदाबाद टेक्सटाइल लेबर एसोसिऐशन' की स्थापना की गई। यह उस समय की सबसे बड़ी ट्रेड यूनियन थी। यहीं गाँधी जी ने ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त दिया। इसमें उन्होंने बताया कि पूँजीपति, मजदूरो के हितों की रक्षा करने वाला ट्रस्टी होता है। आचार्य जे0बी0 कृपलानी ने स्पष्ट किया है कि ट्रस्टीशिप का अर्थ ही यह है कि पूँजीपति मालिक नहीं है। इसका मालिक वह है जिसके हितों की रक्षा के लिए उसे जिम्मेदारी सौंपी गई है अर्थात् वास्तविक मालिक मजदूर है। मजदूर संघ आन्दोलन की सबसे महत्वपूर्ण घटना 'आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना है।

12.7.1 आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस

इसकी स्थापना मुम्बई में **1920** ई0 में हुई थी। इसके मुख्य सस्थापक एन0एम0 जोशी थे जबकि इसके अध्यक्ष लाला लाजपत राय, उपाध्यक्ष जोसेफ बैप्टिस्ट तथा महामंत्री दीवान चमनलाल थे। इसका जन्म **107** टे*ड यूनियनों के मिलने से हुआ। इसकी स्थापना का मूल कारण **1919** ई0 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन' की स्थापना था। अतः भारत में भी श्रमिक संगठनों ने आपस में संगठित होने का फैसला किया। एन0एम0 जोशी आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में भेजे गए।

इस यूनियन का प्रथम विभाजन **1929** ई**0** में नागपुर के अधिवेशन में हुआ जहाँ जवाहर लाल नेहरू अध्यक्ष बनें। इस विभाजन का मूल कारण साम्यवादियों एवं सुधारवादियों के बीच मदभेद था। इस अधिवेशन में नेहरू रिपोर्ट की आलोचना भी की गई। अतः दक्षिणपंथी इससे अलग हो गए और उन्होंने एन**0**एम**0** जोशी और वी**0**वी**0** गिरी के नेतृत्व में इण्डियन ट्रेड़ यूनियन फेडरेशन' का गठन किया।आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' में दूसरा विभाजन **1931** ई**0** में हुआ जब रणदिबे और देश पाण्डे ने इस वर्ष रेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस' का गठन किया। **1934** ई**0** में आल इण्डिया टे*ड यूनियन कांग्रेस' और रेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस' आपस में मिल गये। **1938** ई**0** में इसमें 'इण्डियन ट्रेड़ यूनियन फेडरेशन' भी मिल गई। इस प्रकार **1938** ई**0** में इनका पहला संयुक्त अधिवेशन नागपुर में हुआ।

1922 ई**0** के बाद मजदूर वर्ग के आन्दोलन में शिथिलता आई लेकिन वामपंथ के आविर्भाव के कारण **1925** ई**0** के बाद मजदूर वर्ग की गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला। विभिन्न प्रान्तों में दलों ने किसान कामगार पार्टियों का संगठित करना प्रारम्भ किया। **1925** ई**0** में सर्वप्रथम कलकत्ता (कोलकाता) ने प्रान्तीय स्तर पर मजदूर किसान पार्टी बनी। सभी प्रान्तीय दलों ने मिलकर **1928** ई**0** में अखिल भारतीय मजदूर एवं किसान पार्टी का गठन किया जिसका प्रथम अधिवेशन सोहनलाल जोशी की अध्यक्षता में कलकत्ता में हुआ। **1928** ई**0** में बम्बई (मुम्बई) कपडा मिल मजदूरों ने सबसे बडी हड़ताल की यह छः माह तक चली तथा इसमें डेढ़ लाख लोगों ने भाग लिया।

12.7.2 इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस

द्वितीय विश्व युद्ध के दोरान मजदूर गतिविधियाँ कुछ हद तक रूक सी गई लेकिन **1945** ई**0** के बाद इनके गतिविधियाँ पुनः तेज हो गई। कांग्रेस राष्ट्रवादियों ने **1947** ई**0** में 'इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस' की स्थापना की। जिसके सस्थापक सदस्य बल्लभ भाई पटेल**,** वी**0**वी**0** गिरि आदि थे। जबकि इसके प्रथम अध्यक्ष बल्लभ भाई पटेल चुने गए।

ट्रेड यूनियन की गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए अंग्रेजी सरकार ने दो प्रमुख अधिनियम पारित किये -

1. ट्रेड यूनियन अधिनियम - इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताऐं निम्नलिखित थी।

- मजदूरों का हड़ताल करने की कानूनी मान्यता मिल गई।
- मजदूरों को राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

2. ट्रेड डिस्प्यूट अधिनियम - इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताऐं निम्नलिखित थी।

- दूसरों के समर्थन में की जाने वाली हड़तालों पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये।
- अति आवश्यक सेवाओं तथा बिजली पानी रेलवे आदि में हड़ताल करने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

12.8 प्रमुख श्रमिक आयोग

1875 ई0 में भारतीय श्रम पर प्रथम आयोग का गठन हुआ जो लंकाशायर के उद्योगपतियों के माँग पर बनाया गया इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय कारखानों में श्रमिकों के काम करने के परिस्थितियों का अध्ययन करना था। इसके तहत निम्नलिखित कारखाना कानून बने।

12.8.1 प्रथम कारखाना कानून (1881 ई0)

यह कानून बाल श्रम से सम्बन्धित था इसके निम्नलिखित प्रावधान थे।

- सात वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों में नहीं लगाया जा सकता।
- बारह वर्ष से कम आयु के बच्चों के काम करने के घण्टों को सीमित किया गया।

12.8.2 द्वितीय कारखाना कानून (1891 ई0)

यह स्त्रियों की स्थिति में सुधार से सम्बन्धित था। जिसमें डेढ़ घण्टे के मध्यावकाश एवं साप्ताहिक अवकाश की व्यवस्था की गई।

12.8.3 त्रितीय कारखाना कानून (1911 ई0)

यह औद्योगिक श्रमिकों के सुरक्षा तथा स्वस्थ्य से सम्बन्धित था।

12.8.4 चतुर्थ कारखाना कानून (1922 ई0)

यह कानून केवल फैक्ट्रियों पर लागू होता था।

12.9 सारांश

इस अध्ययन से यह पता चलता है कि **19**वीं-**20**वीं सदी में ब्रिटिश एवं जमींदारों के द्वारा किसानों पर भारी मात्रा में कर लगाये गये यहाँ तक कि फसल नष्ट होने तथा अकाल की स्थिति में भी करों की प्रतिशतता में कोई कमी नहीं की गयी साथ की कर न देने की स्थिति में किसानों को यातानाएं दी गयी यहाँ तक कि उनके घर की महिलाओं को भी नही छोड़ा गया। इसके अलावा कर देने के लिए किसानों को महाजनों से ऋण लेना पड़ा तथा इस ऋण को न चुका पाने के कारण अपनी ही जमीनों पर भूमिहीन मजदूरों के रूप में कार्य करने को मजबूर होना पड़ा। कभी-कभी तो ऋण के बोझ के चलते ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती थी कि किसानों एवं उनके परिवार वालों को बेगारी तक करनी पड़ती थी। जिस कारणवश किसानों की स्थिति बद से बद्तर होती जा रही थी साथ ही किसानों को न्यायिक संरक्षण भी प्राप्त नही था क्योकि अधिकतर मजिस्ट्रेट या तो यूरोपीय थे या फिर जमींदार। इस प्रकार के अत्याचारों ने भोले- भाले किसानों को विद्रोह करने पर विवश कर दिया जिसका परिणाम हमें **19**वीं तथा **20**वीं शताब्दी में विभिन्न किसान विद्रोहों के रूप में देखने को मिलता हैं। इसी प्रकार **19**वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुए मजदूर के क्रियाकलापों में **20**वीं शताब्दी में भी चलती रही। इस शताब्दी में बुद्धजीवियों तथा वामपंथियों ने इनका रास्ता टे^{a}ड यूनियन आदि बनाकर प्रसस्त किया।

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

नोट - निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर उसके सामने बने सत्य तथा असत्य के रूप में दें।

I. **1780-81** में बनारस के राजा चैत सिंह का विद्रोह पुनर्संस्थापनात्मक स्वरूप के अधीन हुआ। (सत्य/असत्य)

II. सन्यासी विद्रोह करने वालों में मूलतः कृषक हिन्दू तथा मुसलमान दोनों थे। (सत्य/असत्य)

III. पालगपंथी विद्रोह का प्रेरक टीपू एक राजकुमार वंश से थे। (सत्य/असत्य)

IV. फरायजी आन्दोलन की स्थापना हाजी शरीयतुल्लाह ने किया था। (सत्य/असत्य)

V. वहाबी आन्दोलन सिर्फ अंग्रेजी सरकार का विरोधी था कृषक से सम्बन्धित नही था।(सत्य/असत्य)

VI. मोपला विद्रोह आसाम में ही केन्द्रित था। (सत्य/असत्य)

VII. **19**वीं सदी के उत्तरार्ध में बंगाल में पाबना स्थान में किसानों ने जमींदारों के शोषण के विरूद्ध विद्रोह किया। (सत्य/असत्य)

VII. दीनबन्धु मित्र ने नील दर्पण' में नील आन्दोलन का विस्तार पूर्वक वर्णन किया था।(सत्य/असत्य)

IX. ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन की स्थापना **1920** ई**0** में हुई। (सत्य/असत्य)

X. मद्रास श्रमिक संघ' प्रथम व्यवस्थित श्रमिक संघ था। (सत्य/असत्य)

उत्तर:

I. सत्य

II. सत्य

III. असत्य

IV. सत्य

V. असत्य

VI. असत्य

VII. सत्य

VIII. सत्य

IX. सत्य

X. सत्य

12.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. चन्द्रा बिपन - इण्डियास स्ट्रेगिल फोर इन्डेपेन्डेन्स, पेंगुइन बुक,दिल्ली, **1993** (अंगेजी व हिन्दी दोनों में है)
2. चन्द्रा, बिपन - इण्डिया आफटर इन्डेपेन्डेन्स, पेंगुइन बुक,दिल्ली, **1993**
3. सरकार, सुमित - मॉडर्न इण्डिया **1885-1947** मेकमिलन इण्डिया लिमिटेड मद्रास **1983** (अंगेजी व हिन्दी दोनों में है)
4. इग्नू कोर्स - मोडर्न इण्डियन हिस्ट्री, **1999** (अंग्रेजी व हिन्दी दोनों में है)

12.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बन्द्योपाध्याय, सेखर, फ्राम प्लासी टू पार्टिशन: ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न इण्डिया, ओरिएण्ट ब्लैक स्वान**,** दिल्ली-**2004**

2. गॉधी**,** एम**0**के**0,** हिन्द स्वाराज/इण्डियन होमरूल, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, **1996**

12.13 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न .**1** प्रमुख किसान आन्दोलन के मुख्य कारणों को उदाहरण सहित व्याख्या करै।

प्रश्न .2 19वीं सदी के प्रमुख कृषकों के क्षेत्रों तथा उनके विद्रोहों की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न .**3** **20**वीं सदी में हुए किसान आन्दोलन में गाँधी जी की भूमिका पर प्रकाश डालें।

प्रश्न .**4** प्रमुख किसान आन्दोलन **'**नील विद्रोह**'** पर एक टिप्पणी करें।

प्रश्न .**5** परिवर्तनवादी व्यवस्था पर एक लेख उदाहरण सहित लिखिए।

प्रश्न .**6** ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन की व्याख्या करते हुए **20**वीं सदी में इसकी विशेषता पर प्रकाश डालें।

इकाई तेरह

जनजातियां एवं जनजातीय विद्रोह

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 जनजातीय आंदोलन के कारण

13.4 जनजातीय आन्दोलन का स्वरूप

13.5 प्रमुख जनजातीय विद्रोह

13.5.1 कोल विद्रोह

13.5.2 संथाल विद्रोह

13.5.3 खेरवा विद्रोह

13.5.4 बिरसा मुंडा एक नायक के रूप में

13.6 20वीं सदी का जनजातीय विद्रोह

13.6.1 ताना भगत विद्रोह

13.6.2 कूकी विद्रोह

13.7 सारांश

13.8 पारिभाषिक शब्दावली

13.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

\

13.1 प्रस्तावना

भारत सदियों से एक कृषि प्रधान देश रहा है। इस क्षेत्र में कृषक के रूप में आदिवासियों ने भी अपनी भागीदारी से कृषि कार्य को सुशोभित करते रहे हैं। इस कार्य में विहार के छोटा नागपुर और संथाल परगना के आदिवासी पलामू के जनजातीय, आधुनिक उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल के जनजातीय, छोटा नागपुर के कोल तथा मुडां जनजातीय, भागलपुर तथा राजमहल के मध्य निवास करने वाली संथाल जनजातीय और भारत के पूर्वी प्रदेश में कई अन्य जनजातियाँ निवास करती थी तथा कृषि कार्य में लगन के साथ कार्य करती थीं। अंग्रेज़ी शासन का भारत में जैसे.जैसे जड़ मजबूत होता गया धीरे.धीरे इन आदिवासियों की परेशानी भी बढती गई जिसके परिणाम स्वरूप आदिवासीय जनजातियों ने अंग्रेजी शासन के विरूद्ध अपना आक्रोश प्रकट करने लगे।

इसी सन्दर्भ में भारत के विभिन्न भागों के बहुत बड़े क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों ने 19वीं सदी में ब्रिटिश शासन के खिलाफ गंभीर बिद्रोह किये। भारत में जनजातीय आन्दोनल औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। कुछ रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं को छोडकर अन्य दृष्टि से जनजाति लोग भी भारतीय जीवन का हिस्सा थे। आमतौर पर जनजातीय समाज अभी भी आदिम के रूप में देखा जाता था। इसमें से कृषि पर निर्भर था। विस्तार तथा कुछ हिस्सा औपनिवेशीकरण नीति ने अंग्रेजी शासक को जनजातीय क्षेत्रों में आने के लिए प्रोत्साहित किया। भ्रष्टाचार तथा अत्याचार के इलाके में घुसपैठ की, तो उनमें घोर असंतोष होना स्वाभाविक ही था, किन्तु जनजातीय लोगों की प्रतिक्रिया अन्य विद्रोहों से इस रूप में भिन्न थी कि यह अपेक्षाकृत ज्यादा हिंसक तथा धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत थी।

1857 ई0 के पूर्व आदिवासियों ने अनेक बार सरकारी भूमि-सम्बन्धी नीतियों जमीदारों के अत्याचारों तथा आर्थिक शोषण के विरूद्ध विद्रोह की थी। सरकार ने इन्हें सैनिक सहायता का सहारा लेकर दबा दिया था परन्तु आदिवासियों की दयनीय स्थिति सुधारने हेतु कोई सन्तोष जनक प्रयास नहीं किया। इसी कारण 19वीं सदी के मध्य प्रारम्भ हुए आदिवासियों के अनेक आन्दोलन 20वीं सदी में भी चलते रहे।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढनें के बाद आप निम्नलिखित बातों को आसानी से समझ सकते हैं।

- 19वीं सदी में जनजातियों की स्थिति तथा उनके द्वारा आन्दोलन।
- 20वीं सदी में जनजातियों की स्थिति तथा जनजातीय विद्रोह।
- जनजातीय आन्दोलन के कारण।
- जनजातीय आन्दोलन के स्वरूप।
- प्रमुख जनजातीय विद्रोहों में भाग लेने वाली जातियाँ।
- बिरसा मुडां के नेतृत्व में जनजातीय विद्रोह।
- कई अन्य जनजातियों का भारत के विभिन्न क्षेत्रों मे विद्रोह।
- अंग्रेजों का जनजातियों के साथ बर्ताव।

13.3 जनजातीय आंदोलन के कारण

सभी जनजातीय विद्रोहों के पीछे मुख्य कारण आर्थिक शोषण था। बिट्रिश शासित क्षेत्र के विस्तार के साथ ही अंग्रेजी राज ने आदिवासी कबीले के सरदारों को जमीदार का दर्जा दिया तथा लगान की नई प्रणाली भी लागू किया। स्थाई बन्दोबस्त के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र में बंजर भूमी से लाभ उठाने का अधिकार जमीदारों को मिला हुआ था सीमान्त भूमि वाले लोगों के लिए इसके परिणाम काफी महत्वपूर्ण थे। नई भूमि व्यवस्था, व्यतिगत सम्पति को ब्रिटिस अवधारणा, सयुक्त सम्पत्ति को जनजातीय अवधारणा से पूर्णतः पृथक थी। इस व्यवस्था के कारण उनकी भूमि उनके हाथों से निकलती चली गयी और वे धीरे-धीरे किसान से कृषि मजदूर में तब्दील होते गए।

जंगलों से उनके गहरे रिश्तों को भी औपनिवेशिक शासन ने तोड़ डाला। इससे पहले वे भोजन तथा पशुओं का चारा जंगलो से जुटाते थे, जहां उनका जीवन पूरी तरह स्वच्छंद था। खेती के उनके अपने तरीके थे, जगह बदलकर 'झूम' अथवा 'पडु' विधियों से खेती करते थे। यानी जब उन्हे लगता था कि खेत अब उपजाउ नही रह गये है तो जंगल साफ करके खेती की नयी भूमि प्राप्त कर लेते थे। परन्तु 1867ई0 के पश्चात ब्रिटिश सरकार ने झूम खेती पर पाबन्दी लगा दी और इमारती लकडी एवं चराऐ पर रोक लगा कर वन सम्पति पर एकाधिकार करने के प्रयास किये। इससे जनजातीय विद्रोह की भावना को प्रश्रय मिला।

अंग्रेजी शासन के विस्तार के साथ शोषण के नए अभिकारण विकसित हो गए। नयी भूमि व्यवस्था ने उनके बीच महाजनों, व्यापारियों और लगान वसूलने वालों के एक ऐसे बिचौलिये समूह को स्थापित कर दिया, जिनका उदेश्य था जनजातीय लोगों का अधिकाधिक शोषण करना। इन शोषण अभिकरणो को पुलिस प्रशासन तथा न्याय प्रशासन की जटिल प्रणाली से संरक्षण मिलता था। अन्य छोटे मोटे अधिकारियों द्धारा किये जाने वाले अत्याचारों शोषण और जबरन उगाही ने जनजातीय लोगों का जीना दुर्लभ कर दिया। नवीन न्याय प्रणाली भी जनजातियों की संरक्षण नही बन पाई क्योंकि यह जटील एवं विलम्बकारी होने के साथ-साथ अक्सर प्रभावी पक्ष को ही संरक्षण देने वाली हो जाती थी। लगान वसूलने वाले लोगों और महाजनो जैसे सरकारी बिचौलिए एवं दलाल इन जनजातियों का शोषण तो करते ही थे, उनसे जबरन बेगारी भी कराते थे।

अनुबंधित मजदूरी की व्यवस्था से भी आदिवासियों में गहरा असन्तोष था। अनुबंधित व्यवस्था के तहत आदिवासियों को गंदे तथा अस्वास्थ्यकारी वातावरण में काम करने के लिए भेज दिया जाता था जहाँ से वे अनुबंध समाप्त होने के बाद ही वापस लौट सकते थे। कई बार तो ऐसे वातावरण में काम करने से उनकी जान चली जाती थी अथवा वे गम्भीर बीमारियों से ग्रसित हो जाते थे। अनुबंधित मजदूरी की वजह से आदिवासियो को अपने समाजिक परिवेश से उखड़ जाने तथा अपनी संस्कृति खो देने का भय बराबर बना रहता था।

जनजातीय लोगो में असंतोष के पीछे एक अन्य कारण ईसाई मिशनरियों की भूमिका को भी माना जाता है, मुख्यतया बिहार तथा असम के सदर्भ में। ईसाई मिशनरियों ने जनजातीयों के क्षेत्रो में शिक्षा का प्रसार किया तथा सामाजिक सोपान में ऊँचा स्थान पाने की आशा भी उसमें जाग्रत की। उन्होने ने जनजातीय लोगों को शोषण

के विरूद्ध सहायता करने का लालच भी दिया। परन्तु ईसाई मिशनरियों की उपस्थिति ने एक विशेष प्रकार के तनाव की स्थित उत्पन कर दी और अन्ततः एक प्रकार का सांस्कृतिक संघर्ष भी छिड़ गया।

13.4 जनजातीय आन्दोलन का स्वरूप

जनजातीय असन्तोष दो रूपों में व्यक्त हुआ। प्रथम अकस्मात विद्रोह तथा द्वितीय आन्तरिक धार्मिक सामाजिक-सांस्कृतिक सुधार के रूप में परन्तु दोनो ही स्थितियों में औपनिवेशिक शासन के खिलाफ तीव्र घृणा व्यक्त की गयी। जनजातीय विद्रोह की मुख्य बात यह रही कि उन्होने वर्ग के आधार पर नही बल्कि जाति के आधार पर और जनजाति पहचान जैसे - संथाल, कोल, मुंडा आदि के रूप में अपने आपको संगठित किया। उनकी इस रूप में एकजुटता का आलम यह था कि उन्होने कभी भी आदिवासियों पर हमला नहीं किया।

जनजातियों के असंतोष में कुछ हद तक जाति आधार के साथ आर्थिक आधार को भी जोडने की प्रवृत्ति दिखाई देती है क्योकि वे सभी बाहरी लोगों को दुश्मन नही मानते थे। बाहर से उनके ईलाकों में बसे ऐसे लोगों पर वे आमतौर पर हमला नही करते थे जो गरीब होते थे अर्थात आदिवासी गाव की अर्थव्यवस्था में जिनकी भूमिका सहायक थी या जिन लोगों ने आदिवासियों से गहरे सामाजिक रिस्ते बना लिये थे। इन लोगो में ग्वाले, लोहार, बढई, कुम्हार, जुलाहे, धोबी, नाई, बंधुआ, मजदूर तथा घरेलू नौकर शामिल थे। ये लोग न केवल आदिवासियों के हमलें से बचे बल्कि कई मौकों पर तो ये आदिवासियों के साथ मिलकर लड़े भी। यह कहना उचित होगा कि ऐसे मौको पर जाति ने नहीं बल्कि वर्ग ने उनको एक-दूसरे के साथ जोड़ा।

जनजातीय विद्रोह अपेक्षाकृत हिंसक तथा धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत था। कई बार कई आदिवासी क्षेत्रों में एक ही समय में बाहरी लोगों के विरूद्ध हिंसक संघर्ष भड़का। बाहरी लोगों के पक्ष में प्रशासन के खडे हो जाने से औपनिवेशिक शासन के अधिकारीयों से भी इनका संघर्ष शुरू हो गया। इन संघर्षो को मौके पर कई बार इनके बीच ओझाओं जैसे चमत्कारिक नेता भी उभरे जिन्होने इन्हे आश्वस्त किया कि ईश्वर उनके कष्टों को दूर करेगा तथा बाहरी लोगों के शोषण से बचायेगा। वे लोग अक्सर ये भी दावा करते थे कि उनके पास जादूई ताकत है जिससे वे दुश्मन की गोलियों को भी बेअसर कर सकते है। इन आश्वासनों ने जनजातियों के लोगों में आशा और विश्वास की ऐसी लहर पैदा कर दी कि वें आखिरी सांस तक अपने नेता के साथ मिलकर लड़ते रहे। इस प्रकार 19वीं सदी के जनजाति आन्दोलन स्वर्णयुग एवं महाप्रलय की अवधारणा से प्रेरित था अर्थात इनकी दृष्टि मसीहावादी थी, परन्तु 19वीं सदी के जनजातीय आन्दोलन औपनिवेशिक के चरित्र की समझ प्रदर्शित नही करते थे।

13.5 प्रमुख जनजातीय विद्रोह

अंग्रेजी भू-बन्दोबस्त व्यवस्था के विरूद्ध पहला व्यापक जनजातीय विद्रोह 1790 में प्रारम्भ हुआ जहॉ पलामू जनजाति के लोगों ने जमीदारों के शोषणकारी रवैये से पस्त होकर विरोध प्रारम्भ किया। राजा द्धारा की गई सैनिक कार्यवाही ने उसके विरोध को और हवा दी। अंग्रेजों ने समस्या के शीघ्र समाधान के लिए राजा को हराकर उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति को बैठा दिया किन्तु इससे समस्या का अन्त नही हुआ। इसी तरह 1817 में चेरो ने तथा 1819 में मुंडाओं ने इन जमीदारों के समर्थन में विद्रोह कर दिया जिनसे अंग्रेजों ने सारी शक्तिया छीन ली थी।

इसी क्षेत्र के दक्षिण भाग में आधुनिक उडीसा तथा पं0 बंगाल की सीमा पर पोरहर नामक स्थान पर 1820 ई0 में होस जनजातियों ने विद्रोह कर दिया किन्तु जमीदारो ने ब्रिटिश सेना की सहायता से 1821-22 में इस विद्रोह को दबा दिया परन्तु समझौता की शर्तो के अनुरूप होस जनजातियों को बहुत सी छूट देनी पडी। उदाहरण के लिए उन्होने कंपनी की प्रभुसत्ता स्वीकार करने के लिए, जमीदारों को कर देने के लिए, अपने गांवों में सभी जातियो के लोगों को बसने देने के लिए, और अपने बच्चों को हिन्दी अथवा उड़िया सिखाने के लिए राजी होना पडा। अब इन क्षेत्रों में ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था लागू हो सकती थी। इसके बाद से मैदानी लोगों को आदिवासियों की जमीन के पुश्तैनी अधिकार मिलने लगे। कालान्तर में इस प्रवृत्ति में वृद्धि ही हुयी।

13.5.1 कोल विद्रोह

1822 ई0 में छोटा नागपुर के कोल जनजातीय लोगों का विद्रोह प्रारम्भ हुआ। छोटा नागपुर क्षेत्र में मुंडा, उरांव, मोहाली आदि सभी जनजातियों को मैदानी लोग कोल कहते थे। इन्हे इस बात से गहरा असंतोष था कि 1822 में सरकार ने चावल से निर्मित कम नशीली शराब (हडिया) पर उत्पाद शुल्क लगा दिया था जो कि प्रति घर चार आने होता था तथा 1830 में इस उत्पाद शुल्क को लागू भी कर दिया गया। 1827 से इन क्षेत्रो में जबरन अफीम उगाया जाने लगा। अंग्रेजो ने इन्हें एक-दूसरे से लडवाकर कमजोर करने का भी प्रयत्न किया परन्तु आदिवासियों ने संगठित होकर काम किया तथा 1831 में विद्रोह कर दिया। इसे कोल विद्रोह के नाम से जाना जाता है इस विद्रोह का नेतृत्व सिंदराय मानकी तथा विंदराय मानकी ने किया।

11 दिसम्बर 1831 के दिन तमाड बडगांव के लोग लंका नामक गांव में एकत्रित हुए जहां विदेशी शासन, स्थानीय जमीदार तथा दिकुओं के खिलाफ आन्दोलन करने का निर्णय लिया गया। यद्यपि इस विद्रोह मे कम लोगों की मृत्यु हुई किन्तु चार हजार मकानों तथा अनेक कचहरियों को जला दिया गया। आदिवासी अनाज तथा पशुओं को लेकर जंगल में जा बसे तथा पॉच महिनो तक अपना संघर्ष जारी रखा। समस्या को सुलझाने के लिए सरकार ने इस क्षेत्र को दक्षिणी-पश्चिम सीमान्त ऐजेन्सी के नाम से एक अलग ईकाई बना दी इस क्षेत्र को नान रेग्यूलेशन जिला घोषित किया। गंगा नारायण सिंह के नेतृत्व में 1833-34 में प्रारम्भ हुआ, भूमिज विद्रोह इसी कोल विद्रोह का ही विस्तार था। इस विद्रोह के कारण एक बार पुनः ब्रिटिश शासन एवं स्थानीय, जमीदार बने। शासक वर्ग ने इस विद्रोह को कैप्टन थॉमस बिलकिन्सन के नेतृत्व में सेना भेजकर दबा दिया।

कोल तथ भूमिज विद्रोह की एक विशेषता यह रही कि इसके दमन के बाद ब्रिटिश शासन ने अनेक प्रशासनिक परिवर्तन किये जिसका मुख्य उदेश्य था पिछड़े क्षेत्रो में प्रशासन को सरल एवं लचीला रूप देना। इन दोनो विद्रोहों के पश्चात निम्नांकित परिवर्ततन किये गये सन 1833 के रेगूलेशन -13 के माध्यम से कम्पनी का अप्रत्यक्ष शासन समाप्त हो गया। रामगढ हिल ट्रेवर से छोटा नागपुर पठार को दक्षिण-पश्चिम सीमान्त एजेन्सी का अंग बनाया गया। इसे नान रेगुलेशन प्रोविन्स बनाय गया जिसे दीवानी, फौजदारी, न्यायिक, पुलिस निरीक्षण एंव भूमि कर हेतु विशेष नियमों के तहत रखा गया।

13.5.2 संथाल विद्रोह

19वीं सदी के महत्वपुर्ण जनजातीय विद्रोह में सबसे महत्वपूर्ण संथाल विद्रोह था। जो 1856-57 में प्रारम्भ हुआ। संथाल जनजाति विद्रोह भागलपुर तथा राजमहल के बीच निवास करती थी। 18वीं तथा 19वीं सदी के आरम्भ में संथालों ने राजमहल पहाड़ियो के जंगलो की स्वयं सफाई की थी परन्तु अब बाहरी मैदान के जमीदार तथा साहूकार उनकी जमीन छल-बल से हडप रहे थे। इसके अलावा उन्हें अपनी जमीन का राजस्व देना पड़ रहा था। जिसका भुगतान नही करने पर कठोर दंड दिया जा रहा था। इन क्षेत्रो में रेलवे लाइन का कार्य प्रारम्भ होने से भी वे आंतकित हुये थे क्योकि अधिकांश संथालों से जबरन बेगारी करायी जा रही थी और यदि मजदूरी दी भी जा रही थी तो वह बहुत कम थी।

1854 तक आते-आते इन आदिवासियों का विद्रोह अपने चरम पर पहुंच गया। कोल विद्रोह से प्रेरणा लेते हुए विभिन्न गॉवों में विद्रोह के संदेश भेजे गये। एक स्वर से निर्णय लिया गया कि बाहरी लोगों को भगाने, विदेशियों का राज हमेशा के लिए खत्म कर सतयुग का राज न्याय तथा धर्म पर अपना राज स्थापित करने के लिए खुला विद्रोह किया जाए। संथालो को विश्वास था कि भगवान उनके साथ है विद्रोही आदिवासियों के दो प्रमुख नेता सिद्धू तथा कान्हू ने घोषणा की कि ठाकुर जी ने उन्हे निर्देश दिया है कि यह देश अब साहबों का नही है इसलिए आजादी के लिए हथियार उठा लो। इन्होने भविष्यवाणी की कि ब्रिटिश शासन का अन्त निकट है बहुत जल्द ही सिधू तथा कान्हू ने करीब 60 हजार सन्थालों को इकटठा कर लिया, इसके अलावा कई हजार आदिवासियों को तैयार रहने के लिए कहा गया उनसे कहा गया कि जब नगाडा बजे तो हथियार उठा लेना।

इन्होने सर्वप्रथम निकटवर्ती शोषकों के विरूद्ध विद्रोह किया, परिणामतः दूरवर्ती शोषक भी इनकी चपेट में आ गये। साहूकारों को चेतावनी देकर कुछ दिन पश्चात आक्रमण किया तथा उनके मकानो एवं कचहरियों को दस्तावेजो सहित जला दिया। यद्यपि वे दस्तावेजो को पढ नही सकते थे परन्तु इतना अवश्य जानते थे कि ये दस्तावेज ही उनकी गुलामी का कारण है। संथालों ने मैदानी लोगों की खडी फसलो को जला दिया, रेल सम्बधि कार्यो को तहस नहस कर दिया तथा ब्रिटिश अधिकारियों एवं इंजिनियरों के बंगलों को नष्ट कर दिया। संथालो ने लगभग उन सभी चीजों पर हमला किया जो दीकू और उपनिवेशवादी सत्ता के शोषण के माध्यम थे।

परन्तु ब्रिटिश सरकार ने आदिरवासियों के इस संगठित ब्रिदोह को दबाने के लिए सेना का सहारा लिया तथा मेजर जनरल के नेतृत्व में 10 सैन्य टुकडियो के माध्यम से आदिवासियों का भयंकर दमन किया। 1855 में उनकी भूमि को नान रेग्यूलेशन जिला घोषित कर दिया गया। अगस्त 1855 में सिद्धू तथा फरवरी 1856 में कान्हू को फॉसी दी गई। किन्तु संथालो का संघर्ष पूर्णतःव्यर्थ नही गया क्योकि अंततोगत्वा सरकार संथाल नामक एक पृथक जिला स्थापित करने के लिए विवश हुई।

13.5.3 खेरवा विद्रोह

1870 के दशक में छोटा नागपुर क्षेत्र में राजस्व बन्दोबस्त के विरूद्ध आदिवासियों ने सफाहार अथवा खेरवार आंदोलन चलाया। यह आंदोलन प्रारम्भ में एकेश्वरवाद तथा समाजिक सुधारो की शिक्षा देता था। खेरवार

आन्दोलनन 1855 ई0 के संथाल विद्रोह से अभिप्रेरित था क्योकि आन्दोलन का नायक भागीरथ मांझी संथाल विद्रोह में सक्रिय रह चुका था। यह विद्रोह विदेशी सत्ता के लिए चुनौती था। इन्होने जमीदारों तथा सरकार को लगान नही देने की घोषणा की। भगीरथ की मृत्यु के पश्चात यह आन्दोलन शिथिल पड गया। पुनः खेरवारों द्धारा 1881 की जनगणना के पश्चात दुविधा गोसाई के नेतृत्व में व्यापक आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसका प्रभाव पूरे संथाल परगना में था।

1891 ई0 में मणिपुर में ब्रिट्रिश सत्ता स्थापित हुई। इसी के साथ अंग्रेंजो एवं जनजातियों के मत सम्बन्धों की समस्या प्रारम्भ हो गई। आगे अंग्रेजों ने जनजातियों पर दबाव डाला कि वे अपना भूमिकर मणिकर के शासक के बदले उनको दे। यहां के जनजातीय लोगों में असन्तोष फैल गया, आगे चलकर इसी आन्दोलन को जैदोनांग जैसा जनजाति नेता प्राप्त हुआ। फिर आगे धर्म राज्य स्थापित करने के प्रयत्न में गुजरात की नायकड़ा जंगली जाति ने पुलिस थाने पर आक्रमण कर दिया।

19वीं सदी के जनजातीय विद्रोह में 1899-1900 ई0 का मुंडा विद्रोह भी प्रमुख था। इसका नेतृत्व बिरसा मुंडा द्धारा किया गया था। जागीरदारों के द्धारा खूटंकटटी अधिकारों का उलंघन अनुबंधित मजदूरो की समस्या एवं बेठ-बेगारी आदि कुछ इस प्रकार के कारण थे जिन्होने मुंडा विद्रोह को जन्म दिया। प्रथमतः जनजातीय सरदारों ने इस शोषण की प्रक्रिया के विरूद्ध आपत्ति जताई। मुंडा विद्रोह के सम्बंध में एक विशिष्ट बात है कि विद्रोह से पहले मुंडाओं ने कष्टो के निवारण के लिए वैधानिक उपायो का सहारा लिया। इस सन्दर्भ में उन्होंने इसाई मिशनरियों से भी सहायता पाने की कोशिश की और जब उनकी उम्मीदे टूट गई तभी उन्होने विद्रोह किया।

13.5.4 बिरसा मुंडा एक नायक के रूप में

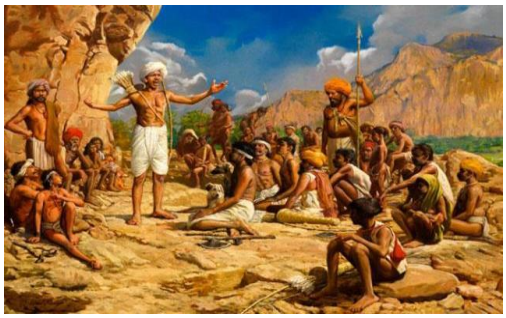

जनजातीय विद्रोह की प्रक्रिया में ही इस आन्दोलन में एक राजनीतिक और सामाजिक उदेश्य से मसीहावादी दृष्टिकोण को जोड दिया गया। बिरसा मुंडा द्धारा प्रारम्भ किया गया आन्दोलन एक प्रकार का सामाजिक धार्मिक एवं राजनीतिक आन्दोलन था। बिरसा ने सोम मुंडा को धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलन की जिम्मेदारी दी थी। बिरसा ने शोषण मुक्त समाज की स्थापना, मुण्डा समाज के अनुरूप एक नए धर्म की घोषणा, हिन्दु धर्म के आदर्श एवं कर्मकाण्ड शुद्धता तथा तपस्या का प्रचार, एकेश्वरवाद में विश्वास, भूत-प्रेत की पूजा पर रोक एवं समाज के प्रत्येक व्यक्ति में आत्म -सम्मान तथा आत्म-विश्वास भरने आदि पर बल दिया।

बिरसा ने अपने राजनीतिक आन्दोलन का सेनापति दोन्का मुण्डा को बनाया। इस आन्दोलन में बिरसा ने सरकारी नियमों की अवहेलना, सरकारी कर्मचारियों की अवज्ञा, सशस्त्र विद्रोह की योजना, मालगुजारी पर रोक, जमीन पर रैयतों का कब्जा, महारानी को सत्ता की चुनौती तथा मुंडा राज्य की स्थापना जैसे कार्यक्रम रखे। बिरसा का मसीहावादी दृष्टिकोण जनजातीय विद्रोह में एक महत्वपूर्ण तत्व हो गया। नया विश्व महाप्रलय की उसकी भविष्यवाणी, जनजातीय लोगों के लिए स्वर्णद्धीप हो गया।

बिरसा मुंडा के नेतृत्व में यह व्रिदोह संगठित रूप से 1898-99 में प्रारम्भ हो गया और बिरसा ने ठेकेदारों की हत्या, जागीरदारों, राजा एवं हाकिमो की हत्या का आह्वान किया। बिरसा को ईश्वरीय गुणो से समाहित माना गया। उसी के नेतृत्व में आदिवासीयों का धर्मोतरण ईसाई से वेष्णों ने होने लगा। हॉलाकि यह विद्रोह दबा दिया गया किन्तु बिरसा के महान नेतृत्व के कारण यह ऐतिहासिक बन गया। इस विद्रोह की सफलता इस बात में थी कि इसी के परिणामस्वरूप 1908 में छोटा नागपुर रैयतवाडी कानून पारित किया गया। जिसके आधार पर मुंडा जनजातीय बिहार के अन्य कृषकों से एक पीढी पूर्व ही अपने परम्परागत भूमि अधिकारों को पा गई। बिरसा मुंडा ने साम्राज्यवादी विरोध की वह परम्परा कायम की, जो आने वाली पीढी के लिए प्रेरणा स्त्रोत बन गई।

13.6 20वीं सदी का जनजातीय विद्रोह

20वीं सदी में भी जनजातीय विरोध का पहले जैसा ही झुकाव तथा असन्तोष जैसे कारक मौजूद थे। परन्तु 20वीं सदी के जनजातीय आन्दोलन के स्वरूप में स्पष्ट अन्तर महसूस किया जा सकता है। 19वीं सदी के जनजातीय आन्दोलन स्वर्णयुग एवं महाप्रलय की अवधारणा से प्रेरित थे अर्थात् इनकी दृष्टि मसीहावादी थी जैसे - छोटा नागपुर के मुण्ड़ाओं ने अपने नेता बिरसा को भगवान मान लिया। इसके साथ 19वीं सदी के जनजातीय आन्दोलन औपनिवेशिक शोषण के वास्तविक चरित्र की समझ को प्रदर्शित नहीं करते थे। परन्तु 20वीं सदी के जनजातीय आन्दोलन मूल परिवर्तनवाद की दिशा में उन्मुख थे तथा यह आन्दोलन व्यापक राष्ट्रवादी चेतना से भी जुड़ा था। कहीं-कहीं तो सत्याग्रह एवं असहयोग की अनुशासित राजनीति का भी सहारा लिया गया। 1898 ई0 में आन्ध्र प्रदेश के कुउ़प्पा तथा नेल्लोर जिले में चेंचू जनजाति ने विद्रोह किया, किन्तु, इन्होंने हिंसक तरीकों का प्रयोग न करके अपने अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए गांधीवादी सत्याग्रह तरीकों का प्रयोग किया। यह इस बात का परिचायक है कि वे अपनी क्षमता एवं बिट्रिश शक्ति की प्रचंडता से परिचित थे।

उड़ीसा में खोंद जनजाति एवं छोटा नागपुर में उरांव जनजाति के विद्रोह में एक नयी बात देखी गयी, इसमें विद्रोहियो को बाह्य जगत की पूरी जानकारी थी। वे प्रथम विश्व युद्ध तथा उसमें बिट्रिश शक्ति की सम्भावित पराजय से परिचित थे। आगे चलकर इसी उरांव जनजाति के मध्य जतरा भगत के नेतृत्य में ताना भगत आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन का गांधीवादी राष्ट्रवाद से गहरा सम्बन्ध था। प्रारम्भ में जतरा भगत द्वारा अंग्रेजों तथा जमींदारों के शोषण के विरूद्ध तथा धार्मिक सुधार हेतु ये आन्दोलन चलाया गया जो बाद में राष्ट्रवादी आन्दोलन का एक हिस्सा बन गया। इस आन्दोलन में जनजाति महिलाओं को जागृति का भी पता चलता है क्योंकि 1916 में जतरा भगत के निधन के पश्चात इस आन्दोलन को उसकी पत्नी खेमनी ने न सिर्फ जारी रखा बल्कि इसे विस्तार तथा मजबूती भी प्रदान की।

13.6.1 ताना भगत विद्रोह

ताना भगत आन्दोलन गांधी जी के स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित हुआ क्योंकि आन्दोलनकारी भी गांधी जी की तरह सादगी, सत्य एवं अहिंसा में विश्वास रखते थे। गांधी जी द्वारा छेड़े गए असहयोग आन्दोलन में इन्होंने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। गांधी जी के आह्वान पर उन्होंने खादी वस्त्र पहनने एवं मदिरा त्याग का संकल्प लिया। यहां तक कि 1921 के अहमदाबाद कांग्रेस सम्मेलन में ताना भगतों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। ताना भगत के जनजातीय

आन्दोलन ने इतने ऊँचे राष्ट्रीयता को प्राप्त किया कि ये स्वतंत्रता के इतने वर्षों के पश्चात् भी राष्ट्रीय तिरंगे झण्डे की प्रत्येक सप्ताह सामूहिक पूजा करते हैं।

13.6.2 कूकी विद्रोह

मयूरभंग जिले के संथाल विद्रोह और मणिपुर में थाड़ों कूकी जनजातीय विद्रोह भी कुछ बातों में आधुनिक था। ये जनजाति पश्चिमी मोर्चे पर निम्न कार्य के लिए जनजातीय श्रमिकों को भेजे जाने की घटना से असन्तुष्ट थी। 1913 में राजस्थान में बांसवाड़ा, सूंथ एवं डुगंरपुर में भीलों का विद्रोह हुआ। हालांकि इस विद्रोह में कोई नई बात नहीं देखी गयी क्योंकि इस विद्रोह में धार्मिक आन्दोलन को भूमी एवं कृषि की समस्या के साथ जोड़ दिया गया। इस विद्रोह का नेता गोविन्द गुरू थे।

20वीं सदी में आदिवासियों के निरन्तर जुझारू संघर्ष का सबसे ज्वलन्त उदाहरण गोदावरी के उत्तरी क्षेत्र रपां में मिलता है यहाँ अगस्त 1922 से मई 1924 के बीच अल्लूरी सीता राम राजू के नेतृत्व में गुरिल्ला युद्ध होता रहा। यह अन्दोलन विभिन्न तत्वों के संयो से विकसित हुआ था। इसने जनजातीय विद्रोह की एक नयी तस्वीर प्रस्तुत की। इसमें प्रारम्भिक विद्रोह पद्वति के साथ आधुनिक राजनीति की पद्धति को जोड़ दिया गया। यह आन्दोलन असहयोग आन्दोलन की असफलता के पश्चात् शुरू हुआ, इसलिए जहां एक तरफ इस आन्दोलन को असहोग आन्दोलन के प्रतिरोध की शक्ति से प्रेरणा मिल रही थी, वही असहयोग आन्दोलन की असफलता से निराशा भी हो रही थी। इस आन्दोलन की दूसरी विशिष्टता यह थी कि इसमें नेतृत्व बाह्य क्षेत्रों से प्राप्त हुआ था। इसकी तीसरी विशेषता थी कि इसमें सीमाराम राजू ने असहयोग आन्दोलन के संरचनात्मक पक्ष को हिंसा की पद्वति से जोड़ दिया। अल्लूरी सीता राम राजू ने दाव किया कि उन पर गोलियाँ बेअसर होंगी, इसके साथ ही उसने कल्कि अवतार के अनिवार्य आगमन की घोषणा की। राजू ने गांधी जी की प्रशंसा की पर उसने हिंसा को भी अनिवार्य बताया। उसके नेतृत्व में आदिवासियों ने अंग्रेजों और भारतीयों के बीच अन्तर स्पष्ट करने की उल्लेखनीय प्रवृत्ति दिखाई दी।

1920 के दशक में उत्तर-पूर्व के मणिपुर जेदोनांग के नेतृत्व में एक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। 1891 में मणिपुर में ब्रिटिश सत्ता स्थापित हुई, इसी के साथ अंग्रेजों एवं जनजातियों के मध्य सम्बन्धों की समस्या शुरू हो गई। आगे अंग्रेजों ने जनजातियों पर दबाव डाला कि वे भूमिकर मणिपुर के शासक के बदले उनको समर्पित करें। जेदोनांग ने इसके विरूद्ध आवाज उठायी, वह मेसोपोटामिया में सैनिक रूप में कार्य कर चुके थे। 1925 ई0 में उसने युवकों का एक संगठन बनाया, साथ ही उसने आतंकवादी गतिविधियों के द्वारा ब्रिटिश को खदेड़ने की योजना बनायी, परन्तु 1930 में उसे गिरफ्तार कर फांसी दे दी गयी। आगे उसकी भतीजी रानी गैडेन्ल्यू ने इस जनजाति आन्दोलन को आगे बढ़ाया लेकिन उसने आन्दोलन की गांधीवादी पद्वति को अपनाया। इसे भी 1932 में गिरफ्तार कर लिया गया, जहां से वह भारत को स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् ही आजाद हो पायी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

नोट - **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर उसके सामने बने सत्य तथा असत्य के रूप में दें।**

(1) जनजातीय आन्दोलन का क्षेत्र केवल बंगाल था। (सत्य/असत्य)

(2) सभी जनजातीय विद्रोहों के पीछे मुख्य कारण आर्थिक शोषण था। (सत्य/असत्य)

(3) 1867 ई0 के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने झूम खेती पर पाबन्दी लगा दी। (सत्य/असत्य)

(4) जनजातीय लोगों में असन्तोष के पीछे आर्थिक शोषण के अतिरिक्त एक अन्य कारण इसाई मिशनरियों की भूमिका मुख्यतया बिहार तथा असम के सन्दर्भ में मानते है। (सत्य/असत्य)

(5) ब्रिटिश भू-बन्दोबस्त व्यवस्था के विरूद्ध पहला व्यापक जनजातीय विद्रोह 1890 में प्रारम्भ हुआ। (सत्य/असत्य)

(6) 19वीं सदी के महत्वपूर्ण जनजातीय विद्रोहों में संथाल विद्रोह था जो भागलपुर तथा राजमहल के बीच निवास करता था। (सत्य/असत्य)

(7) 19वीं सदी के मुण्डा जनजाति विद्रोह को प्रमुख नायक बिरसा मुण्डा थे। (सत्य/असत्य)

(8) छोटा नागपुर के मुंडाओं ने अपने नेता बिरसा मुडां को भगवान स्वरूप मान लिए थे।(सत्य/असत्य)

(9) 20वीं सदी में कोई जनजातीय आन्दोलन नही हुआ। (सत्य/असत्य)

(10) ताना भगत आन्दोलन गाँधी जी के स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित था। (सत्य/असत्य)

13.7 सारांश

इस अध्ययन से यह पता चलता है कि 19वीं सदी में प्रारम्भ हुए जनजाति आन्दोलन धीरे-धीरे 20वीं सदी में भी पदार्पण कर गया और इसका प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भारत के स्वतंत्र होने तक रहा। यह आन्दोलन भारत के विभिन्न क्षेत्रों में हुआ जो अधिकांशता भूमिकर से उत्पन्न हुआ या मिशनरियों आदि के प्रभाव से भी उग्रता धारण किया इस आन्दोलन की दो मुख्य बातें भी देखने में आई। एक तरफ जहाँ महिलाओं ने भाग लिया दूसरी तरफ वहीं कुछ जनजाति विद्रोह, गॉधी जी के विचारों से भी प्रभावित रहे। इस आन्दोलन का परिणाम मिला-जुला देखने को मिलता है। कहीं जनजातियों को सफलता हाथ लगी तो कहीं असफल रहें। इस प्रकार 19वीं तथा 20वीं सदी में चला जनजतीय आन्दोलन, वर्तमान में इतिहास का एक प्रमुख हिस्सा बन गया।

13.8 पारिभाषिक शब्दावली

आदिवासियों – मूल निवासी

लगान - भू-राजस्व

बेगारी – बिना मजदूरी के श्रम

कचहरियों – न्यायालयों

एकेश्वरवाद - एक ईश्वर पर विश्वास का दर्शन

13.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

(1) असत्य

(2) सत्य

(3) सत्य

(4) सत्य

(5) असत्य

(6) सत्य

(7) सत्य

(8) सत्य

(9) असत्य

(10) सत्य

13.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. चन्द्रा, बिपन, इण्डियास स्ट्रेगिल फोर इन्डेपेन्डेन्स, पेंगुइन बुक, दिल्ली, 1993 (अंगेजी व हिन्दी दोनों में है)
2. चन्द्रा, बिपन, इण्डिया आफटर इन्डेपेन्डेन्स, पेंगुइन बुक, दिल्ली, 1993
3. सरकार, सुमित, मॉडर्न इण्डिया 1885-1947, मेकमिलन इण्डिया लिमिटेड, मद्रास, 1983 (अंगेजी व हिन्दी दोनों में है)
4. इग्नू कोर्स - मोडर्न इण्डियन हिस्ट्री, 1999 (अंगेजी व हिन्दी दोनों में है)

13.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बन्द्योपाध्याय, सेखर, फ्राम प्लासी टू पार्टिशन: ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न इण्डिया, ओरिएण्ट ब्लैक स्वान, दिल्ली-2004
2. गॉधी, एम0के0, हिन्द स्वाराज/इण्डियन होमरूल, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1996

13.12 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न .1. प्रमुख जनजातीय आन्दोलन के मुख्य कारणों को उदाहरण व्याख्या करें।

प्रश्न .2. 19वीं सदी के प्रमुख जनजातियों के क्षेत्रों तथा उनके विद्रोहों की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न .3. जनजातीय आन्दोलन के विकास पर एक निबन्ध लिखें।

प्रश्न .4. 19वीं सदी के जनजातीय आन्दोलन में बिरसा मुडां की भागीदारी की विवेचना कीजिए।

प्रश्न .5. 20वीं सदी का जनजातीय विद्रोह किस प्रकार 19वीं सदी के विद्रोह से अलग था। एक तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

प्रश्न .6. 20वीं सदी के प्रारम्भ में किस प्रकार ताना भगत आन्दोलन गाँधी जी के स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित हुआ। व्याख्या कीजिए।

इकाई चौदह

भारत में दलित आन्दोलन

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 कारण

14.4 महाराष्ट्र में दलित आन्दोलन

14.5 केरल में दलित आन्दोलन

14.6 पंजाब में आदि-धर्म आन्दोलन

14.7 उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन

14.8 डा. वी. आर. अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन

14.9 महात्मा गाँधी एवं हरिजन सेवक संघ

14.10 सारांश

14.11 पारिभाषिक शब्दावली

14.12 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

14.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.14 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

भारत में प्राचीन काल से ही जाति एवं धर्म के नाम पर वर्ग विशेष का शोषण होता रहा है जिन्हें विभिन्न नामों से जाना जाता है – अछूत, शूद्र, पंचम वर्ग, अनुसूचित जाति, हरिजन तथा दलित इत्यादि। इस रूढ़ सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष करने वालों की भी एक लम्बी परम्परा रही है जिनमें महात्मा बुद्ध, महाबीर, रामानन्द, कबीर, नानक, तुकाराम, एकनाथ, नामदेव, आर्य समाज, ब्रम्ह समाज इत्यादि। परन्तु इन आन्दोलनों से निम्न वर्गों के सामाजिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। परिणामस्वरूप आधुनिक काल में इन निम्न वर्गों में से ही अतिसुधारवादी नेतृत्व ने जन्म लिया जिन्होंने इनके सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक समानता के लिए संगठित रूप से संघर्ष प्रारम्भ किया। इस संघर्ष को दलित आन्दोलन के नाम से जाना जाता है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप आधुनिक भारत के विभिन्न प्रान्तों में हुए दलित आन्दोलन, उसके नेतृत्व, स्वरूप एवं संगठन के बारे में जान पाऐंगे।

14.3 कारण

जाति के आधार पर समाज का विभाजन भारतवर्ष का एक ऐसा विलक्षण गुण है जो दुनिया के इतिहास में इसके पहचान का प्रतीक बन चुका है। भारतीय समाज में एक ओर जहाँ सुविधासम्मपन्न सवर्ण लोग हैं वहीं दूसरी ओर शोषित और दमित अवर्ण लोग। प्राचीन काल से ही भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था में विभाजित रहा है तथा इन वर्णों के अधीन जातियों एवं उपजातियों में विभक्त रहा है। प्राचीन काल में भारत जहाँ अपने ज्ञान-विज्ञान के कारण विश्व के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है वहीं अपनी जाति संबंधी संकीर्णतावादी सोंच के लिए भी जाना जाता रहा है। वर्तमान समय में भारत में 3000 से अधिक जातियाँ है। भारतीय वर्ण व्यवस्था में शूद्र सबसे निम्न स्तर पर था तथा इन के साथ जाति एवं धर्म के नाम पर अमानवीय शोषण होता था। दलितों की बस्ती गाँव के सबसे आखिरी छोड़ पर हुआ करती थी। इन्हे सार्वजनिक स्थलों से पानी लेने का अधिकार नहीं था। इन्हें शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार भी नहीं था। ये वर्ग न केवल आर्थिक रूप से वरन् सामाजिक और धार्मिक रूप से भी शोषण के शिकार थे। इनके मस्तिष्क में यह बात डाल दिया गया था कि तुम अछूत हो और तुम्हे इसी हाल में रहना है, तुम्हारे जीवन की यही सच्चाई है और ये ईश्वरकृत है।

ब्रिटिश शासन एक ओर जहाँ भारत के लिए अभिशाप था वहीं दलित शोषण के मामले में वह मुक्तिदाता बना। ब्रिटिश शासन के भारत में आने के बाद एक पश्चिमी विचारधारा का भी प्रवेश हुआ। इसके फलस्वरूप दलित उद्धार की संभावनाएँ बनने लगी। भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग जब पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के संपर्क में आए तब उन्हें एहसास हुआ कि उनके समाज में बहुत सारी कुरीतियाँ है जिन्हें दूर करने की आवश्यकता है। दलित आन्दोलन के प्रमुख वाहक फुले, अम्बेडकर, महात्मा गाँधी इत्यादि लोग पाश्चात्य शिक्षा की ही उपज थे। ब्रिटिश शासन से जब यह देश त्रस्त होने लगा तो समाज के कुछ बुद्धिजीवी वर्गों को यह लगा कि बिना समाज का संगठन किए ब्रिटिशों का विरोध नहीं किया जा सकता इसलिए उन्होंने जातिवाद पर प्रहार करना शुरू किया।

1813 ई. के बाद जब इस देश में ईसाई मिशनरियों का बड़े पैमाने पर आगमन हुआ तब उनलोगों ने अनेक स्कूल तथा चिकित्सालय खोला जहाँ जाति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं था। इन लोगों ने अपने शिक्षा के माध्यम से दलितों के बीच सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का विकास किया। इसके दो मुख्य परिणाम निकले। पहला, दलितों को यह एहसास हुआ कि उनका जो शोषण है वह मानवकृत है। दूसरा, दलित लोग ईसाई धर्म की ओर झूकने लगे इसके फलस्वरूप अनेक भारतीय समाजसुधारकों का ध्यान इनकी ओर गया और वे इस समस्या से बचने के लिए अपने धर्म और सामाजिक स्थिति में बदलाव के लिए विमुख हुए। इसी के परिणामस्वरूप अनेक बुद्धिजीवीयों ने अनेक संस्थाओं के माध्यम से दलितों की स्थिति में सुधार के लिए प्रयास करना शुरू किया जिनमें ब्रम्ह समाज, आर्य समाज, परमहंस मण्डली आदि मुख्य थे। परन्तु इन तमाम कोशिशों के बावजूद दलितों की स्थिति में कोई खास अंतर नहीं आ रहा था और दलितों के बीच असंतोष बढ़ता ही जा रहा था। आर्य समाज, ब्रम्ह

समाज, प्रार्थना समाज एवं धर्म सुधार आन्दोलन के कारण निम्न वर्गों के सामाजिक स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं आया। इसलिए अब एक अतिसुधारवादी आन्दोलन की जरूरत थी जो इन वर्गों को इनकी व्यथा से मुक्त कर सके। परिणामस्वरूप इन्ही वर्गों में से कई अतिसुधारवादी नेतृत्व का जन्म हुआ।

आधुनिक भारत के विभिन्न प्रान्तों में एक योग्य एवं प्रतिभाशाली दलित नेतृत्व का उत्पन्न होना जिन्होंने इस आन्दोलन को सांगठनिक स्वरूप प्रदान करने एवं दलित चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की उनमें प्रमुख रूप से जोतिबा फुले, पेरियार, नारायणगुरू, साहूजी महाराज, अम्बेडकर, अछूतानन्द और गंगुराम का नाम उल्लेखनीय है।

14.4 महाराष्ट्र में दलित आन्दोलन

आधुनिक भारत के दलित आन्दोलन के नायकों में ज्योतिबा फुले का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने पश्चिमी भारत में दलित आन्दोलन को व्यापक आधार दिया। फुले का जन्म 1827 ई. में पुणे (महाराष्ट्र) के एक माली परिवार में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा एक मिशनरी स्कुल में हुई थी। ज्योतिबा को सामाजिक रूप से जाति भेद-भाव एवं छुआ-छूत जैसे अमानवीय व्यवहार का सामना करना पड़ा जिससे इन कुरीतियों के विरूद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा मिली।

फुले जाति व्यवस्था को मानव समानता के विरूद्ध मानते थे। उनका विचार था कि भारतीय समाज में जब तक जाति व्यवस्था विद्दमान है तब तक अछूत गुलामी का जीवन जीने को मजबूर रहेगा। वे मूर्ति-पूजा, कर्मकाण्ड, पुर्नजन्म एवं स्वर्ग की कटु आलोचना करते थे। वे एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे।

फुले का मानना था कि आर्य विदेशी मूल के है और उन्होंने द्रविड़ लोगों को हराकर जाति व्यवस्था स्थापित किया है। शूद्र इस भारत भूमि के मूल निवासी है। वैदिक ग्रंथों को वह इसके प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करते थे। वेदों में इस तरह के तथ्य वर्णित है कि आर्यों ने किस प्रकार भारत के मूल निवासियों का दमन कर दास बनाया। उन्होंने पुरूष-स्त्री समानता पर भी बल दिया। वह महिलाओं के शोषण के खिलाफ थे।1 जनवरी 1848 भारत में स्त्री शिक्षा के इतिहास की एक महत्वपूर्ण तिथि है। इस दिन ज्योतिबा ने पुणे में लड़कियों की शिक्षा के लिए एक पाठशाला खोला तथा बाद में स्त्री शिक्षा एवं शूद्रों की शिक्षा हेतु उन्होंने विद्यालयों की एक श्रृंखला स्थापित की। रूढ़िवादी विचारों के विरूद्ध उन्होंने पण्डित रमाबाई का समर्थन किया क्योंकि रमाबाई ने स्त्री शिक्षा पर व्यापक जोर दिया था। उन्होंने खेतिहर मजदूरों और छोटे किसानों की समस्याओं को लेकर भी संघर्ष किया। इस तरह ब्राम्हणवादी व्यवस्था के विरूद्ध एक व्यापक गठजोड़ बनाने का प्रयास किया। अपने विचारों के प्रसार हेतु फुले ने मराठी में **दीनबंधु** नामक पत्रिका की शुरूआत की। 1873 ई. में उनकी महत्वपूर्ण पुस्तक **गुलामगिरी** का प्रकाशन हुआ जिसमें उन्होंने ब्राह्मण व्यवस्था द्वारा शूद्रों के शोषण को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है तथा शुद्रों के गुलामी की तुलना अमेरिकी नीग्रों से किया है। अपने विचारधारा एवं संघर्ष को सांगठनिक स्वरूप देने के लिए उन्होंने 1875 ई. में सत्य सोधक समाज (सत्य को खोजने वाला समाज) की स्थापना की। 1876 ई. में फूले पुणे नगरपालिका के सदस्य बने। उनकी मृत्यु (1890) के बाद सत्य सोधक समाज का प्रभाव कम होता चला गया। इस प्रकार फुले ने ब्राम्हणवादी व्यवस्था, जाति आधारित भेदभाव के विरूद्ध व सामाजिक न्याय हेतु पूरे

जीवन संघर्ष किया। यद्दपि वे उपनिवेशिक शासन की वास्तविकता को समझने में असफल रहे परन्तु दलित आन्दोलन के इतिहास में वह एक नायक के तौर पर हमेशा याद किए जाऐंगे।

14.5 केरल में दलित आन्दोलन

केरल में दलित आन्दोलन एक महत्वपूर्ण नेता नानु असन (जिनको लोग नारायण गुरू के नाम से जानते हैं) के नेतृत्व में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में आरम्भ हुआ। उनका जन्म 1854 ई. में एझवा जाति (अस्पृश्य जाति) में हुआ था। नारायण गुरू ने केरल एवं केरल के बाहर एस. एन. डी. पी. (श्री नारायण धर्म परिपालन योगम्) नामक संस्था की शाखाएँ स्थापित की। उन्होंने अस्पृश्यता के विरूद्ध आन्दोलन का नेतृत्व किया। मन्दिर में अछूतों के प्रवेश को लेकर भी संघर्ष किया और ऐसे मंदिरों की स्थापना की जो समाज के सभी वर्गों के लिए खुले थे। उन्होंने एक धर्म एक जाति एक ईश्वर का नारा दिया। नारायणगुरू वर्ण व्यवस्था के कटु आलोचक थे। उनका विचार था कि भारत में जाति प्रथा एवं छुआ-छूत का मूल जड़ वर्ण व्यवस्था ही है।

14.6 पंजाब में आदि-धर्म आन्दोलन

पंजाब में दलित आन्दोलन के प्रमुख वाहक बाबू मंगू राम थे जिनका जन्म 14 जनवरी 1886 ई. को होशियारपुर जिले में एक चमार परिवार में हुआ था। इनके पिता पारंपरिक रूप से चमड़े का कार्य करते थे। मंगू राम की प्राथमिक शिक्षा गाँव के ही एक संत द्वारा हुई और बाद में अलग-अलग स्कूलों में। बाद में वे अपने बड़े भाई के पास देहरादून चले गए। वहाँ पर एक विद्यालय में प्रवेश लिया जिसमें वह एक मात्र निम्नजातीय छात्र थे। विद्यालय में उन्हें विभिन्न प्रकार से जातीय भेदभाव एवं घृणा का शिकार होना पड़ा। 1905 ई. में उन्होंने स्कूल छोड़ दिया।

1909 ई. में गंगू राम अमेरिका में कृषि मजदूर के रूप में चले गए क्योंकि वहाँ उनके गाँव के आस-पास के उच्च जाति के किसान रहते थे। 1913 में सैन फ्रांसिसको में जब गदर पार्टी की स्थापना हुई तो इन्होंने गदर पार्टी में सम्मिलित होकर गदर के लिए सक्रिय रूप से कार्य करने लगे। मंगू राम 1925 ई. में वापस भारत लौटे। उन्होंने भारत के विभिन्न शहरों का भ्रमण किया और अछूतों की दयनीय दशा को महसूस किया। उन्होंने गदर पार्टी के मुख्यालय को भी सामाजिक परिवर्तन हेतु पत्र लिखा। 11-12 जनवरी 1926 ई. को उन्होंने एक सम्मेलन अपने गाँव मोगयाल में आयोजित किया और आदि-धर्म आन्दोलन के स्थापना की घोषणा की। मंगू राम इसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। अपने गाँव में एक विद्यालय की स्थापना किए जिसका नाम आदि-धर्म स्कूल रखा। उन्होंने पंजाब के विभिन्न शहरों में आदि धर्म की शाखाएँ स्थापित किया। उनका मानना था कि अछूत भारत भूमि के मूल निवासी है। वे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी सामाजिक सुधार एवं रूढ़ियों के विरूद्ध संघर्षरत रहे। 22 अप्रैल 1980 को 94 वर्ष की अवस्था में वे मृत्यु को प्राप्त हुए।

14.7 उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन

उत्तर भारत के दलित आन्दोलन का प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में स्वामी अछूतानन्द के आविर्भाव के साथ माना जा सकता है। उनका जन्म 1879 ई. में मैनपुरी जनपद में हुआ था। इनके पिता मूलतः फर्रूखाबाद के निवासी थे परन्तु उच्च जातियों के अत्याचार के कारण मैनपुरी में बस गए। इनका वास्तविक नाम

हीरा लाल था। इन्होंने मिडिल स्कूल तक शिक्षा प्राप्त किया था। आर्य समाज द्वारा चलाए जा रहे समाज सुधार आन्दोलन से प्रभावित होकर स्वामी सच्चिदानन्द से दीक्षा ले लिया और इनका नाम हरिहरानन्द हो गया। परन्तु यह देख कर कि आर्य समाज के अन्दर भी जाति भेद-भाव है तो इनका मोह भंग होने लगा और वे आर्य समाज से बाहर हो गए।

आर्य समाज छोड़ कर उन्होंने भारत के विभिन्न शहरों का भ्रमण किया और दलितों के वास्तविक स्थिति को समझने का प्रयास किया। अन्ततः 1917 में अछूतानन्द ने एक विशाल सम्मेलन आयोजित किया। इसी सम्मेलन में इनका नाम हरिहरानन्द से बदल कर अछूतानन्द रखा गया। उन्होंने 1919 ई. में मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार में दलितों के समस्याओं से सम्बन्धित एक ज्ञापन दिया, जिसमें अछूतों के लिए पृथक शिक्षा, पृथक निर्वाचन एवं नौकरियों में आरक्षण की मांग शामिल थी। प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन पर भी उन्होंने दलितों के कल्याण हेतु सत्रह सूत्रीय ज्ञापन सौंपा। दिल्ली के अखिल भारतीय अछूत सम्मेलन में इनकी मुलाकात डा. अम्बेडकर से हुई और दोनों एक दुसरे को सहयोग करने लगे। 1924-25 ई. में उन्होंने आदि-हिंदू आन्दोलन की शुरूआत कानपुर से की। उनका मानना था कि हम न तो मुसलमान हैं न इसाई, हम तो हिन्दुस्तान के आदि निवासी हैं। अतः हम सब आदि हिन्दू है। आर्य तो विदेशी है। उनका मानना था हम अछूत है अर्थात अ + छूत जिसमें कोई छूत नहीं हो, अर्थात सबसे पवित्र हम है। उन्होंने अछूत एवं आदि हिन्दू के नाम से पत्र भी निकाला तथा भारत में दलित पत्रिकारिता के सूत्रधार बने। उन्होंने साइमन कमीशन के 29-30 सितंबर 1928 को लखलऊ पहुँचने पर भव्य स्वागत किया इस कारण कांग्रेसियों द्वारा उनका विरोध किया गया। उन्होंने कमीशन को दलितों के स्थिति के बारे में ज्ञापन भी दिया। 1929 ई. के कुम्भ मेले में आदि-हिन्दू सभा का विशाल सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें भारत के विभिन्न प्रांतों के दलित प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। उन्होंने 1930-31 के गोलमेज सम्मेलन में दलित प्रतिनिधि के रूप में डा. अम्बेडकर को मजबूती से समर्थन दिया। 22 जुलाई 1933 ई. को दलित आन्दोलन का यह पुजारी मृत्यु को प्राप्त हुआ। डा. अम्बेडकर को उत्तर भारत में लाने और परिचित कराने का श्रेय अछुतानन्द जी को जाता है।

14.8 डा. वी. आर. अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन

फुले की मृत्यु के बाद दलित आन्दोलन कमजोर पड़ने लगा क्योंकि सत्यसोधक समाज जैसा संगठन उच्च जाति के गैर ब्राह्मणों के हाथों में चला गया। विठ्ठल राम जी शिन्दे ने डिप्रेस्ड क्लास मिशन की स्थापना 1906 में की। शिन्दे के इस मिशन के अध्यक्ष प्रसिद्ध ब्राह्मण समाज सुधारक नारायण राव चन्दावरकर थे। 1910 के दशक में अस्पृश्यों में काम करने वाला यह महत्वपूर्ण संगठन था।

परन्तु दलित समाज के मध्य दलित नेतृत्व को लेकर उथल-पुथल था। दलित आन्दोलन के नए वाहक थे युवा भीम राव राम जी अम्बेडकर। इनका जन्म 14 अप्रैल 1891 ई. को एक महार परिवार में हुआ था। 1905 ई. में चौदह साल की उम्र में इनका विवाह रमाबाई के साथ हुआ। 1935 ई. में रमाबाई की मृत्यु हो गई। 1948 ई. में डा. अम्बेडकर ने दूसरा विवाह डा. शारदा कबीर से किया जो एक सारस्वत ब्राह्मण परिवार से थी। अम्बेडकर एलफिन्सटन महाविद्यालय से स्नातक थे। वे तीन वर्ष कोलम्बिया विश्वविद्यालय व एक साल लन्दन स्कूल आफ

इकोनोमिक्स में अध्ययनरत थे। शिन्दे द्वारा चलाया जा रहा अस्पृश्यता निवारण कांग्रेस व उच्च वर्गों द्वारा प्रायोजित था जिसका अम्बेडकर ने तीखी आलोचना की।

कोल्हापुर जिले के माने गाँव में 20 मार्च 1920 ई. को साहू जी महाराज द्वारा आयोजित ब्राह्मण विरोधी सम्मेलन में अम्बेडकर को दलितों के समक्ष प्रस्तुत किया गया। बाद में 30-31 मई 1920 को आल इण्डिया डिप्रेस्ड क्लास सम्मेलन (All India Depressed Class Conference) नागपुर में आयोजित किया गया। सही अर्थों में अम्बेडकर दलित संगठन के लिए फुले के उत्तराधिकारी थे। इस प्रकार 1920 की घटनाओं द्वारा अम्बेडकर ने दलित आन्दोलन को प्रारम्भ कर दिया। इसी वर्ष उन्होंने **मुक नायक** (Voice of Mute) नामक पत्रिका का संपादन एवं प्रकाशन शुरू किया। 1920 के अंत में अम्बेडकर अपनी कानून की पढ़ाई पूरी करने के लिए लन्दन वापस चले गए। 1923 ई. में वापस आ गए। उन्होंने वकालत प्रारम्भ की और सिन्दम कालेज में पढ़ाते भी थे। डा. अम्बेडकर ने 1924 ई. में बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना की। इस सभा के द्वारा उन्होंने दलित समाज को संगठित करने का प्रयास किया। 1926 ई. में उन्हें विधान परिषद के सदस्य का रूप में नामांकित किया गया।

बहिष्कृत हितकारिणी सभा के बैनर तले ही उन्होंने 19-20 मार्च 1927 को महाराष्ट्र के कोलाबा जिले के महाद तालुका में महाद तालाब सत्याग्रह की शुरूआत की। अस्पृश्यों को सार्वजनिक तालाबों से पानी लेने पर सामाजिक रूप से मनाही थी जबकि महाद नगरपालिका ने अस्पृश्यों के लिए तालाब को खोलने पर प्रस्ताव पारित कर चुकी थी। सभा के अंत में सीधी कार्यवाही की घोषणा की गयी सभी लोग तालाब पर चले और पानी पिएं। जब वे वापस लौट रहे थे तो ऊँची जातियों द्वारा हमला किया गया। तालाब का पानी पीना, पुलिस द्वारा शिकायत दर्ज होना, ब्राह्मणों द्वारा तालाब की शुद्धि किया जाना इन सारी घटनाओं की प्रतिध्वनि पुरे महाराष्ट्र में फैल गयी और दलित समाज के बीच अम्बेडकर को समर्थन बढ़ता चला गया और बाद में एक और सत्याग्रह सम्मेलन हुआ। 20 मार्च के दिन को बहुत दिनों तक दलित अस्पृश्य स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाते रहे। वह गांधी के बड़े आलोचक थे परन्तु गांधी के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति भी थी। दिसम्बर के महाद सत्याग्रह सम्मेलन में अम्बेडकर के साथ गाँधी के भी चित्र लगे हुए थे।

अम्बेडकर प्रारम्भ से ही हिन्दू धर्म के आलोचक थे और वे हिन्दू धर्म को असमानतावादी धर्म मानते थे। परन्तु 1930-32 की घटनाओं ने अम्बेडकर को पूरी तरह से हिन्दू धर्म विरोधी बना दिया। 1935 ई. में धर्मांतरण की प्रसिद्ध घोषणा तथा उनका वाक्य मैं हिन्दू पैदा जरूर हुआ था, पर हिन्दू मरूंगा नहीं, उनके मानसिक सोंच को पूरी तरह दर्शाता है।

दलित आन्दोलन को एक नया स्वरूप देने हेतु अम्बेडकर ने 1930 ई. में आल इण्डिया डिप्रेस्ड क्लास लीग का सम्मेलन नागपुर में आयोजित किया जिसमें स्वतंत्रता की मांग करते हुए ब्रटिश शासन पर प्रहार किया। उनका कहना था कि ब्रिटिश सरकार ने अस्पृश्यता एवं मजदूरों तथा किसानों के शोषण के लिए कुछ नहीं किया। पहली बार 1930 ई. में प्रथम गोलमेज सम्मेलन में अम्बेडकर ने दलितों को एक नयी वाणी प्रदान की। उन्होंने एकीकृत राष्ट्र, व्यस्क मताधिकार आरक्षण एवं अस्पृश्यता हेतु उचित प्रावधान की मांग की। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन से पूर्व अम्बेडकर की मुलाकात गांधी जी से हुई। यह मुलाकात विक्षुब्ध वातावरण में हुआ। द्वितीय सम्मेलन में भी

एक बार फिर विवाद हुआ। दोनों ही यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहे थे कि दलितों के वास्तविक प्रतिनिधि वे ही हैं। एक तरह से अम्बेडकर के दलित प्रतिनिधित्व को गाँधी द्वारा चुनौती दी जा रही थी।

1932 ई. में रैम्जे मैकडोनाल्ड का पंचनिर्णय की घोषणा हुई जिसके विरोध में गांधी ने 20 सितम्बर से अनिश्चित उपवास की घोषणा की। इसमें मुख्य प्रावधान दलितों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था थी। अंततः तेजबहादुर सप्रु और अम्बेडकर के बीच चर्चा के बाद 24 सितम्बर को अम्बेडकर गाँधी के बीच समझौता हुआ जिसे पूना पैक्ट के नाम से जाना जाता है। इस समझौते के अनुसार दलित वर्गों के लिए प्रांतीय विधान मंडलों में 198 सीटें दी गयी जो संप्रदायिक पंचाट के सीटों से दुगुनी थी। इस अंतिम परिणाम से अम्बेडकर संतुष्ट थे। एक तरह से यह स्वीकार कर लिया गया कि अम्बेडकर दलितों के एकछत्र नेता है। अंतिम बैठक में अम्बेडकर ने भी गाँधी की प्रशंसा करते हुए कहा – मैं महात्मा का बहुत आभारी हूँ। अम्बेडकर को यह प्रतीत होता था कि यदि दलितों को राजनीतिक शक्ति मिल जाए तो वे अपने आपको स्वयं मुक्त करा लेंगे। अम्बेडकर-गांधी मतभेद पुनः सतह पर आ गया जब गाँधी ने हरिजन सेवक संघ बनाकर अस्पृश्यता विरोधी अभियान शुरू किया। 15 अगस्त 1936 ई. में अम्बेडकर ने इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी का पठन किया।

अम्बेडकर दलितों के अलावा किसान एवं मजदूर से संबंधित मुद्दे को उठाकर एक व्यापक गठबंधन बनाने का प्रयास कर रहे थे। 1937 ई. के चुनाव में लेबर पार्टी ने हरिजनों के आरक्षित 15 सीटों में 13 सीटे जीती थी बाकी जगहों पर अधिकांश सीटे कांग्रेस जीती थी। 1942 ई. में अम्बेडकर ने अनुसूचित जाति संघ (Scheduled Caste Federation) की स्थापना की परन्तु 1946 ई. के चुनाव में अनुसूचित जाति संघ को असफलता ही हाथ लगी। संविधान सभा के सदस्य के रूप में वे मुस्लिम लीग के सहयोग से बंगाल से चुने गए परन्तु विभाजन के कारण यह सदस्यता उन्हें खोनी पड़ी और पुनः जुलाई 1947 में बाम्बे से संविधान सभा के सदस्य चुने गए और प्ररूप समिति के अध्यक्ष नियुक्त हुए। डा. अम्बेडकर स्वतंत्र भारत के नेहरू मंत्रिमंडल में विधि मंत्री के रूप में सम्मिलित हुए परन्तु सरकार में रहते हुए भी वह दलितों के लिए संघर्षरत रहे। 27 सितम्बर 1951 ई. को हिन्दू कोड बिल विवाद पर उन्होंने मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। 14 अक्तूबर 1956 ई. को डा. अम्बेडकर ने नागपुर में एक विशाल सम्मेलन में बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की। 4 दिसम्बर 1956 ई. को दलित आन्दोलन का यह महानायक पंचतत्व में विलिन हो गया।

14.9 महात्मा गाँधी एवं हरिजन सेवक संघ

छुआ-छूत, जाति-प्रथा जैसी सामाजिक बुराईयों एवं निम्न वर्गों के उत्थान हेतु संघर्ष करने वालों में महात्मा गाँधी (1869-1948) का नाम अग्रगण्य है। गाँधी भारत आने से पूर्व (1915) दक्षिण अफ्रीका में 21 वर्ष तक ब्रिटिश सरकार के रंगभेद नीति के विरूद्ध संघर्ष कर चुके थे। गाँधी अस्पृश्यता को भारतीय समाज पर कलंक की तरह मानते थे। कांग्रेस के नागपुर सत्र में उन्होंने हिन्दू धर्म से अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए विशेष प्रयास किए जाने पर बल दिया। गाँधी जी ने दक्षिण भारत में वाइकोम सत्याग्रह (मंदिर की तरफ जाने वाले मार्ग का प्रयोग) का पूर्ण समर्थन दिया। उनके रचनात्मक कार्यक्रम का प्रमुख भाग था – अस्पृश्यता निवारण, अंतर्जातीय भोज। गाँधी ने शुद्रों को एक नाम दिया हरिजन (ईश्वर की संतान) परन्तु अम्बेडकर द्वारा इस नाम का विरोध किया गया। गाँधी का

मानना था कि अगर हिन्दू धर्म को जीवित रखना है तो अस्पृश्यता को मारना होगा। यदि अस्पृश्यता जीवित रही तो हिन्दू धर्म समाप्त हो जाएगा। गाँधी जब भी दिल्ली आते थे वह भंगी कालोनी में जाते थे। उन्होंने हिन्दुओं से हरिजनों के लिए मंदिरों के दरवाजे खोलने की अपील की। वह उस मंदिर में नहीं जाते थे जिसके दरवाजे हरिजनों के लिए नहीं खुले है। उन्होंने तीन समाचारपत्रों का संपादन एवं प्रकाशन किया **हरिजन** (अंग्रेजी), **हरिजन सेवक** (हिन्दी), **हरिजन बन्धु** (गुजराती)। अम्बेडकर और गाँधी का मतभेद द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के दौरान सतह पर आ गया जहाँ दोनों अपने को दलितों के वास्तविक प्रतिनिधि बता रहे थे। गाँधी रैम्जे मैक्डोनाल्ड के सांप्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र का विरोध कर रहे थे जब कि अम्बेडकर की यह मांग थी। गाँधी जी सार्वजनिक मताधिकार के सिद्धांत का समर्थन कर रहे थे। अंततः पूना के यरवदा जेल में गाँधी ने अनिश्चितकालीन अनशन प्रारम्भ किया और परिणामस्वरूप पूना पैक्ट के रूप में गाँधी एवं अम्बेडकर के मध्य 25 सितम्बर 1932 को समझौता हो गया। गाँधी ने अखिल भारतीय अछूतोद्धार सभा के स्थान पर हरिजन सेवक संघ की स्थापना की तथा अम्बेडकर को भी इसके बोर्ड में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया परन्तु अम्बेडकर ने यह कह कर मना कर दिया कि इसका नियंत्रण ब्राह्मणों के हाथ में है। गाँधी ने नवम्बर 1933 में अस्पृश्यता निवारण एवं हरिजनों के उत्थान हेतु पूरे देश में पदयात्रा का प्रारम्भ किया जो दस माह तक चलता रहा। इसी दौरान पुणे में 25 जून 1934 में गाँधी पर बम द्वारा जानलेवा हमला हुआ जिसमें वह बाल-बाल बच गए। 1937 ई. के चुनाव के बाद कांग्रेस शासित प्रांतों में मंदिर प्रवेश विद्येयक पारित किया गया। गाँधी एवं अम्बेडकर का मतभेद अछूतोद्धार के तरीकों को लेकर था। गाँधी जी मानते थे कि अस्पृश्यता हिन्दू समाज का दोष है अतः हिन्दुओं को इसे निकाल फेंकना होगा तथापि वे वर्ण व्यवस्था के विरोधी नहीं थे। जबकि अम्बेडकर वर्ण व्यवस्था को ही मूल जड़ मानकर समाप्त करना चाहते थे।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

नोट - **निम्नलिखित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

1. ज्योतिबा फुले ने 1873 ई. में महत्वपूर्ण पुस्तक ..... प्रकाशित की।
2. दलित आन्दोलन एक महत्वपूर्ण नेता नानु असन (जिनको लोग ..... के नाम से जानते हैं) का जन्म 1854 ई. में एझवा जाति (अस्पृश्य जाति) में हुआ था।
3. ..... ने1920 में **मुक नायक** (Voice of Mute) नामक पत्रिका का संपादन एवं प्रकाशन शुरू किया।
4. ..... के नेतृत्व में केरल एवं केरल के बाहर एस. एन. डी. पी. (श्री नारायण धर्म परिपालन योगम्) नामक संस्था की शाखाएँ स्थापित की गयीं।
5. अछूतानन्द ने 1924-25 ई. में ..... आन्दोलन की शुरूआत कानपुर से की।

14.10 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतवर्ष में दलित सदियों से शोषण के शिकार होते रहे हैं। इन्हें प्रत्येक मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। ब्रिटिशों के आने के बाद पश्चिमी सभ्यता से संपर्क के फलस्वरूप न केवल दलितों को वरन् अनेक बुद्धिजीवी वर्गों को यह एहसास हुआ कि यह शोषण मानवकृत है तथा इसे हर हाल में दूर किया जाना चाहिए। अन्ततोगत्वा दलित वर्ग के अन्दर से ही कई सुधारवादी लोगों का पदार्पण हुआ और उन्होंने

अपनी सामाजिक स्थिति को बदलने के लिए एक इस समाज से संघर्ष किया जो आज तक अनवरत चालू है। भारत के अनेक क्षेत्रों में हुए दलित आन्दोलन ने दलितों के अन्दर न केवल चेतना जगायी वरन् उन्हें अपने अधिकार के लिए लड़ना भी सिखाया। भारतीय संविधान में आज दलितों को जो अधिकार प्राप्त हैं वह एक लम्बी लड़ाई का ही परिणाम है।

14.11 पारिभाषिक शब्दावली

अछूत : जिसमें कोई छूत नहीं हो, अर्थात सबसे पवित्र

दलित : दबा-कुचला

अस्पृश्य : न छूने योग्य

14.12 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.गुलामगिरी

2. नारायण गुरू

3. भीम राव राम जी अम्बेडकर

4.नारायण गुरू

5. आदि-हिंदू

14.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

ओमवेट, गेल (2009), दलित और प्रजातांत्रिक क्रांति, सेज, नई दिल्ली।

ग्रोवर, बी.एल. एवं यशपाल (1981), आधुनिक भारत का इतिहासः एक नवीन मूल्यांकन (1707 से वर्तमान समय तक), एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।

गुप्ता, नंदिनी (2006), स्वामी अछुतानन्द एण्ड आदि हिन्दू मूवमेन्ट

चन्द्र, बिपिन एवं अन्य, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष.

चन्द्र, बिपिन, आधुनिक भारत, एन.सी.ई.आर.टी.

बंद्योपाध्याय, शेखर (2007), प्लासी से विभाजन तक, ओरिएन्ट लॉंग्मैन, नई दिल्ली।

लाल, आग्नेय (2011), उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली।

सरकार, सुमित (1993), आधुनिक भारतः1885-1947, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

14.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. आधुनिक भारत में दलितों के उत्थान के लिए किए गए प्रयासों पर एक निबंध लिखें।

2. आधुनिक भारत के विभिन्न क्षेत्रों में हुए दलित आन्दोलनों के स्वरुपों की व्याख्या करें।